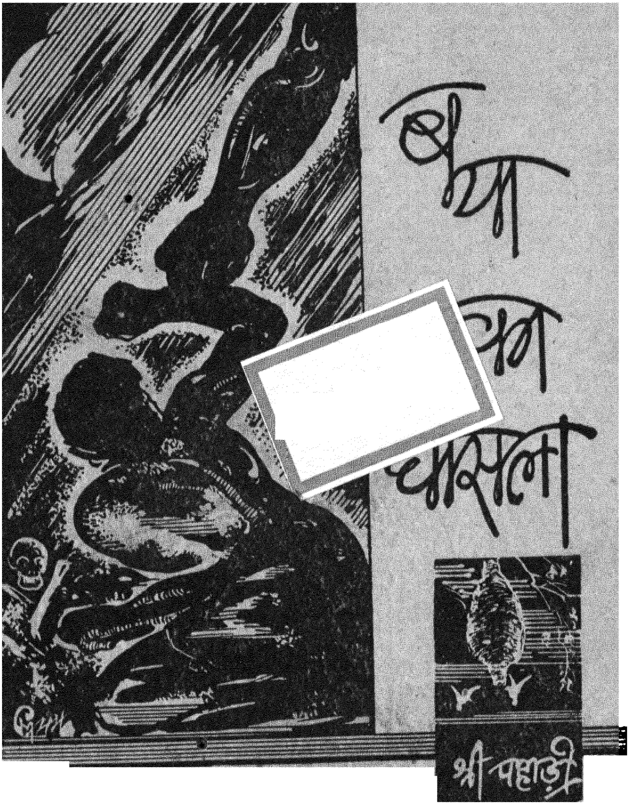

प्रकाशगृह, इलाहाबाद

UNIVERSAL LIBRARY
OU_178605
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H88/P14B Accession No. G.H. 1135

Author पहाड़ी।

Title बया का घोंसला। 1944

This book should be returned on or before the date last marked below.

बया का घोसला

श्री पहाड़ी

१९४४

प्रकाशगृह, इलाहाबाद

प्रथम संस्करण : १९४४

दो रुपया आठ आना

मुद्रक : गिरिजाप्रसाद श्रीवास्तव, हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग ।

परिचय

इस बीच कुछ नई रचनाएँ लिखीं। वे इस संग्रह में संकलित हैं। पाँच लम्बी कहानियाँ हैं और दो 'रेडियो नाटिका'। कहानियों की लम्बा देखकर कुछ मित्रों ने कहा कि ये छोटे-छोटे उपन्यास से लगते हैं। मैं उनको फिर भी कहानी ही कहूँगा। 'रेडियो नाटिकाओं' का हिन्दी में सर्वथा अभाव सा है। उनमें ध्वनि के आधार पर ही सारे नाटक का वातावरण विस्तारित होता है; अतएव स्टेज तथा रेडियो-नाटक की शैली अलग-अलग होती हैं। रेडियो-नाटिकाओं की मांग इधर बढ़ रही है। आशा है कि ये दो नाटिकाएँ कुछ रास्ता सुलझा सकेंगी।

इस युद्ध ने समाज के पुराने ढाँचे को तोड़ डाला है। अब पुरानी नजीरों को एकत्रित करके, उन पर फिर नए सिरे से विचार करना होगा। समाज में नई चिंगारियाँ उठी हैं। ९ अगस्त, १९४२ को बंगाल के अकाल ने ढक लिया है। इतिहास की इन दो महत्त्वपूर्ण घटनाओं पर विचार कर, साहित्य का नया मूल्यांकन करना पड़ेगा। आज के लेखक के लिए यह एक नई कसोटी बन गई है।

कहानियों के बीच-बीच में समाचार पत्रों के उद्धरण आ गए हैं। उनको अलग सा न रख कर, साथ ही रहने दिया है। इसीलिए उन समाचार-पत्रों का आभार माने लेता हूँ।

ये कहानियाँ प्रगतिशील नहीं हैं; क्योंकि इनमें वह कसोटी लागू नह

की गई है। पात्रों का अपना-अपना कार्य क्षेत्र है, उनको किसी 'वाद' के भार से दबाना मुझे अनुचित लगा।

जिस प्रकार भीगे कपड़े से पानी निचोड़ लेने पर भी उसमें कुछ नमी बाकी बच जाती है। उसी तरह से इन रचनाओं की भावुकता को सोख्ते से सुखाने की चेष्टा करने पर भी इनमें काफी नमी रह गयी है। सूखे बाटों से तोलने वाले समालोचकों को आज भी मैं सन्तोष न दे सकूंगा।

दीपावली, १९४४
३१ ए, बेली रोड, प्रयाग

पहाड़ी

श्री श्यामाचरण काला

और

श्रीमती कमलादेवी

को

१. पतझड़	...	९
२. रूस जर्मन सन्धि का अन्त	...	७५
३. धुंधली रेखाएँ	...	९०
४. एक चुटकी	...	१०६
५. युग युग द्वारा शक्ति की पूजा	...	१३१
६. जंजाल	...	१४५
७. बया का घोंसला	..	१८२

पतझड़

सरल ने लिखा था—'इस भुखमरी की कहानी सदियों तक लोगों के मन तथा हृदय पर सजीव रहेगी। आज से सैकड़ों वर्ष बाद, कुछ घटनाएँ 'नानी की कहानी' का नया स्वरूप बन कर, बड़ी-बूढ़ियों द्वारा सुनाई पड़ेंगी। देहाती कस्बों की सरायों के मुसाफिर, हरे भरे खेतों के खेतिहर, फसल को काटने वाले कमकर, शहर की बस्तियों के लोग, मध्यवर्गीय भद्रजन—ये सब इतिहास की इस बड़ी घटना का उल्लेख करेंगे। मदरसों के बच्चे सब कुछ सुन कर, उत्सुकता से भारत के फैले हुए नक्शे पर दृष्टि फेरेंगे। उनकी आँखें गंगा, ब्रह्मपुत्र और दामोदर की धरती पर अटक जावेंगी, जो बंगाल एक अरसे से साहित्य, संस्कृति और कला की परम्पराओं में अग्रणी रहा है। वहीं आज एक भूचाल आया है।

'यह मेरी अपनी ही कहानी नहीं है। मैं तो उन लाखों में एक हूँ, जो इस तूफान में फँस गए हैं। मेरे हृदय की भावना, केवल मेरी अपनी ही नहीं है। यह उन लाखों का स्वर है, जो प्रतिदिन संघर्ष कर रहे हैं। इसमें कहीं मेरी दुर्बलता मिले, तो माफ कर देना मुझे। तूफान में उड़ता हुआ तिनका नहीं जानता कि उसकी गति क्या है? वह इधर-उधर नहीं देख पाता है। उसकी अपनी कोई गति भी नहीं होती है। मैं वैसी ही एक सूखी पत्ती हूँ। जिसमें प्राण नहीं हैं। आज अपने बलवान परिवार से अपने को अलग पाती हूँ। मेरी आकांक्षाएँ इस शक्तिशाली वर्त्तमान ने मिटा डाली हैं। मैं नष्ट हो गई हूँ·········

'तुमको भी पत्र न लिखती। कल रात एकाएक मेरे मन में अपने को नष्ट कर देने की भावना उठी। मैं अपने जीवन की प्यारी-प्यारी स्मृतियों को फैला कर, बारी-बारी से उनको नष्ट करने लगी। तभी मैंने अपने 'ऑटोग्राफ' की कापी उठाई। उसमें कई हस्ताक्षर थे। गांधी, नेहरू, पटेल, नायडू, राजेन्द्र बाबू······! एकाएक मेरे मन में एक विद्रोह उठा। वहाँ २१ मार्च, १९४० की तिथि अंकित थी।

'रामगढ़ कांग्रेस ! क्या वहाँ एक बड़ा तूफान नहीं उठा था ? नेता एक भारी निश्चय करने को ठान चुके थे। संध्या को आकाश में घने-घने बादल छा गए। एकाएक बूँदा बाँदी शुरू हुई। सारा पंडाल आँधी-पानी वाले तूफान से डगमगा उठा। हम घुटने-घुटने पानी को चीर कर आगे बढ़ गए थे। नेहरू जी की वह तसवीर याद है मुझे। वे साधारण वालिंटियरों की कतार के अगुआ बन कर, लोगों को राह दिखला रहे थे। अपार श्रद्धा से मेरा माथा झुक गया। ....मैं 'ऑटोग्राफ' की बात लिख रही थी। तुमने मजाक करने के लिए एक पन्ने पर लिखा था—जीवन केवल घटनाओं का जाल ही नहीं है। वे घटनाएँ तो प्रगतिशील शक्तियों के लिए साधन मात्र हैं। नई शक्तियाँ सदा से नया रास्ता दिखलाती आई हैं।

'वे लाइनें चार विराम की भाँति मेरे आगे खड़ी हो गईं। मैं संभली। लगा कि मैं रास्ता भूल गई हूँ। व्यर्थ ही घने अंधकार में भटक रही हूँ। अकेले-अकेले जीवन में सूनापन बटोर लिया है। सोचा कि शायद तुम सही सा रास्ता सुझा सको। चिट्ठी इसी लिए तो लिख रही हूँ। ओ' तुम इसे पढ़ कर न जाने क्या सोचोगे ? लेकिन जानती हूँ कि............'

केशव ने चिट्ठी पढ़ी, सन् १९४० और ४४ ! लगभग १५०० दिनों की दूरी। तिरपनवें अधिवेशन के राष्ट्रपति मौलाना अबुलकलाम आजाद का कथन :—

'बृटिश सरकार ने भारतीय जनता की राय लिए विना ही भारत को एक 'युद्धस्थ देश' घोषित किया है। युद्ध में भारत के साधनों का दोहन किया जा रहा है। अतएव कांग्रेस इसे अपमान जनक समझती है। स्वाभिमानी और स्वतंत्रता प्रेमी जनता इस तरह की बात स्वीकार अथवा बर्दास्त नहीं कर सकती।............भारतीय जनता पूर्ण स्वाधीनता से कम कोई चीज स्वीकार नहीं कर सकती। भारतीय स्वाधीनता बृटिश साम्राज्यवाद और औपनिवेशिक स्वराज्य की सीमा के अन्तर्गत नहीं रह सकती।

सरल ने तभी पूछा था, "अब क्या होगा केशव ?"

इससे पहिले कि केशव कुछ कहे, बोली थी प्रेमलता, "क्यों क्या

काँग्रेस का निश्चय कोई बन्धन है ? मैं सत्याग्रह से नहीं डरती, । पर गाँधीजी का रास्ता अस्वीकार करती हूँ । जेल जाना तो हमारे लिए एक साधारण घटना है । वे भी यही कहते हैं ।"

वे, प्रेमलता के पति अविनाश ! केशव उनको भली भाँति पहचानता है । उनकी अपनी कोई विचारधारा नहीं है । वक्त और अवसर की पहचान करते, उनको अधिक देरी नहीं लगती है । वे सार्वजनिक क्षेत्र में भी सब परिस्थितियों पर सावधानी से विचार किया करते हैं कि अगला कदम क्या होगा ? प्रेमलता एक तितली है, जो कि किसी प्रवाह में एकाएक भँवरों के बीच फँस गई । आज उनकी पत्नी कहलाती है । लेकिन दरजा बराबरी का है । वह बिलकुल स्वतंत्र है । पति उसके साथ चलते हैं । वह रास्ता दिखलाती है ।

कभी सरल ने अनजाने सुनाई थी प्रेम की बातें । वह उसकी सब बातें कह दिया करती है । यही न कि प्रेमलता युवकों पर शासन करना जानती है । अपनी लुभावनी बातों में मोह लेती है । उसमें एक जादू की शक्ति है । उसे इसका भारी घमंड है । वह कालेज भर में इसी प्रकार छल करके अपना कौतुक दिखलाया करती थी ।

बात सच होगी । असाधारण सौंदर्य था उस प्रेमलता में । वह नुमायश में अल्हड़ सी घूमा करती थी । और 'सेवा संघ' की दूकान पर खड़ी होकर, कभी-कभी उस संस्था की पुस्तकें बेच लेती थी । पति 'सेवा संघ' के मंत्री थे । खादी के वस्त्र अपनाते थे । देवी जी स्वदेशी सिल्क की मूल्यवान साड़ियाँ पहना करती थीं ।

केशव सरल की बातें सुनकर कहता था, "तुम भी चाहती होगी सरल कि सब पर शासन किया करो यह पशुवों वाली प्रवृत्ति !"

"नहीं । नहीं !" बात कट जाती

"सरल तुमारे गाँधी जी......!"

"तुम गाँधी जी के बारे में यह क्या क्या कहा करते हो ?"

"मैं न ! कल शाम तूने उनका 'रघुपति राघव राजा राम' वाला

अजायबघर तो देख ही लिया है। जनता का नेता इस प्रकार उनको अन्ध-विश्वास का पाठ पढ़ा रहा है। यह हमारी करोड़ों की जनता वर्षों से इन अंधविश्वासों के कारण दासता की जंजीरों में जकड़ी रही है। अपने विचारों में आगे नहीं बढ़ सकी है। आज उनकी आड़ में चुपचाप स्थिर खड़ी है। सत्य के कुछ अनुभव और भगवान तो आज भी उन सब पर माया जाल फैलाए हुए हैं।"

"लेकिन मैं कहती हूँ......।"

"मैं कब कह रहा हूँ तू उन सब को वेद वाक्य सा नहीं मानती है। पश्चिम वाले भारतवर्ष की सही तसवीर संपेरे, इमारतें और साधू ही देखते हैं। यहाँ अपार ज्ञान का भण्डार तेरे ऋषियों ने भरा है। पर उस गोरखधंधे से बाहर निकल कर उसे समझना पड़ेगा।"

"ओ, चलो पहिले चाय पी आवें। यहाँ भी कैसी नई दुनियाँ बस गई है। सभी संपेरे हैं और साधु! इस वीरान में आज नया जीवन आया है। वे झोपड़ियाँ और लाखों लोगों की भीड़। मैंने इस हलचल पर कभी विश्वास नहीं किया था। यह जागरूक संस्था है जिसके प्रति सदा से मेरी श्रद्धा रही है भारत के सब नेताओं की सरलता पर मैं मुग्ध हूँ। वे देखने में जितने सरल लगते हैं, अपने कार्यक्रम में उतने ही दृढ़ हैं।"

केशव हँस पड़ा। सरल अप्रतिम हो चुप रह गई। कोई कुछ नहीं बोला। सरल खड़ी-खड़ी फुहारे से गिरती पानी की कनों को देख रही थी। चारों ओर एक नया जीवन था। वह जीवन, जहाँ कि राष्ट्रीयता की एक स्वस्थ, बयार बह रही थी। सारे वातावरण में देश का भविष्य और युरोप के युद्ध की चर्चा थी, कांग्रेसी मंत्रि मंडल उजड़ चुके थे, नौकर शाही उनके दरवाजों पर मजबूत फौलादी कीलें ठोंक रही थी। कल ही 'विषय निर्वाचिनी' की बैठक में एम० एन० राय बड़ी देर तक अपना एकाकी अलाप छेड़े रहे। कई कैम्प हैं। आसाम, सीमाप्रान्त, महाकोशल, विदर्भ......। पूरे उन्नीस प्रान्तों के प्रतिनिधि आए हुए थे।

अब जीवन उड़ेल डाला प्रेमलता ने, "आप लोग अपने 'वादों' के

मारे झगड़ पड़ते हैं। हमें तो सरल ने चाय का न्योता दिया है। चलो न फिर, इस मेंह ने तो सारी रौनक फीकी करदी, सारी सुन्दरता नष्ट करदी।"

चाय पर बैठते हुए कहा केशव ने, "मैं कोई गर्व नहीं करता हूँ। यह एक महायुद्ध हो रहा है। पहली सितम्बर को जर्मनी की सेनाएँ हिटलर का आदेश पाकर पौलैंड का श्राद्ध करने के लिए बढ़ गईं। यह द्वितीय साम्राज्यवादी युद्ध की सुबह नहीं थी। स्पेन, चीन और अबीसीनिया के नागरिकों के अधिकारों को फासिस्तों द्वारा लुटते हुए ब्रिटेन और फ्रान्स देख रहे थे। ब्रिटेन संतुष्ट था कि वह अपने उपनिवेशों में रहने वाली अड़तालिस करोड़ जनता का भाग्य विधाता है। फ्रांस के पास सात करोड़ जनता थी। अन्त में बृटेन और जर्मनी दो पूँजीवादी विचार धारा वाले देशों के बीच यह युद्ध आरम्भ हो गया। जनता का कर्त्तव्य है कि वह इस युद्ध के विरुद्ध आवाज उठाकर साम्राज्यवादियों के मद के नशे को चूर चूर कर दे।"

प्रेम तो चाय उड़ेलती हुई बोली, "मैं इन लोगों से परेशान हूँ, ये लोग तो रोटियाँ खाते-खाते सोचते हैं कि गेहूँ पैदा करने वाला एक वर्ग है, बरतन बनाने वाला दूसरा वर्ग और रोटी सेंकने वाला तीसरा! तभी तो कहती हूँ, सरल कि कभी इन राजनीति को बघारने वाले विद्वानों के चक्कर में न पड़जाना मैं तो भुलावे में आ गई।"

"आप!" पूछा केशव ने।

"उनका काम क्या है? मोटी मोटी किताबें खरीद लाते हैं और मुझसे कहते हैं कि देख इसे पढ़कर मुझे मालूम हो जायगा कि फासिस्त वाद कैसे उदय हुआ और पनपा है। खुद इतने आलसी हैं कि छै महीने में पूरे पन्ने तक नहीं काट पाते हैं। पिछले महीने बड़ी मुश्किल से 'टाप्स' खरीदने के लिए सौ रुपये जमा किए थे कि साठ रुपये की किताबों की वी० पी० आ गई। 'टाप्स' के बदले किताबें तो नहीं पहनी जा सकती हैं।"

सरल 'टोस्ट' पर मक्खन लगा रही थी। अब दाँत से एक टुकड़ा तोड़ कर चबाने लगी। वह केशव की दलील पर विश्वास नहीं करती है। वे बात-बात में गाँधी जी की बातों की नुक्ताचीनी किया करते हैं। चाय पर ही

यह पूछते न चूके कि बकरी का दूध तो नहीं होगा। लेकिन वह उनसे खास सी परिचित नहीं है। दो बार कुछ देर के लिए प्रेम के घर वे मिले थे। आज तीन दिन से साथ साथ हैं। प्रेम तो उनके व्यक्तित्व के भीतर अक्सर छुप जाने की चेष्टा करती है। कभी तो वह डर जाती है कि यह प्रेम तो......! क्या वह केशव को भी छल रही है? कभी-कभी वह अनुभव करती है कि प्रेमलता केशव पर शासन किया करती है। केशव अवाक-सा अक्सर उसे ताका करता है। प्रेम ने उसे केशव की कई बातें सुनाई हैं। वह उनके घर बहुधा टिक कर अपनी कई बातों को असावधानी से, घटना-घटना करके बखेर दिया करता था। कुछ बातें चतुरता से प्रेम संवार करके अपने में रख पाई है। वह उसके अति समीप सी है। सरल वह दरजा कब पाती है? सुबह चाय का बिल प्रेम ने चुकाया तो वे कुछ नहीं बोले। दिन को खाने का बिल चुकाने के लिए उसने बटुआ खोला तो उन्होंने जल्दी-जल्दी 'वेटर' को दस रुपये का नोट दे दिया। वह अपनी दूरी की बात सोचकर चुप रह गई थी। कभी तो प्रेमलता के गुणों पर विचार करती! वह उससे स्नेह करती है, फिर भी उसके विचारों से सहमत नहीं। प्रेम की युवकों को लुभाने वाली चमक के प्रति उसकी स्वाभाविक विमुखता है। वह कभी-कभी प्रेम से बड़ी दूर हट जाती है। लेकिन उसकी मन मोहनी बातों को सुन कर चुप रह जाती है। कोई तर्क सामने नहीं लाती।

सरल ने प्याले में चाय उड़ेलना चाहा तो बोला केशव, "चौथा प्याला! नहीं बस।"

सरल खुद चुपचाप आलू की टिकिया खाने लगी। प्रेमलता तो चाय पीते-पीते हँस पड़ी। कहा था, "हम इस युद्ध से बड़ी दूर हैं। इसीलिए तो वह सब एक कल्पना मात्र रह जाता है।"

"कल्पना! आप क्या कह रही हैं प्रेम जी? तीन सितम्बर को वायसराय घोषणा कर चुके हैं कि हम भी इस युद्ध में शामिल हो गए हैं। २९ सितम्बर को पोलैण्ड का पतन हुआ। २० मार्च को दलादिए ने फ्रांस के प्रधान-मंत्रित्व के पद से छुटकारा पा लिया। जनता इस युद्ध से दूर रहना

चाहती है । साम्राज्यवादी गुट तो उनको बरबस अपनी ओर खींच लेना चाहता है। आज विज्ञान के युग का यह युद्ध आसान नहीं है, फासिस्तों को अपने सैनिक बल पर पूर्ण विश्वास है । उनकी भावना है कि राष्ट्रीय कल्याण सैनिक-संस्कृति पर निर्भर है।"

"आपने तो हमें प्रोफेसरों वाला लेकचर देना शुरू कर दिया है। हम तो ठहरी साधारण बुद्धि की । भला आप लोगों की तरह विद्वान कैसे हो सकती हैं। न राजनैतिक दाँव-पेंच जानती हैं और न वर्ग युद्ध ! मन अच्छी साड़ियाँ पहनने के लिए ललचाता है । नए फैशन अपनाना चाहती हैं। हमारा काम खादी के चौड़े पाजामे तथा कुरते से नहीं चल सकता है।"

प्रेमलता यह सुनाकर अब सरल से बोली, "तुझे क्या कहना है सरल? तू तो बिलकुल गूंगी बन जाती है। यह भली बात थोड़े ही है।"

सरल यह सब सुनकर भी चुप रही । प्रेमलता ने चाय की केतली उठाई। केशव के ना-ना करने पर भी उसके प्याले में चाय बनादी। केशव चीनी मिलाता रहा। अब तो उसने प्याला मुँह से लगा लिया। सरल अपने मन में प्रेमलता की यह शक्ति देखकर मुरझा गई । क्या वह प्रेम की भाँति बातूनी बन कर उनको नहीं ठग सकती है। वह अभी उनके अपनत्व की सीमा के बाहर है। वे उसे अपना स्वीकार नहीं करते हैं। अन्यथा उसकी भावना की परवा अवश्य करते। प्रेमलता पति की दासी नहीं है। युग-युग द्वारा नारी को जो बेड़ियाँ पहनाई गई हैं, वे टूट गई हैं। प्रेम ने स्वयं तोड़ीं। किसी का मुँह नहीं ताका है। प्रेम नैतिकता के किसी तोल पर विश्वास नहीं करती है। क्यों दूसरे वह सब उस पर लागू करें। वह प्रेम को कांटे से तोलकर कि पति ही खरा है; परिवार के स्थापना की ईस कसौटी को सही नहीं मानती है। न वह पति पर समस्त जीवन को निछावर कर देने वाली दलील स्वीकार करती है। उसका जीवन के प्रति अपना एक दृष्टिकोण है। जिसे वह स्वयं प्रतिनिधि रूप में व्यक्त करती है।

पिछली एक संध्या को खाना खाते समय अविनाश से कहा था प्रेमलता ने, "मन करता है कि तुमको छोड़कर चली जाऊं, उस प्रोफेसर के साथ,

जो मुझे प्रेम पत्र लिख लिखकर दावा करता था कि सदा मेरा दास बनकर रहेगा।"

अविनाश चुप रहा, तो फिर बोली थी वह, "जीवन में छोटे-छोटे सपने होते हैं। उनके बीच चलते हुए लगता है कि उनसे बिछुड़ जाने पर जीवन नष्ट हो जावेगा, फिर नए सपने अपना जाल बिछा देते हैं। पिछलों के प्रति का वह मोह न जाने कहाँ छूट जाता है? तुम उनको घटना कहोगे। मैं उन पर स्वप्न सा विश्वास करती हूँ। क्यों झूठ कह रही हूँ केशव जी?"

केशव तो बोला, "सरल मेरी वकील है। वही उत्तर दे देगी, जज रहा अविनाश।"

सरल स्थिति संभाल कर कुछ कहना चाहती थी कि बोला अविनाश, "सरल को अपना वकील बनाकर तुम व्यर्थ उस बेचारी पर बोझा लाद रहे हो। क्या कह रही थी प्रेम? तू तो सपने रोज-रोज देखकर नहीं थकती है। रेगिस्तान में शब्जे की हरियाली कारवाँ के मुसाफिरों की नई आशा रहती है। लेकिन तुम आज भी शायद जीवन का शब्जा उन प्रेम पत्रों वाले व्यवहार को मानती हो। आज जिस गंभीर परिस्थिति से देश गुजर रहा है……।"

"ओ, मैं तो तंग आ गई हूँ, आपकी 'पालिटिक्स' से, क्या बातें चालू थीं और आपने क्या तर्क शुरू कर दिया है। आज आप ज्यादा बातें नहीं करते हैं। कुछ कहूँगी तो बस बचाव दे दोगे कि मैं बोस बाबू के दल की हो गई हूँ। मेरी समझ से बोस बाबू ने गाँधी जी से ठीक बगावत की। राजनीति के दाँव-पेच में हार जाना भी जीत कहलाता है। गाँधीवादियों का षडयंत्र सफल रहा, बाम पक्षी एक कदम पीछे हट गए। लेकिन बोस बाबू के पीछे भी एक शक्ति है… ……।"

सरल सब सुन रही थी। चुपके से कान में पूछा था केशव ने, "तुझे भी प्रेम पत्र लिखने आते हैं सरल?"

"नहीं तो।"

"और सपने भी देखा करती है।"

"तुम चुप रहो केशव।"

लेकिन प्रेमलता ख़ड़ी हो गई थी। उठकर बोली, "चलो केशव, बोस बाबू के कैम्प में चलें। वहाँ मेरी कुछ सहेलियाँ हैं। इन गांधीवादियों को छोड़ देना ही उचित है। ये तो तीन साल से गांधी जी के साथ हैं। आश्रम में शुद्ध खादी पहनते हैं और घर पर अपनी पुरानी सूटों को ललचाई आँखों से ताका करते हैं। मुझे यह झूठा व्यवहार लगता है। सरल पुनर्जन्म मानती है। चाहती है कि अगले जन्म में आश्रम की बकरी बन कर रहे।"

सचमुच प्रेमलता उठ पड़ी। केशव हँसकर बोला, "प्रेम जी बोस बाबू की नीति से तो मेरा भी मतभेद है,"

"आपका मतभेद। वह ऐसी कोई बात नहीं। अब आप चलिये न!"

"चल सरल!"

"मैं बहुत थक गई हूं,"

अधिक कुछ न कह कर प्रेमलता के साथ केशव चला गया। सरल बड़ी देर तक अपनी हार पर रोती रही। प्रेमलता और केशव बड़ी रात में लौटकर आए थे। सरल सोई नहीं थी, फिर भी रोगी बनी पड़ी रही……

बंगाल में चावल का भाव :

दिसम्बर १९४१	३॥) मन
फरवरी १९४२	६) मन
मई १९४२	८) मन
अगस्त १९४२	१०) मन
अक्टूबर १९४२	१२) मन
दिसम्बर १९४२	१८) मन
मार्च १९४३	३५) मन
जून १९४३	४८) मन
अक्टूबर १९४३	८०) मन

भाव बढ़ता चला गया। पहिला शिकार खेतिहर मजदूर था। वे

मजदूरी के लालच में शहर की ओर चले गए। माँ-स्त्री और बेटी-बहिन मनिआर्डर की बाट जोहती रही। रुपयों की कौन कहे, चिट्ठी तक नहीं आई। अब घर की बची-खुची सम्पत्ति बेच दी गई। इस प्रकार कुछ दिन का और निर्वाह हो गया। बाप-दादों की जमीन जिससे वे कई पीढ़ियों से बँधे थे, जिसे जीवन-मरण में प्यार किया था, उसे भी बेचा। अब वह गाँव छूट गया। बूढ़े-बच्चे और औरतें नौकरी के लिए शहरों की ओर बढ़ गए। भीख मांगना और दया का भरोसा! वे तमाम अभिलाषाएँ नष्ट हो गईं। कहीं मनुष्यता नहीं मिली। आखिर प्रेम और स्नेह का बन्धन टूट गया। पहिले गोदी के बच्चे मरे और फिर बूढ़े। वह गाँव की आबादी शहरों में मिटती चली गई। एक सामाजिक वर्ग नष्ट हो गया। खेतिहर भीख मांगना नहीं चाहता है। ३० करोड़ किसान अन्न पैदा करते हैं। उस सब अन्नकी आवश्यकता थी। फिर भी परिवार के परिवार शहरों की ओर बढ़ रहे थे। बेकारी में वे सब मारे-मारे फिरने लगे। एक वर्ग, एक समाज नष्ट हो रहा था। उनके अन्य साथी हाथ पर हाथ धरे ताकते रह जाते थे।

सरल का वह संघर्ष! पतझड़ की भयानक रात में सूखी पत्ती की भाँति इधर-उधर उड़ना। लिखा ही था सरल ने :—

'तुम मृणाल को शायद नहीं जानते होगे। वह साधारण मध्यवर्गीय परिवार की लड़की थी। एक सौ रुपया माहवारी आमदनी, पाँच बच्चे और माता-पिता......। एक भाई मरा तो वह बहुत रोई। मैं उसे कुछ भी नहीं समझा सकी। बहिन की मौत पर वह फिर आई, बोली थी, "कल रात मैंने मौत देखली सरल! वह दरवाजे की आड़ में चुपचाप खड़ी होकर हम सबको ताक रही थी। मुझे देखकर मुस्कराई। मैं उससे अपनी रानी को नहीं बचा सकी। मरना कठिन बात नहीं है। एक हिचकी मैंने सुनी बस......!"

बोली थी मैं, "मृणाल, तू अपनी उपन्यास की दुनिया में मौत को पढ़ कर घबरा उठती थी। आज तुझ में वह घबराहट नहीं है। तू तो सबर हो गई है।"

"दीदी, दीदी ! वह मौत घर के कोने-कोने से मेरी असहायता पर फीकी हँसी हँसती है। यह हमारा क्या हाल हो रहा है। मौत और भात ! सर निजामउद्दीन परेशान हैं कि लोगों को कबूतरों वाला अन्न खाना पड़ रहा है। छोटा किसान गाँव से शहर, भीख से लंगरखाने, सड़क से श्मशान पहुँच रहा है। मझोले किसान ने सट्टेबाजों के हाथ घर, खेत, फसल सब बेच डाली। भाव चौगुना हो गया है। वहाँ से मौत हमारे शहरों के भीतर आकर हँसा करती है।"

मैं क्या समझती मृणाल को ! उस परिवार के सब बच्चे बीमार थे। एक दवा थी अन्न ! डाक्टर कहते थे दूध पिलाओ, खूराक दो। तीसरे भाई की मौत पर मृणाल हँसी थी। हँसते-हँसते कहा था, "मैं आज मरघट देखने गई थी। एक मुरदा जल रहा था। बाकी अपनी बारी आने का इन्तजार कर रहे थे।"

मृणाल तो खिलखिला कर हँस पड़ी। मैं उस फीकी हँसी से भयभीत हो उठी। कहा मृणाल ने, "ओ' सरल दीदी, अब मैं मौत से भी तेज हँसी हँस लेती हूँ। मैं तीन भाई-बहिनों को खोकर मौत से युद्ध करना सीख गई हूँ। मैंने शरतच्चन्द्र की 'बड़ी दीदी', 'चरित्रहीन', 'श्रीकान्त' आदि उपन्यास पढ़े हैं। रवीन्द्र और बंकिम की रचनाओं में बहुत समय व्यतीत किया। 'कपाल कुंडला' एक अरसे तक मेरे मन में स्थिर रही। 'चार अध्याय' का रवीन्द्रनाथ ठाकुर आज उसमें 'पाँचवा अध्याय' भी जोड़ कर पूरा कर देता। मैं बाजार गई थी। वहाँ सड़कों सड़कों घूमी.... ..। कभी मैं 'माइकेल मधुसूदन' का 'ब्रजांगना काव्य' पढ़कर बहुत भावुक हो उठती थी। आनन्दमठ की नायिका बनने का स्वप्न भी देखा......। और आज की बात न दीदी......। चारों ओर दुबले पतले मर्द और औरतें दीख पड़े। उनके साथ अस्थि पंजर पूर्ण बच्चे थे। जो माँ के सूखे स्तनों से दूध की आशा में चिपके हुए थे। पर वहाँ दूध कहाँ है ? उन स्तनों से बच्चे दूध नहीं पीते हैं। वे खून पीते थे। खांसते, तो खून थूकते थे। फिर वे थोड़ा काँपने के बाद फुटपाथ पर गिरकर सदा के लिए शान्त हो जाते थे।"

"मृणाल, आज तुझे क्या हो गया है ? तू बीमार लगती है। तेरी आँखे लाल हो आई हैं। क्या तू बीमार है ?"

"दीदी मेरी, तू घबरा गई है। यह विश्वास रख कि मैं मरूँगी नहीं। यह मौत मुझे मार नहीं सकती है। तू चुप क्यों हो गई है ? उस कहानी को और सुन ले, वह कोरी कल्पना नहीं है। मैंने वह सब अपनी आँखों से देखा है। पास और दूर से लोग बाढ़ की तरह कलकत्ते में भरे आ रहे हैं। एक पूरा वर्ग, एक पूरी जाति अपना घर छोड़कर पुराने खानाबदोश कबीलों की तरह अन्न की तलाश में घूम रहा है। हर ओर मुर्दों की कतारें लगी हैं। कन्ट्रोल की दूकानों के सामने, सड़क के किनारे, स्टेशनों के नजदीक, मजदूर की झोपड़ी के अन्दर और बाबू लोगों के कमरों में, हर जगह लोग अपनी बारी आने की बाट जोह रहे हैं। आज दो वक्त खाना खाया तो कल एक वक्त ! आज एक वक्त खाना खाया, तो कल भूखा रहना पड़ा। फिर मुर्ग की तरह सड़क के किनारे जूठ पड़ी ढेरियों में अन्न की तलाश ! और रात अँधेरे में किसी कोने में पड़कर आखरी साँस, एक हिचकी—तमाशा समाप्त !"

यह कहते-कहते मृणाल खिलखिला कर हँस पड़ी। उसका वह हाल देखकर मैं दंग रह गई। उस मृणाल को क्या हो गया था ? वह तो हँसती ही रही। उसकी हँसी से स्तब्ध रह कर मैंने पूछा, "क्या बात हो गई है मृणाल ?"

"क्या बात ! शरत को एक जमाने से मैंने प्यार किया है। सावित्री, किरण, बड़ी दीदी, पारो, अभया, अचला······क्या-क्या रूप बरतना मैंने नहीं चाहा। और 'आँख की किरकिरी' की माया ? लेकिन वह सब तो मेरी भावुकता थी। आज मैं मौत को जीत कर······।"

"मौत को जीतकर मृणाल ?"

"डाक्टर के नुस्खे और माता-पिता की ममता, उन सब बच्चों को यम के चंगुल से नहीं छुड़ा सकी। वह मौत भूख थी। मैं उससे छुटकारा पाने का उपाय जान गई हूँ। मैंने उस मौत को जीत भी लिया है। अब भविष्य में·········।"

"फिर मृणाल खिल खिलाकर हँसी। वह कहानियों की दुनिया में रहनेवाली लड़की! कालेज में पुराने कवियों की कविताएँ पढ़-पढ़ कर झूम-झूम उठती थी। जब उसके परिवार पर मौत की परछाईं पड़ी तो वह मुरझा गई थी। उसका चेहरा पीला पड़ता चला गया.। सारा जीवन मिट रहा था। डर लगता था कि कहीं वह चटख तो नहीं जावेगी। लेकिन वह आज जीवन के प्रति उदास नहीं थी। उसमें एक नया जीवन था।"

अब मृणाल उठी और बोली, "आज जाती हूँ दीदी। फिर कभी आऊँगी मैं।"

"मृणाल!"

"भेद की बात जानना चाहती हो। फिर किसी दिन सुनाऊँगी। आज माफ करना।"

'वह मृणाल चली गई। एक सप्ताह बाद फिर आई थी। फलों के कई बन्द डिब्बे लाई थी। उसके फालसी रंग की साड़ी और सुन्दर शृंगार को देख कर मैं दंग रह गई। वह यह क्या खेल खेल रही थी! उसने मुझे अन्ननास और सेब के टुकड़े खिलाए। एक पैकट चाकलेट का भी दिया। वह कई नए उपन्यास खरीद कर लाई थी। मेरी समझ में यह नहीं आया कि वह क्या खेल खेल रही थी।'

वह हर दूसरे-तीसरे रोज आती थी और नई-नई चीजें लाती। कुछ पूछती तो साधारण उत्तर मिलता, "मैं रहस्यमयी होती जा रही हूँ न! क्यों तुम क्या सोचा करती हो? वह भेद पूछोगी। नहीं-नहीं, नहीं बतलाऊँगी मैं! इस मौत को जीत लेना आसान काम नहीं था। लेकिन मैं जीती और वह मौत हार गई। आज मौत की छाँह मेरे परिवार पर से हट गई है। भले ही वह सारी जाति पर पड़ी हुई है। पचास लाख की आबादी पर........। क्यों दीदी क्या तुम नाखुश हो गई हो? मैं अपने कर्तव्य और खुशी पर स्वयं कुछ नहीं सोच पाती हूँ। क्या मैंने गलत राह पकड़ ली है? लेकिन आज वह कालेज की पढ़ाई, वह सारा ज्ञान, वह परम्परावाली मर्यादा......। कोई कुछ काम नहीं आई। मौत, मौत और मौत! घर पर एक अन्न का दाना नहीं।

भूख और जीवन का संघर्ष ! वह सब असह्य था । मैं क्या करती दीदी ?"

मैं मृणाल के सम्मुख मूक बन जाती थी । मेरे पास कोई सही उत्तर नहीं था । यदि कोई सान्त्वना देती तो वह एक धोखा होता । वह तो अपना सही कर्तव्य सा पहचान कर, भविष्य की ओर तीव्र गति से बढ़ रही थी। भविष्य मलिन था; पर वर्तमान में पूरी चमक थी । लेकिन चारों ओर सब परिवार उजड़ रहे थे । डूबता हुआ परिवार दूसरे की रक्षा नहीं कर सकता है । मृणाल कर्म पर विश्वास करती थी । मैं तो कभी-कभी सुझाती थी कि पुराने जन्म के पापों का फल मनुष्य इस जन्म में भुगतता है ।

"पाप !" वह मेरी हँसी उड़ाती, "पाप कब तक पहचानोगी । लोगों के पास चावल है । वह खत्तियों में बन्द हैं । चोर बाजार में ऊँचे भावों पर बिकते हैं । साढ़े निनानवे प्रतिशत मानवता पाप और पुण्य के प्रश्न को हल करती हुई जिस समाज से बाहर है, उस समाज से मुझे घृणा हो उठी है ।"

"मृणाल तुम तो······।"

"मैं न सरल······; रोज ठोकरें खा रही हूँ । जिस व्यक्ति के साथ पिछले दिनों सम्बन्ध स्थापित किया था, आज उसने मुझे छोड़ दिया है । मैं दूसरे के साथ रहने लगी हूँ । कर्म, धर्म······।"

मृणाल की वह जीवन शक्ति ! वह फिर नहीं आई । एक सप्ताह गुजरा । दूसरा और तीसरा भी बीत गया । बात की बात में तीन महीने कट गए । एकाएक एक दिन उसका पत्र आया । मुझे बुलाया था । यह जानकर आश्चर्य हुआ कि वह एक महीने से अस्पताल में बीमार पड़ी हुई थी । जब मैं उसके वार्ड में पहुँची तो मैंने डाक्टर तथा नर्स को हँसते हुए पाया । वह बीमार थी । बहुत बीमार ! मेरा सारा शरीर काँप उठा । मैं उसके सिरहाने खड़ी हो गई । वह धीमें स्वर में बोली, "मैं आज वह कर्म मानती हूँ ।"

"कर्म ?"

"पुराने जन्म के पाप ! लेकिन यह सब क्या है ? मैं अभी उन्नीस साल की हूँ······, १२, ११, ८ साल के भाई बहिनों को खोकर, मैंने सोचा था कि मौत को जीत लूँगी । लेकिन मैं फेल हो गई ।"

मृणाल……! वह फालसा रंग की साड़ी ! साँवले रंग की युवती। उसने अपने परिवार को जीवित रखने के लिए अपने जीवन की आहुति दे देने की ठानी थी। वह जीवित रह कर एक जबरदस्त शक्ति होती…। वह सोचती है कि…।"

तभी मृणाल ने पूछा, " 'शरदोत्सव' याद है ?"

"टैगोर का ?"

"आज दिन भर न जाने मैंने वह कविता कितनी बार दुहराई है।"

"मृणाल ?"

"दीदी, मैंने एक नाटक खेलना शुरू किया था। हार गई। वह नाटक तो…।"

"मृणाल ! मृणाल !! तुझे क्या हो गया है। इतनी निराशा…।"

"मुझे न क्या हो गया है ?" वह फूट-फूट कर रोने लगी। सिसकती-सिसकती बोली फिर, "माता-पिता मेरा मुंह देखना नहीं चाहते हैं। मैंने उनके कुल की उज्ज्वल कीर्ति पर कलंक का टीका लगाया है। जो कि कभी पुँछ नहीं सकता है। आज भी उनको कुल की मान-मर्यादा की चिन्ता है। जब कि लाखों परिवार सब कुछ खो चुके हैं। हमारी एक अशक्त जाति है। आज जापानी चाहते तो आकर हमारी लाज बचा सकते थे। शायद कल वे आवें। दीदी, तू आरती सजाकर उनका स्वागत करना।"

मृणाल ने घृणा से मुँह बिचका लिया था। मैं बाहर आई। चुपचाप आगे बढ़ गई। डाक्टर नर्स से कह रहा था, "वह चार दिन से अधिक नहीं जी सकेगी। हम क्या करें ? हमारे पास कोई दवा नहीं है।"

उस घृणित रोग की बात को सोचकर मैं दंग रह गई। मैं घर लौट आयी। माँ ने पूछा, "मृणाल कैसी है ?"

तभी पिता जी बोले—कौन मृणाल ! उसका नाम न लो। उसका पिता क्या करे बेचारा ? आज चार दिन से घर से बाहर नहीं निकल रहा है। भला आदमी, यदि मृणाल ही पहिले मर जाती तो शायद यह सब देखना नहीं होता।

मैं रात भर सो नहीं सकी। सोचा कि इसमें मृणाल का क्या कसूर है ? वह मौत से संघर्ष करने की भावना ! वह लड़की जो प्रेम कहानियों की दुनिया में विचरती थी। कवियों की कल्पना पर मतवाली बनी उनकी लाइनें गुनगुनाती थी। शायद वह नहीं जानती होगी कि···मृणाल !

मैं मृणाल के पास अन्तिम बार गई थी। वह बहुत सुस्त लगी। बोली थी, "मैंने कोई पाप नहीं किया। मैं उस कर्म के पहिए पर विश्वास नहीं करती हूं। अच्छा मुझे 'टैगोर' की 'मृत्यु' सुना।

मैं सुनाने लगी :

दुखेर आंधार बारे-बारे
एसेछे आमार द्वारे
एक मात्र अस्त्र तार देखे छिनु
कष्टेर विकृत भाल···

मृणाल की आंखों से झर-झर-झर आंसू झरने लगे। गदगद स्वर में बोली वह, "अब जा तू। हाँ, मैं मर जाऊँ तो ये लोग दफना देवेंगे। मेरी माँ को समझाना···।"

सच ही मृणाल मर गई थी। उस प्रकार सड़-गल करके मर जाना ! मृणाल अकेली नहीं है। हजारों लड़कियाँ इसी प्रकार···! भूख तो लड़कियों को अपना शरीर बेचने पर···

२२ अगस्त, १९४३ :—चटगाँव पर ४४ बार बमबाजी हो चुकी है। चटगाँव के नीचे की हरी भरी घाटियों में फौजी तैयारियों की चहल-पहल नजर आती है। चारों ओर फैली हरियालियों पर जगह-जगह सिपाहियों की वर्दियों का रंग छिटका हुआ दीखता है।

२६ अगस्त, १९४३ :—किन्तु बंगाल जैसे इस गर्हित प्रान्त को जो अब प्रत्यक्ष रूप में लड़ाई के क्षेत्र में है, इस गर्हित आर्थिक दुरव्यवस्था में जाने देना न केवल भारत के सार्वजनिक जीवन के लिए, बल्कि ब्रिटिश शासन की परम्परा के लिए लज्जास्पद है। ब्रिटेन और भारत के सभी

सद्विचारशील व्यक्तियों को स्वार्थ, त्याग और विशाल सहृदयता के साथ शीघ्र ही इसका व्यावहारिक उपचार सोचना चाहिए।

४ दिसम्बर, १६४३:—हिन्दुस्तान में अन्न को एक जगह से दूसरी जगह ले जाने के लिए मालगाड़ियाँ बराबर मिलती रहेंगी।

८ दिसम्बर, १६४३:—भारत में १६८ करोड़ टन अन्न पैदा हुआ है। कमी २ करोड़ ८० लाख टन की होगी।

२६ दिसम्बर, १६४३:—मध्याह्न काल के समय एकाएक बिजुली की सी कौंध होने लगी। धरती और आकाश जैसे बमों के धमाकों से हिलने लगे।······तीन गाँवों पर आग बरस चुकी थी।······सारा वायुमंडल आग की तरह सुर्ख हो गया। ······अब घायल स्त्री-पुरुष और बच्चों के रोने कराहने की आवाज आ रही थी। जो मर गए थे, निर्जीव सोए थे।··· अकाल के कारण होने वाली मौतों के अनुभव के बाद, मृत्यु उनके लिए असाधारण बात रह गई है।···अधजले मांस के लोथड़े··लाशों को गीध नोच रहे थे।······

तीन हज़ार युवतियाँ वेश्यालयों में:—नौजवान बेटा नौकरी पर जाता है। वह लौटकर नहीं आता। बूढ़ा अपनी बुढ़िया को निकाल देता है और पतोहू अपनी सास को। बिधवाओं की हालत और भी खराब है। युवती माँ बच्चे का गला घोंट कर वेश्यालय की ओर बढ़ जाती है। माताएँ बेटियों, सास बहुओं को बेच देती हैं। कीमत बड़ी नहीं, यही दस आने से दस रुपए तक······

सरल का पत्र और केशव! बच्चों को जान से मार डालना। सतीत्व बेच देना। कंगाल मूर्ति खड़ी हुई—माँ गो! बाबू री!! बच्चों का पीला सूखा, भौंचक्का सा चेहरा। बड़ी बड़ी फीकी आँखें··· ··। बंगाल के इतिहास की सबसे बड़ी भगदड़! हजारों परिवार समुद्र तट से भीतर कस्बों, कस्बों से बड़े-बड़े शहरों की ओर बढ़ रहे हैं—किसान, बुनकर, मजदूर········· भूखों की कतारें········

सरल रामगढ़ में मिली थी। सन् १९४० मार्च को एक सुबह! केशव उसे अधिक नहीं पहचानता था। सरल ने चुपचाप हाथ जोड़ कर स्वागत

किया था। प्रेमलता के साथ वह आई थी। पुरानी सी बात। तब से आज तक की घटनाएँ याद रखना आसान नहीं है। कुछ घटनाएँ: ६ अप्रैल १९४० को नारवे का पतन, ११ मई को चेम्बरलेन का हट जाना, २२ जून १६४२ फ्रांस का पतन......२२ जून १६४१ को जर्मनी का रूस पर हमला। सन् १६४२ क्रिप्स का भारत आना...... ९ अगस्त......। फिर बंगाल का मृत्यु का चक्रः ५० हजार व्यक्तियों तक का प्रति दिवस चुपके मर जाना........। गाँधी जी का उपवास.........

सन् १६३६ और १९४४......युद्ध का पाँचवा साल......

—तो वह सरल, अगली सुबह वह उदास सी लगी। कहा था प्रेमलता से, "मैं रात की गाड़ी से जाने की सोच रही हूँ जीजी!"

"सरल, इस तरह भाग जाने से क्या लाभ होगा। नाखुश है किसी से और हमें छोड़कर भाग जावेगी। यह सारी स्थिति समझ में नहीं आती है। सुना केशव जी सरल वैराग्य लेने की सोच रही है।"

बोला केशव, "यह तो मैं बहुत पहिले से जानता था। लेकिन वह नया आश्रम कहाँ पर खुलेगा। पर्ण कुटीर होगी या आधुनिक आश्रम। वहाँ के रहने वाले बनवासियों को क्या विधान बरतना पड़ेगा। क्या कोई 'राउंड टेबुल कान्फरेन्स' करनी पड़ेगी। लीग ऑफ नेशन का जनाजा तो उठ चुका है; पर......।"

"मैं तीन बजे की गाड़ी से चली जाऊँ तो कैसा रहेगा जीजी? सुबह पाँच बजे पहुँच जाती हूँ।" कह कर उसने 'टाइम टेबुल' देखना शुरू कर दिया। कुछ देर उसे देखती रही फिर उठकर 'हॉलडाल' फैला दिया।

प्रेमलता किसी काम से बाहर, चली गई थी। अब उसे छेड़ने को बोला केशव, "मुहूर्त तो बुरा नहीं है तीन बजे......। नौ घन्टे बाकी हैं। फिर भी अभी से 'हॉलडाल' बाँध लेना जरूरी नहीं लगता है।"

सरल चुप रही तो सावधानी से पूछा केशव ने "सरल, क्या इस प्रकार भावुक होना उचित है?"

वह तो चुपचाप अपनी साड़ियों को 'सूटकेश' पर संभाल रही थी।

अब और-और कपड़े रखती रही।

"मैं इस भावुकता को अस्वीकार करता हूं। बिना किसी स्पष्ट कारण के क्या तेरा इस प्रकार चला जाना उचित होगा?"

सरल ने आइना, कंघी चूड़ियाँ आदि-आदि छोटी-छोटी चीजें भी डिब्बों में रखनी शुरू करदीं। वह अपनी तैयारी में जुटी हुई थी।

"और यदि तुम इस प्रकार चली ही जाना चाहो तो मैं रोकना नहीं चाहता हूँ। तुम स्वस्थ होकर अपनी तैयारी करलो। अच्छा, तो फिर स्टेशन पर मुलाकात होगी।"

"स्टेशन पर!"

"ठीक दो बजे पहुँच जावूँगा। एक मिनट की देरी नहीं होगी।" कह कर वह बाहर जाने को था कि कहा सरल ने, "सुनो·········।"

देखा केशव ने कि सरल खड़ी है, उसके हाथों में तह की रेशमी सारी धीरे-धीरे खिसक कर धरती पर गिर गई। वह उसे आँखें फाड़ फाड़ कर देख रही थी। वह अब तक उसी प्रकार खड़ी थी। बोली कुछ नहीं।

केशव ने उस झोपड़ी को देखा। उसके चार दिनों वाले अस्तित्व पर विचार किया। सरल पर सोचा। उससे वह इसी लिए सावधान रहता है। वह भावुक अधिक है। ऐसी धातु की बनी हुई है कि जरा झोंके से घिस जाती है। सरल कुछ क्षण तक उसी प्रकार मूक रही तो केशव ने कहा, "ऐसी बात क्या है सरल?"

"तुमसे कहा तो है कि मुझे तीन बजे की गाड़ी से बिदा कर दो।"

"मै बिदा करदूं, यह बात समझ में नहीं आती है। यह राजेन्द्र बाबू का प्रान्त है। वे सब को बिदा करेंगे। आज तो शायद बिदाई का दिन भी नहीं है।"

"फिर भी मैं आज चली जाना चाहती हूँ। आप एक बार हाँ भर कर दें।"

"मुझे कोई अधिकार नहीं है। यदि जाना आवश्यक हो, तो चली जाना। कल सभी तो जा रहे हैं।"

सरल चुप रही, केशव कहता ही रहा, "कल रात तुम्हारे भद्रलोक की झाँकियाँ देखीं। वह था बोस बाबू का दरबार ! जनता का कोई सहयोग नहीं। कुछ कॉलेज के फैशनेबुल विद्यार्थी और बाकी पूँजीपतियों के गुमाश्तों की जमात थी।"

वह जैसे कि कुछ नहीं सुन रही थी। सूटकेश वैसा ही खुला पड़ा हुआ था। 'हॉलडाल' पर चीजें बिखरी हुई थीं। वह चटाई पर सिर नीचा किए बैठी रही। उसी प्रकार अनमनी बैठी हुई थी। केशव चुप था।

सरल अपने रूठने पर पछता रही थी कि वह क्यों इस प्रकार व्यर्थ का खिलवाड़ रच देती है। लेकिन मन में एक काँटा चुभ चुका था। क्यों प्रेमलता इस प्रकार शासन किया करती हैं। वह तो बार-बार कहेगी कि उसे इन लोगों का नेतृत्व करना है। अविनाश के घर क्रान्तिकारी, सोशलिस्ट, गाँधी-वादी, कम्यूनिस्त, बोस पंथी; सब दलों के लोग टिका करते थे। उन सब से प्रेम का घनिष्ट परिचय है। वह जानती है कि प्रेम भारी भेद वाली बातों को मन में रख कर, सबकी विश्वासपात्र बन गई है। पुलीस और सी० आई० डी० वालों की आँखों में धूल झोंक कर, उनको आश्रय दिया। इस प्रकार उनकी रक्षा कर... में सफल रही है। अविनाश के प्रति एक बार सन्देह उठ जाने पर प्रेमलता ने सारी स्थिति सुलझाई थी। अविनाश कभी किसी का विश्वास पात्र नहीं रहा है। मध्यवर्ग के ऊपरी समाज का व्यक्ति ! सदा ठाटबाट से रहता था। अवसर पर पीछे हट जाना ही उसका काम था। उस प्रेम की आँखों में जादू था। वह दीपशिखा थी और वे सब पतिंगे......।

कहा था प्रेमलता ने—सरल, चाहती तो आई० सी० एस० की पत्नी बनकर हुकूमत करती। एक मुनसिफ साहब भी मुझ पर फिदा थे। एक बैरिस्टर साहब तो कहते थे कि वे हजारों की प्रेक्टिस छोड़ कर मेरे पीछे फकीर बन जावेंगे। एक करोड़पती दस लाख मुझे उपहार में देकर शादी करने की बात चला रहा था। सबसे मजेदार थे एक चालीस साल के राजा साहब, वे मुझे चौदह रानियों के ऊपर पटरानी बना लेने को तैयार थे। लेकिन मुझे यही रिश्ता पसन्द आया। पाँच घन्टे की जान पहचान में ही बरमाला

डाल दी। सब हैरत में थे कि मैंने यह क्या कर डाला है ?

प्रेमलता फिर कहती रही—ये युवक तो घोड़ों की तरह साड़ियों को देखकर हिनहिनाते हैं। यह आचरण बढ़ता जा रहा है। यह गंदगी और पतन समाज के लिए कल्याणकारी नहीं है। उसने सुनाया था कि वह दो-तीन बार पार्टियों म ड्रिन्क भी कर चुकी है। उसे खास आनन्द नहीं आया। वह नशा मन को प्रफुल्लित नहीं कर सका। यह मुझे एक फैशन सा लगा। निर्बल और अशक्त जाति का गुमराह होना !

चरित्र पर वह अधिक दलील न करके केवल यही कहती रही—यह नैतिकता का आदर्श एक ढोंग है। चरित्र की कसौटी अपने मन की थाह है। अपने आकर्षण का लुभाव मात्र है। चरित्र कभी चटखता नहीं है। वह स्थायी है। अपना विवेक उसे खरा खोटा बना देता है। उस पर सदा स्वस्थ दृष्टिकोण रखना चाहिए। वह रुग्ण ग्रन्थियों वाला नशा नहीं होना चाहिए।

तभी खिलखिलाते हुए प्रेम ने प्रवेश किया। बोली, "अरे यह क्या मान-मनौवल हो रहा है। शिकवा-शिकायतें चालू हो गईं। बात क्या है सरल ?"

"कुछ नहीं जीजी।" सरल उठ बैठी।

"और जो नोटिस दे दिया है कि आप तीन बजे की गाड़ी से जा रही हैं। सामान पैक हो रहा था।"

"कहाँ जा रही थी। सरल ?"

"कहीं भी नहीं ?"

"सुनो केशव, तुम हमारी सरल को बेकार ही न चिढ़ाया करो। वह बेचारी बड़ी सीधी लड़की है। उसकी समझ में आप लोगों की बातें और दलीलें नहीं आती हैं। तुम उसे व्यर्थ हरा देते हो। तुझे एक बात सुनाने आई हूं सरला। मैंने आज चाय पर कई लीडरानेवतन को बुला लिया है। कामरेड केशव आप भी आस्तीन चढ़ा लीजिए। आपको अपना 'उठ जाग भूखे बन्दी, उठा लाल तलवार' गाना पड़ेगा। मुझे तो 'इन्टरनेशनल' गाना

नहीं आता है। सरल का गला बहुत अच्छा है। अच्छा अब आप सिन्धी रिस्ता में चलिए। हम लोग भी तैयार होकर आती हैं।"

केशव चला गया। बोली सरल, "मेरी तबीयत ठीक नहीं है। मैं न आ सकूँगी।"

"तब तो तू किसी सिक्रेटेरियट के बाबू की बीबी बनने लायक है। क्यों क्या बात हो गई है ?"

सरल के आँसू टपक पड़े। यह देखकर प्रेमलता खिलखिलाई। कहा, "तो वालटर ग्रीन रंग की साड़ी पहिनेगी या जामुनी ? कपड़े ठीक पहन ले।"

प्रेम शृंगार करने लगी। सरल चुपचाप उसे देख रही थी। सचमुच प्रेमलता उसके लिए भी एक पहेली सी है। प्रेम ने कपड़े बदल लिए और तैयार हो गई। सरल उसका सौन्दर्य देखकर दंग रह गई। वह बहुत आकर्षक लगी। वह प्रेम से भयभीत हुई कि कहीं उसी को तो नहीं डस लेगी। वह प्रेम तरह-तरह के खेल खेला करती है। आज उसने अपनी असाधारण चेष्टा, यह चायपानी का आयोजन किया है। वह ऐसे करतब रचने में प्रवीण है। लेकिन आज सरल के मन में सौन्दर्य की स्पर्द्धा क्यों उठी ? नारी की ईर्ष्या कहाँ से आ गई। सोच रही थी कि क्या वह प्रेमलता के खेल की कठपुतली मात्र है ? जिसे कि प्रेम जिस तरह चाहे, नचाले। वह अपने को व्यर्थ ही निर्बल साबित करती है। वह सबल बनेगी।

"झगड़ा किस बात पर हुआ था, सरल ?" पूछा प्रेम ने।

"झगड़ा ?"

"तू केशव से रूठ क्यों गई ? यह तो तेरी हार थी कि तू भाग जाने की बात उससे कर बैठी। वह तो कल रात भर उन लोगों से दलील करता रहा। बहस बहुत गरम हो गई थी। उधर वाले वालिंटियर मारपीट पर उतारू हुए, तो उसने भी झोपड़ी से एक बांस का डंडा निकाल लिया। मैं न होती तो शायद लाठी चल पड़ती। तू खड़ी-खड़ी क्या देख रही है। जल्दी कपड़े पहिन ले। वे लोग इन्तजार कर रहे होंगे।"

"मैं नहीं चलूँगी !"

"नहीं चलेगी तू ? यह मचलना कब से सीख गई है ? भई हम केशव तो हैं नहीं। चलेगी मेरी सरल। टोस्ट मिलेगा, टिकिया, क्रीम रोल खिलाऊँगी। काफी पीना। और अपनी सबसे प्रिय वस्तु—आइस क्रीम।"

"लेकिन मेरा मन ठीक नहीं है।"

"उन जन्तुओं को देखकर तू स्वस्थ हो जावेगी। एक हैं जो ग्यारह साल की उम्र से पिस्तोल चलाते रहे हैं। बरसों पुलीस को धोखा देकर, तेरह साल अंडेमान की हवा खा आए हैं। आज वे रायपार्टी की रोशनी दुनिया को दिखला रहे हैं। उनकी दृष्टि में कांग्रेस भारतीय धनिक वर्गों द्वारा पोषित संस्था है—अप्रगतिशील !"

"प्रेम जीजी !"

"वे नए सोसलिस्ट नेता भी वहाँ होंगे। पहचान लेना। बढ़िया सिल्क की पतलून, हॉफ शर्ट और लाल टाई के ऊपर गाँधी टोपी। कहेंगे कि खादी पहनना और रामराज्य की कल्पना एक सी बात है। चल अब। यह तो बड़ी देर हो गई है। ऐसा न हो कि कहीं वे बेचारे इन्तजार करते-करते नए मौलवी केशव को परेशान कर दें।"

सरल मन में इन बातों पर सोचती रह गई कि प्रेम ने उसे सजाना शुरू कर दिया। उसके इनकार करने पर भी, उसे तैयार कर लिया। अब जब वे पार्टी में पहुँचीं तो देखा कि सोसलिस्ट साहब खड़े होकर, हाथ में काँटा लिए हुए उत्तेजित होकर कोई दलील कर रहे थे, मानों कि किसी नए किल्ले को फतह करने की बात सुना रहे हों। इन लोगों को देखकर सब अदब से खड़े हुए और फिर बैठ गए।

पूछा अविनाश ने, "बड़ी देर लगाई प्रेम ?"

"मैं तो तैयार थी, पर सरल पार्टी से किनारे कशी कर रही थी।"

"व्हाई ?" सोसलिस्ट साहब बोले।

प्रेम ने इसका कोई उत्तर न दे कर कहा केशव से "मौलवी साहब, उठकर 'स्टालिन केक' और 'गोरिंग चाय' के लिए वेटर से कह दो। सरल चाय

नहीं पीवेगी, मैं भी नहीं। हमारे लिए कॉफी की छोटी केतली काफी होगी। आश्रम के बाबा के लिए आलू का चाप, अनुशीलन दल वाले साहब के लिए आमलेट और सोसलिस्ट नेता साबुत अडा लेंगे। अविनाश तो......।"

"हरे तले चने ठीक रहेंगे।" अविनाश तुरंत बोला। सब हँस पड़े,

"मैं सिगार पी सकता हूँ, इजाजत है प्रेम जी?" कह कर एक साहब ने मोटा सिगार मुँह में अजीब तरीके से लगा कर सुलगा लिया। अब धुआं उगलने लग गए।

केशव अजीब उलझन में खड़ा हुआ था कि प्रेम उठी। बोली, "मैं देख आऊँ कि क्या क्या बना हुआ है? आप सब लोगों के पेट की चिन्ता करनी है।"

वह चली गई। सरल तो अभी ठीक तरह से संभल नही पाई थी। उसकी समझ में कुछ भी नहीं आया। राजनीति और उसकी बड़ी चर्चा से उसे खास दिलचस्पी नहीं है। वह अपनी पुस्तकों में मग्न रहती है। उसका राजनीति का दायरा अखबारों के मोटे अक्षरों वाले शीर्षकों तक सीमित है, उनका ज्ञान भर है। उनकी व्याख्या से अधिक सम्बन्ध नहीं रखती है। जितना बड़ा देश है, उतनी ही अधिक पार्टियो की संख्या है। उतनी ही विचार धाराएँ हैं। पत्रों में विचारों के संघर्ष सम्मुख आते हैं। प्रेम को उससे बहुत दिलचस्पी है। सरल साधारण जानकारी से सन्तुष्ट है। उसकी अपनी विचार धारा गाँधी जी तक सीमित है। जिनके 'सत्य के अनुभव' वह कई बार दुहरा तिहरा कर पढ़ चुकी है। वह उनके आदेशों को अचम्भा मानती है। उस लगोंटी वाले फकीर के लिए मन में बहुत आदर है।

खादी के मोटे कुरते और पाजामे वाले सज्जन कह रहे थे, "गाँधी जी का असहयोग आन्दोलन! वह गाँव गाँव में चरखा चलवा देगा। वह केवल भारतवर्ष ही नहीं; परन्तु सारे संसार की भलाई के लिए एक महान अस्त्र है। जहाँ कार्ल मार्क्स का सिद्धान्त समाप्त हो जाता है, चर्खे का सिद्धान्त उसकी कमी को पूरा करने के लिए है। साम्राज्यवाद से लड़ने के लिए कार्ल मार्क्स के अस्त्र की अपेक्षा चरखे का अस्त्र अधिक शक्तिशाली है।"

इस व्याख्यान के बाद वे जल्दी-जल्दी टोस्ट डकारने लग गये। फारवर्ड ब्लॉक के हिमायती ने पूछा, "सत्याग्रह तो चरखे के लिए 'पेट्रोल' का काम करता है, क्यों जनाब !"

पूरे टोस्ट को मुँह में ठोस, हाथ से इशारा किया कि वे ठहरें। जल्दी-जल्दी उसे निगल, चाय का एक पूरा प्याला पीकर वे जोर से बोले, "सत्याग्रह का अर्थ है सत्य के लिए; इसी लिए सत्याग्रह आत्मिक शक्ति है। सत्य आत्मा है। आत्मिक शक्ति में, हिंसा के लिए स्थान नहीं है। क्योंकि मानव पूर्ण सत्य को जानने में असमर्थ है। इसी लिए वह किसी को दंड देने में भी असमर्थ है।"

सरल चुपचाप सुन रही थी, प्रेम कॉफी का प्याला ओठ से लगाकर घूंट घूंट पी रही थी। प्रेम बोली, "दादा अंडेमान का हाल तो कई बार सुना है। मैंने 'भारत सरकार' की मोटी रिपोर्ट में आपके क्रान्तिकारी दल की बात पढ़ी है। धन्य कहती हूँ आप लोगों के साहस को। आजकल आपके क्रान्तिकारी संस्मरणों को पढ़ रही हूँ। आप उनको जल्दी छपवा लें। वे तो महीने-महीने किश्तों में निकल रहे हैं।

उस छोटे 'रिस्तोंरा' में बड़ी भीड़ हो चली थी। दादा ने चुपके उँगली सामने की मेज की ओर की और धीमे स्वर में बोले, "सी० आई० डी० !"

बड़े मोटे फ्रेम का चश्मा लगाए हुए सज्जन के मुँह से निकला, "शाले कुत्ते, चैन से चाय भी नहीं पीने देते हैं। कल रात भर मेरे पीछे-पीछे लगा रहा, जैसे कि कोहेनूर मेरे ही पास हो।" खाली प्याला प्रेम की ओर बढ़ा कर बोले, "कष्ट न हो तो एक प्याला !"

प्रेम केतली से चाय उड़ेलने लगी उस वातावरण में उन तीन शब्दों ने एक अजीब सी उलझन ला दी। केशव ने उधर देखा। एक पारसी सज्जन बैठे हुए सिगरेट फूंक रहे थे। प्रेम तो बारी-बारी से खाली चाय के प्याले बना रही थी। अविनाश जोर से बोला, "वेटर ! वेटर !!"

वेटर के पास पहुँचने पर बोला, "सिन्धी हलवा होगा। सरल तू तो

इसी को बहुत पसन्द करती है न।"

सी० आई० डी० और सिन्धी हलवा! सरल चुपचाप दोनों पर सोचने लगी। वह सी० आई० डी० वाला क्यों आया है? दादा अंडेमान में सात साल रहे हैं। क्रान्तिकारी सिद्धान्तों के लिए एक अरसे तक फरार रहे। तब समाचार पत्रों में उनका नाम छपता था। किस प्रकार वे मिलटरी पुलीस को चकमा देकर भाग गए। जबकि कई गाँवों को फौजों ने घेर रखा था। फिर भी वे निकल गए। इस खतरनाक व्यक्ति को पकड़ने के लिए कई हजार की बोली थी। आज वह उनके सामने था और उस सी० आई० डी० की ओर पहिले-पहल सब का ध्यान उन्होंने ही आकर्षित किया था।

"दादा को हलवा दो अविनाश। कौन जाने किस घड़ी इनको फिर पुलीस पकड़ कर ले जाय। रायवादी हैं तो क्या हुआ! पुलीस दलील देगी कि इनका पिछला इतिहास बहुत बुरा है। जो व्यक्ति पिस्तौल से लड़ना जानता है, वह किसी भी दिन पिस्तौल पा जाने पर भला उसे छोड़ सकता है।"

"प्रेम तुम यह न जाने क्यों व्यर्थ की बातें कहा करती हो। कभी तो चुप रहा कर। केशव तू क्या सोच रहा है? अरे कॉफी पीना चाहता है तो शर्म की क्या बात है। उसके पी लेने से 'फारवर्ड ब्लाक' में जाने का खतरा तो है नहीं।"

क्रीम रोल दाँतों से तोड़ते हुए बोले सोसलिस्ट, "गाँधी जी का तो असहयोग है और स्टालिन के चेले, हिटलर से दोस्ती करके मालपुआ पाने के हकदार हो गए हैं।"

केशव इन राजनीति सम्बन्धी बातों के बहुत समीप होने पर भी अब तक उससे अलग ही सा रहा है। इस चाय पार्टी में वह कुछ बोलना उचित नहीं समझता था। उसे व्यर्थ की दलीलों से दिलचस्पी नहीं है, फिर भी बोला, "पूँजीवाद, उस सड़े गले पूँजीवाद की मौत हो रही है। कल यूरोप के छोटे-छोटे राष्ट्र उसको कफन से ढककर दफना देवेंगे। जनता और साम्राज्यवाद का आज का संघर्ष, कल जनता और फासिस्तों का संघर्ष भी संभवतः बन

जाय। पूँजीवाद निर्बल है। अस्त्र-शस्त्र की ताकत सही ताकत नहीं होती। केवल जनता की ताकत पर ही विश्वास किया जा सकता है। आज कमजोर साम्राज्यवाद……।"

अविनाश ने बीच में ही टोक दिया, "कॉफी ठंडी हो रही है।" सोसलिस्ट साहब तो अपना बुझा हुआ सिगार फिर सुलगा रहे थे। दादा कनखियों से उस ओर देख रहे थे, जिधर कि पारसी सज्जन बैठे हुए थे। वे पारसी सज्जन एकाएक उठे और होटल का 'बिल' चुका कर बाहर चले गए। अब दादा ने चैन की साँस लेकर कहा, "प्रेम एक प्याला चाय और बना देना।"

"चीनी एक चिम्मच डालूँ दादा।"

"हाँ, यह भला आदमी भी पूना से साथ आया है।"

"दादा तुम क्या ऐसे-वैसे आसामी हो। मेरे वश की बात होती तो कोई पंजाबी पाधा तुम्हारे पीछे लगाती।"

दादा हँस पड़े। चाय का प्याला लेकर पीने लग गए। सब चुपचाप थे कि केशव ने कहा, "अब गाँधी जी का नया कदम समझना है। आज तक के कदमों को तो कोई नहीं समझ सका। उन्होंने फिर एक बार अपने राम राज्य की दुहाई दी है। वहाँ पक्षपात नहीं होगा। राजा भी रहेंगे और भिखारी भी। दोनों के अधिकार सुरक्षित रहेंगे, राजा, अमीर तो मालपुवे खावेंगे और भिखारी उनके दर-दर भीख मागेंगे।"

"हाँ भला कोई भिखारी क्यों रहे, गाँधी जी के दिमाग में यह सवाल कभी नहीं उठा। हम समाजवादी तो डंके की चोट से कहते हैं कि जमीदार और पूँजीपतियों का यह धन किसानों और मजदूरों की मेहनत से ही पैदा हुआ है। इसीलिये वह 'चोरी का माल' है।"

वे फिर सिगार को मुंह से लगा कर फूँकने लगे, जैसे कि यह इतना कहना बिलकुल ठीक था। अब तो दादा भी प्याला रखकर बोले, "गाँधी जी ने देश में थोड़ी सी जागृति तो फैलाई है, पर मुझे तो शक है कि भारतीय पूँजीपति वर्ग से मोह रखने वाले काँग्रेसी नेता जनता के प्रति अपनी वफादारी कायम रख सकेंगे। कानपुर की हड़ताल ने प्रान्त के कांग्रेसी मंत्रि-मंडल को

परेशान कर दिया था। उस हड़ताल में एक व्यवसायी के कथनानुसार अठारह करोड़ रुपए का नुकसान हुआ। उनके सम्मुख तो यह प्रश्न था कि क्या मज़दूरों को ऐसी हड़ताल करने का नैतिक अधिकार था। राष्ट्र की सम्पत्ति का इतना बड़ा नुकसान हो जाना!"

दादा एकाएक रुक पड़े। वे टकटकी लगाकर दरवाजे की ओर देख रहे थे। केशव ने देखा कि वे पारसी सज्जन बाहर खड़े-खड़े उन लोगों की ओर देख रहे हैं।

प्रेमलता ने देखा कि अब सब ऊब से गए हैं तो बोली, "अब आज की गोष्ठी बरखास्त की जाती है।"

सब लोग उठ खड़े हुए। लोगों के चले जाने पर प्रेम ने सरल से कहा, "तूने देख लिया न इनका हाल। सब दलील करने में एक दूसरे का कान काटने को तैयार हैं। पर स्वयं अपना कटा कान नहीं देखते हैं।"

"प्रेम पर्स देना।" बोला अविनाश।

प्रेम ने पर्स खोल लिया। बिल की ओर देख कर दस-दस के दो नोट दे दिए। बोली, "तुम्हारी उन मोटी किताबों पर रुपए खर्च करने से तो ऐसी पार्टी मुझे भली लगती है।"

"मैं इसका कारण जानता हूँ।"

"क्या?"

"औरतों की बुद्धि मोटी होती है न! उसे पैनी बनाने के लिए ही वे पार्टियों का आयोजन करती हैं।"

"तूने सुन लिया सरल! हैं केशव कहाँ चला गया है? शायद दादा के साथ। सरल, हमारा यह दादा एक असाधारण व्यक्ति है। पन्द्रह साल की उम्र से जेलों के अतिरिक्त इन्होंने कुछ नहीं देखा है। बड़े-बड़े षड्यंत्रों की पेशियों में जब ये लाए जाते थे तो सदा हथकड़ी बेड़ी लगी रहती थी। साथ में गोरे सारजन्ट रहते थे। एक बार तो दादा जेल मे अन्तर्धान हो गए। सरकार ने ऐलान किया था कि दादा कोई योग क्रिया जानते हैं? वह दादा आज अपने को बिलकुल अकेला पाता है। यह अपनी पुरानी धारणाओं के

कारण नई चेतनावाली शक्तियों के समीप न पहुँच कर, उनके आसपास मँडराते हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि आज दादा क्या हैं ? मैं तो उनको क्रान्तिकारी, रायवादी और फारवर्डब्लाक के मिश्रण वाले विचारों का व्यक्ति मानता हूं।"

"अविनाश तुम दादा के लिए......!

"सरल के गांधी जी और तेरे दादा, तभी तो कहता हूँ कि औरतों को आज भी गोबर के गणेश, पत्थर के विष्णु भगवान आदि की पूजा करने की आदत है। उनका ज्ञान इस पूजा वाली भावना से बाहर नहीं रहता है।"

"और तुम अविनाश ! पुलीस एक बार तलाशी लेने आई थी तो सारी सट्टी पट्टी भूल गए थे। उस समय तुम अपनी राजनीति की पुस्तकों के लिए कह रहे थे कि ऐ दोस्तों से मांग कर लाई हुई हैं। तुमारी उस दिन की सूरत मुझे खूब याद है। चल सरल, इन लोगों को तो सारी बुराइयां औरतों में ही दिखलाई पड़ती हैं।"

अविनाश के साथ-साथ वे लोग दूकान पर पहुँच गए। सरल अविनाश और प्रेमलता की बातों पर विचार करने लगी। कहीं विचारों में सामञ्जस्य नहीं है। फिर भी दोनो का जीवन मजे में चल रहा है। दोनों खुश रहते हैं। अविनाश कहीं चला गया था। प्रेमलता काउटर पर खड़ी खड़ी पुस्तकें बेचने लगी। एक बड़ी भीड़ इधर-उधर दीख पड़ती थी। छोटे-बड़े नेता गुजर रहे थे। सरल सब कुछ देखती रह गई। प्रेम तो हँसती, कभी वाउचर काटती, कभी किसी से तर्क कर लेती और एक समझदार व्यवसायी की भाँति सौदा कर रही थी। सरल कुरसी पर उस अपार भीड़ को बैठी देख रही थी वह चार दिनों के लिए बनाया गया बाजार ! वह झोपड़ियाँ, वे लोग !

दादा और केशव आ पहुँचे। केशव तो बोला, "खादी भंडार में नई नई साड़ियों की गाँठे अभी खुली हैं। चलेंगी प्रेम जी। सरल तुम भी तो कह रही थी !"

उसी प्रकार व्यस्त सी बोली प्रेम, "सरल तू देख आ। ठीक हों तो लेते आना।"

सरल बिना किसी आनाकानी के खड़ी हो गई थी। दादा, केशव और सरल दुकान पर पहुँच गए! सरल दादा की ओर देख रही थी—खिचड़ी बाल, टूटे दाँत! मानो कि दादा ने अपने समस्त जीवन में इन सब बातों की ओर ध्यान ही न दिया हो कि वे इतनी जल्दी बूढ़े से हो चले हैं।

दादा तो सरल को साड़ियाँ दिखला रहे थे। मानों कि वह बच्ची हो और अपना कोई निश्चित मत न रखती हो। जैसे कि दादा साड़ियाँ परखने में प्रवीण हों लेकिन बड़ी छानबीन के बाद सरल को एक भी साड़ी नहीं जँची। दादा अवाक रह गए। केशव चुपचाप खड़ा था। सब देख कर बोली वह, "सब वे ही पुराने डिजाइन हैं। ऐसी तो मेरे पास कई हैं।"

तीनों उठ गए। दादा उन डिजायनों पर अधिक नहीं सोच सके। वे अपने कैम्प की ओर चले गए। तब बोला केशव, "सरल दादा को पहचानना आसान काम नहीं है। उन्होंने जेल में छै भाषाएँ सीखी हैं, वह सारा वक्त उन्होंने ज्ञान प्राप्त करने में ही लगाया है। वे आज सही माने में राजनीति से अलग से हैं। उनका दिमाग परिवर्तनों को समझने की चेष्टा करता है। वे दर्शन के विद्वान हो गए हैं। मैं उनका ज्ञान देख कर दंग रह गया।"

"दादा मुझे भी पसन्द आए, मुझे साड़ियाँ दिखला रहे थे मानों छोटी बच्ची हूं।

"उनका अपार स्नेह सूख गया। जेल की यातनाएँ! परिवार से दूर रहना। प्रेम और विछोह का संसार न देखना। केवल माँ का ही स्नेह पाकर वे पनपे हैं और फिर देशभक्ति का स्नेह उनका सच्चा प्रेम रहा है। जेल की अँधियारी काली रातें, सेसन से फाँसी की सजा का होना। महीनों तक फाँसी का कैदी कहलाना। फिर एकाएक हाईकोर्ट का फैसला कि कालापानी में सजा बदल दी गई। यह सुन कर दादा उस दिन दिन भर रोते रहे।"

"कहाँ जा रहे हो। जीजी प्रतीक्षा में होगी।"

"तुम थक गई हो सरल?

"नहीं तो।"

"शायद अब नाखुश भी नहीं हो।"

"मैं......!"

"खैर मैं उत्तर नहीं सुनना चाहता हूँ, लेकिन सरल परिस्थिति काफी गंभीर है। मैं देश की हालत की बात कह रहा था। हम लोगों के सम्मुख कई टेढ़े सवाल हैं। यह दूसरा साम्राज्यवादी युद्ध है। हम सब एक उपनिवेश के लोग हैं जिनका... ..।"

"केशव।"

"तुम डर क्यों जाती हो।"

"केशव सन् १६३० के सत्याग्रह की धुंधली स्मृति मुझे है। जो कि केवल सुना और पढ़ा है, गाँधी जी की डांडी यात्रा......वह नमक सत्याग्रह...वे अत्याचार......!"

"लेकिन सरल ग्यारह साल बाद हम रामगढ़ में खड़े हैं। कुछ बड़े-बड़े अन्तर्राष्ट्रीय परिवर्तनों के बाद आज की दुनिया का नकशा सन् १९३० का सा नहीं है। तुम क्या सोचती हो?"

"मैं कुछ नहीं सोचती हूं केशव।"

"शायद यह तूफान, ये काले-काले बादल! रामगढ़ के ऊपर जो काले-काले बादल प्रकृति ने छा दिए हैं, उनसे भी घने और काले-काले बादल देश पर छाए हुए हैं।"

"काले-काले और घने बादल न केशव?" सरल शायद सब कुछ सुन लेने के लिए उत्सुक थी।

आँधियाँ और तूफान, तूफान और आँधियाँ; भुखमरी, प्लेग, महामारी चेचक! परिवार के परिवार का नष्ट हो जाना, माँ बहिनों की लाज का प्रश्न; बाल बच्चों को प्यार की निगाह से देखना, फासिस्तों से देश की रक्षा करना!

सरल का लिखना—'एक साधारण परिवार का ढांचा है। यह अधेड़ उम्र का आदमी, उसकी पत्नी बच्चे और शायद एक कोई और सम्बन्धी। वे बारिश से बचने के लिए एक छाता ताने थे। कहीं दूर गाँव का रहने वाला

परिवार ! सारी उम्र की कमाई पहिले महीने में खत्म हो गई। दूसरे महीने पुरुष भीख मागते थे और स्त्रियाँ नाज की दूकानों के सामने सेर भर चावल के लिए रात और दिन एक करती थीं। इस तरह पेट तो किसी भाँति भर जाता था। पर दूसरे महीने घर का किराया कहाँ से आता ? महीना समाप्त होते ही मकान मालिक ने मकान पर ताला डाल दिया। स्त्री पुरुष और बच्चे सब कोई अपनी मिट्टी की हंडिया और थालियाँ लेकर बाहर आ पड़े। भीख मांगते हैं और पाँच छै आना रोज कमाते हैं, जिसमे परिवार को एक जून भी पूरा खाना नहीं मिलता है। वे मुफ्त भोजनालयों में खाना नहीं खाते, कहते हैं—वहाँ तो बड़ी भीड़ रहती है। फिर डबल डबल पैसे के लिए तो हाथ पसारा जा सकता है; पर दाल भात के लिए कोई कैसे भीख माँग सकता है ? हम सब भिखमंगे नहीं हैं। अपनी मेहनत का पैसा खाने वाले चासी (किसान) हैं। कहीं नौकरी मिल जाय तो कर सकते हैं।

साधारण मजूर-किसान का वह अभिमान ! तुमको इस जाति के अभिमान के लिए कुछ कहना है ? उनका वह गौरव ? सड़कों पर सब का एक दूसरे को देखकर मर जाना !

और उस मृणाल का एक अभिमान ! मैं उसकी माँ के पास गई थी। उसका भाई मैंने देखा। उसकी माँ ने एक अपराधी की भाँति स्वीकार कर लिया है कि वह सारी बातें जानती थी। बोली थी—सरल मृणाल के उस कर्म, उस पाप के लिए कभी मुक्ति नहीं मिलेगी। मैं स्वप्न में देखती हूँ कि वह गंदी मैली साड़ी में पानी के बिना तड़पती रहती है। क्या होगा अब ? क्या वह नरक में जावेगी ?"

वह फूट-फूट कर रोने लगी। अपनी बेटी की मौत के बाद, उसको अपने दूसरे जन्म की चिन्ता है। ये संस्कार क्यों इस प्रकार निर्बल बना देते हैं ? वह स्वर्ग और नरक की झाँकियाँ !

जब कि जीवन और मृत्यु के संघर्ष में सब पड़े हुए हैं। सब एकएक दाना अन्न की तलाश में भटक रहे हैं। स्त्रियाँ और असहाय बच्चे एक-एक दाने के लिए......

मृणाल की माँ का उस तरह फूट-फूट कर रोना ! उसने मुझे मृणाल की चीज़ें दिखलाईं। उसकी छोटी लाइब्रेरी; उसके सन्दूक और उसका छोटा सा अपना कमरा। चार बच्चों को खो देने वाली माँ को अपने तीन बच्चों से अधिक चिन्ता थी मृणाल के लिए। सोचती थी कि उसकी अच्छी गति नहीं हुई। वह भूत-पिशाच बन कर मरघटों में डोलती रहेगी।

भूत और पिशाचों की छाया.....! वे पिशाचों की छायाएँ .....!! क्या सचमुच कर्म की व्याख्या है पिशाच और देवता बन जाना ? कर्म का चक्र ! वह मरघट से महलों तक चलता है। वह चक्र.....! पिता जी की चिन्ता बढ़ती जा रही है। वे आजकल कर्मों की व्याख्या करते हैं। काली माता के नाम की दुहाई देते हैं। कहते हैं—ऐसा अकाल कभी नहीं पड़ा। कभी नहीं—कभी नहीं, ऐसा तूफ़ान कभी नहीं आया। कभी नहीं। नौकरानी कल बड़ी रात में लौटकर आई। बोली थी—कन्ट्रोल की दूकानों पर बड़ी भीड़ रहती है। दिन भर खड़ी रही। मेरे बच्चे दो दिन से भूखे हैं। उनसे कहती हूँ—रोवोगे तो पिशाच सुन लेगें—वह सुनो .....।

आधी आधी रात को सड़कों से उठने वाला वह मानव स्वर ! वह पिशाचों की बस्ती। जिसे सब समझ कर भी समझ नहीं पाते हैं।

नौकरानी का कहना है—कन्ट्रोल के दूकानदार सरकारी गुमाश्ते हैं। जान बूझ कर सब को मार डालना चाहते हैं।

यह कन्ट्रोल किसी की समझ में नहीं आता ! बस्तियों की औरतें खड़ी-खड़ी इन्तज़ार करती रहती हैं। दूकानदार ऐलान करता है कि सामान चूक गया है। सब हताश लौट आती हैं।

नौकरानी कहती थी—यह सब धोखा है। दिखलावा है। सब हमको दाने-दाने के बिना मार डालना चाहते हैं।

फिर वह पूछती थी—सुभाष बाबू क्या सचमुच चावल लावेंगे ?"

सुभाष बाबू के चावल बाटने की बात बस्ती-बस्ती के भीतर फैली हुई है। ब्रह्मा, जो कि एक सुपनों का देश है। वहाँ से चावल आवेंगे। बंगाल उस भात को खाकर जी उठेगा।

उन चावलों को क्यों नहीं आने देना चाहती है यह सरकार ! लोग मर रहे हैं। फिर भी……।

नौकरानी कई बातें सुनाती थी। कोई 'आत्म रक्षा समिति' खुल गई है। हिन्दुस्तान से बंगाल को सेठ रुपया भेज रहे हैं। बंगाली, मारवाड़ी, मुसलमानी, सब तरह के लंगर खाने खुल गए हैं। बंगाल की ओर सारे देश की आँखें हैं। फिर भी बंगाल मर रहा है। मिट रहा है।

शायद बंगाल के भाग्य में यही बदा था। व्यक्ति-व्यक्ति का कर्म देश का कर्म चक्र आज बनता चला गया। पिछले साल किसानों की औरतें भीख माँगती थीं। इस साल भीख नहीं मिलती है। अब दो कौर खिचड़ी के लिए शरीर बेचना पड़ता है। माताएँ भूख से मरती हैं, तो घर से कोसों दूर अपने बच्चों को छोड़ देती हैं। शायद कोई रहम दिल उठाकर ले जाय। मानव भावनाएँ नष्ट-भ्रष्ट हो गई हैं। आपसी कोई सम्बन्ध जैसे नहीं रहा हो। सारा देश एक विचित्र स्थिति को पार कर रहा है। गावों, बस्तियों, देहात से झुंड के झुंड लोग एक लंबी मंजिल तय करके कलकत्ते की ओर आ रहे हैं। मानो कलकत्ता जो एक बड़ा नगर है, वह सब को आश्रय दे देगा। कलकत्ता जहाँ कि बंगाल के भाग्य विधाता रहते हैं।

नौकरानी कहती है कि अब कलकत्ता के सब लोग मर जावेंगे। उसका बच्चा बहुत बीमार था। वह उसे अस्पताल ले गई। वहाँ डाक्टर ने कहा कि कोई जगह नहीं है। अस्पताल में मुर्दे भरती नहीं होते हैं। वह फिर उस बच्चे को गोदी से चिपकाए रात को राशन की दूकान के बाहर लेटी रही। कतार बनाकर सैकड़ों औरतें उसी प्रकार रात भर पड़ी रहती हैं कि सुबह को उनकी बारी आ जाय। एकाएक पानी बरसने लगा। वहाँ कोई छाँह नहीं थी। सब उसी प्रकार रहे। सात बजे सुबह क्लार्क आया और नौ बजे उसने ऐलान किया कि नाज चूक गया है। अब वह होश में आई। ज्ञात हुआ कि बच्चा मर गया है। वह रोई नहीं। आज इस साधारण सी मौत के लिए कोई आँसू नहीं बहाता है। वह सारी भावुकता सूख गई है। वह बच्चे को वहीं छोड़ आई और भीख की तलाश में निकल पड़ी कि और

तीन बच्चों का भार उस पर है। वह अपनी माता वाली जिम्मेदारी जानती थी। पति कहीं दूर फौज में कहार है। जो माहवारी मनिआर्डर आता है, वह चार दिन के लिए भी काफी नहीं है।

मृणाल की एक सहेली मुझसे मिलने आई थी, बोली थी—मृणाल का जीवन सत्य था। वही एक मात्र रास्ता हमारे लिए बचा है। मैं स्वयं उस पतित जीवन की ओर अग्रसर होने वाली हूँ। कोई उपाय नहीं है। आज सात रोज से परिवार भूखा है। इस मौत से वह मृणाल की मौत कहीं भली थी।

मैं उसकी बात को सुनकर अचरज में पड़ गई। बीच वाले परिवारों की नैतिकता और उनकी असहायता! इससे पहिले कि मैं कुछ कहूँ, वह बोली—शायद मृणाल हमें सही रास्ता दिखला गयी है। वह नैतिकता एक ढोंग है। हमारे पास और कोई अस्त्र भी नहीं है। वे पैसे वाले हमारी इस नैतिकता पर विश्वास नहीं करते हैं। कहते हैं—यह सब एक ढोंग है। कल को दर-दर भटकेंगी। तू बता न सरल, क्या हाथ पसार कर भीख माँगना उचित है! क्या लंगर खाने में जाकर खाना खाने बैठना, वह हमारी मर्यादा के प्रति एक व्यंग नहीं होगा। तू चुप क्यों है सरल? मैं तुझे समझदार मानती आई हूँ। विवेक से तर्क कर। हम पराधीन देश की लड़कियाँ हैं। हमारी मर्यादा कुछ भी नहीं है। अथवा आज इस अकाल में क्या हमारी रक्षा हमारी जाति न करती। वह निर्बल जाति, जो हमारी रक्षा नहीं कर सकती है। समाज अपने विधानों के भीतर मुँह छुपाए बैठा है। तब हम ही क्या करें? बता न तू, आज तेरा वह विवेक, वह तर्क और वह सारा ज्ञान कहाँ है?

बोली थी मैं,—मैं उस सब पर विश्वास नहीं करती—नहीं करती। मृणाल एक उदाहरण नहीं है, फिर भी उस पर मेरी श्रद्धा है। जो तुम कहती हो...

अधिक न कह कर मैं चुप रह गई। अहिल्या का शाप से पाषाण बन जाना। गुरु पत्नी के प्रति चन्द्रमा का आकर्षण! पुराणों के वे उदा-

हरण नारी की असहायता के सही दृष्टान्त हैं। और आज की यह भूख!

मैं चेष्टा करके भी मृणाल की माँ को सन्तोष नहीं दे पाती हूँ। वह नरक का वर्णन करती है कि वहाँ किस प्रकार की यातना दी जाती है। चरित्र-हीन लड़कियों को यमराज के दूत गरम शलाखों से दागते हैं। वह उस यातना का वर्णन करती-करती फूट-फूट कर रोने लगती है।

वह नरक की यातना! कलकत्ते का स्वर्ग और नरक!! मरे व्यक्ति की यातना और जीवित वर्ग की मौत की पगडंडी! यम का ज्ञान!! एक भारी श्मशान!!!

हमारे दरवाजे की देहली पर एक युवती मर गई थी। सब लोग उस खेल को देखने दौड़ पड़े। पीला चेहरा, हाथ खुले, चार चूड़ियाँ और सुहाग। सावलें रंग की उस युवती का चेहरा मौत की छाया से खौफनाक नहीं बन सका था। एक जीवित छोटी बच्ची उससे चिपकी थी। मैंने चाहा कि उसे उठा कर ले आऊँ। माँ ने मना कर दिया। सब लोग भीतर लौट आए। कुछ देर बाद किसी ने आकर खबर दी कि उस बच्ची को कुत्ते खा रहे हैं। वह चीख रही थी। मैंने ऊपर खिड़की से देखा कि चील और कुत्ते उस पर टूट पड़े थे। वह धीरे-धीरे अपना प्राण दे रही थी। लेकिन वह तसवीर भयानक नहीं लगी। यह घटना, मन पर कोई प्रभाव नहीं डाल सकी। उस युवती का सुहाग, मकान की देहली पर असहाय मर जाना। वह उसकी बच्ची, मानव के आपसी सम्बन्ध! और उस पर हाथ पसारे भीख माँगते मर जाना। यह कलकत्ता है, जहाँ कि आज मुर्दे भी भीख माँगते हैं। उनकी हथेलियाँ खुली रहती हैं। उनकी आँखों की पुतलियाँ बन्द नहीं होती हैं। वे आसरा लगाए रहते हैं कि कोई दयावान आकर उनको भीख जरूर देगा। वह भीख़ बहुत बड़ी माँग नहीं है। वे केवल एक वक्त खाना माँगते हैं। यही केवल एक वक्त खाना! भारत अन्न का भंडार कहा जाता है। उसी की सन्तानें एक वक्त अन्न की भीख माँगती हैं। लेकिन वह नहीं मिलती। वे यह भी नहीं पाते हैं।

उस युवती की मौत की चर्चा बड़ी रात तक रही। सब लोग बड़ी

देर तक बैठ कर उस पर विचार करते रहे। पिता जी के चेहरे पर मैंने एक अजीब उदासी देखी। वे बार-बार भारी स्नेह के साथ हम लोगों को देखकर आँखें मूंद लेते थे, वे कुछ नहीं बोले। बड़ी रात तक कोई सो नहीं सका। मैं ऊपर कमरे में लेटी हुई थी कि मृणाल की सहेली आ गई। आकर बोली, "घर गई थी, वहाँ वे लोग सो गए हैं। यहाँ रोशनी देखकर दरवाजा खटखटाया।"

पूछा मैंने, "तुम कहाँ से आ रही हो?"

"सरल, मैं मृणाल नहीं बन सकती हूँ। इसीलिए लौट आई। पाप का डर लग गया। बड़े खौफनाक लोग हैं वे······।"

"कौन?·········।"

"मुझे टटोल कर एक बोला—तुम तो आठ आने के लायक भी नहीं हो। कल तुम से अच्छी एक लड़की दस रुपए में बिक गई। उसका रंग खूब गोरा था। सब लोग हँस पड़े। वहाँ, सैकड़ों लड़कियाँ जमा थी। मैं भाग आई सरल! वह जीवन आफ! वह कहता था दो रुपए वह देगा। चाहे रात भर रहूँ या घंटे दो घंटे मन बहलाकर चली जाऊँ।"

मैं उसकी बातें सुनकर दंग रह गई। यह कैसा भाव-तोल था? हम दोनों सो गईं, लेकिन मुझे नींद नहीं आई। वह देहली पर मरी युवती, उसकी माँग पर भरा सुहाग! उसका पति कहाँ होगा? वह परिवार जो टूट गया। जिसका एक-एक व्यक्ति एक दूसरे से दूर मर जाता है। वह दो रुपया में घंटे दो घंटे का मनबहलाव! गाँवों में स्त्रियों के लिए दल्लाल घूमते हैं। भूख से पीड़ित स्त्रियों को चावल का लालच दिखला कर शहर ले आते हैं। वे इस उम्मीद में चली आती हैं कि धनी आदमियों के घर दासी का काम पा जावेंगी। अकाल ने तो हमारा आर्थिक जीवन ही नष्ट कर दिया है।

मुझे नींद फिर भी नहीं आई लगा कि यमदूत मृणाल को लोहे की सीखों से दाग रहे हैं। और वह देहली पर पड़ी युवती हम पर मुस्करा रही है। मैं भय से चीख उठी, मेरा सारा शरीर काँप उठा। मैंने उसे जगाया। वह आँखें मल कर उठ बैठी। पूछा "क्या बात है?"

"मुझे बहुत डर लग रहा है।"

"डर!"

"हाँ, आज एक युवती हमारी देहली पर भूख से तड़प तड़प कर मर गई। उसकी बच्ची पर चील और कुत्ते झपट पड़े।"

वह तो खिलखिलाकर हँस पड़ी, कहा,"सरल मकान की चहर दिवारी के भीतर अखबारों की दुनिया में रहती हो। इसी लिए अभी भावुक है। यहाँ से बाहर की दुनिया कुछ और ही है।"

"बाहर की दुनिया।......?"

"हाँ सरल, बाहर का हाल तो तू नहीं जानती है न! मैं आ रही हूँ, वह सब कुछ देखकर। मैं मामी के गाँव गई थी पिछले हफ्ते वहाँ का हाल देखकर दंग रह गई। मामा के घर के सब लोग मर गए हैं। केवल एक मामी बची हुई हैं। गाँव में एक भी घर साबुत नहीं था। मुझे लगा कि सारा वैभव नष्ट हो गया है। लोग चूहों की तरह मर गए। इधर-उधर हड्डियाँ-हड्डियाँ दिखाई पड़ती थीं। डर लगता था कि कहीं वे सब खड़ी होकर न पूछ बैठें कि—भात लाए हो? एक दिन गाँव में रात-दिन रोने—कराहने के अतिरिक्त कुछ नहीं सुनाई पड़ता था। आज सब कुछ शान्त है। मामा के एक नर कंकाल से पड़ोसी ने हमें देखकर कहा—'आओ, आज तुमारे मामा होते, तो सत्कार करते। अकाल के बाद, हैजा आया, चार दिन में वह सारा परिवार नष्ट हो गया। आठ सौ का गाँव था। आज चालीस-पचास भी नहीं बचे हैं। चाटुर्ज्या बाबू का घर का यह हाल! कितने भले थे।'

"सब घरों की टीने उखाड़ दी गई थीं। उन टीनों से भी पेट नहीं भरा। मामी वह घर छोड़ना नहीं चाहती थी। वह कहने लगी कि सब शक्तिहीन हो गए थे। फिर वंश परम्परागत स्वाभिमान! लड़की के घर जाने पर कोई उतारू नहीं हुआ। एक-एक कर सब मरे, मामी ने सब को मरते देखा। पास के खेत की मेड़ पर खड़े होकर उसने दिखलाए चार नर कंकाल। वह उंगली से वताती थी कि कौन मामा थे, कौन नानी और वे दो छोटे से ......। मामी की आँखे बरस पड़ीं! वह बोली, आज पहिले पहल तीन

महीने में आँसू आए हैं ।'

"फिर वह खिलखिलाकर हँसी । बार-बार वह उनको दिखलाती थी। बोली फिर 'मैं इनमें बहुतों को पहचानती हूँ, वह, वह दूसरा वह तीसरा वह चौथा·········!' मामी गाँव की औरतों, वहाँ के मर्दों की हड्डियों वाले नर कंकाल पहचानवाना चाहती थी। मानो कि वे आज भी सगे हों और वह परिचय आवश्यक था ।

"मामी की बीभत्स हँसी बीच-बीच में भारी भय पैदा कर देती थी, एकाएक वह बोली 'तब पहिले बड़ी भूख लगती थी। फिर वह खुद ही लोप हो गई । आपस में एक दूसरे को देखकर सान्त्वना से पड़े रहते थे। एक के मर जाने पर दूसरे की मौत की प्रतीक्षा करते रहे ।'

"धुँधली संध्या को वे नर कंकाल जैसे कि चुपचाप सोए थे। कोई उनको जगाने वाला नहीं है। सामने भट्टी से धुआँ ऊपर उठ रहा था। बोली मामी 'चलो, फिर शायद वहाँ भी खाना चूक जावेगा । वह लंगर खाने की ओर तेजी से बढ़ गई ।'

"मामी को कलकत्ता भला नहीं लगता है। बार-बार वह अपने गाँव की याद करती है। वहाँ लौट जाना चाहती है । मामा का वह सोने का परिवार, वे सुन्दर खेत, वे फसलें·········। इस अकाल ने, इस भुखमरी ने वह सब न जाने क्या कर दिया है। सब बातें जैसे कि झूठ ही हों और मामा कभी आकर हम सब को वहाँ ले जावेंगे । यह कितनी झूठी कल्पना है । मामी चुप रहती है। किसी से कुछ नहीं बोलती। अक्सर गाँव की चर्चा करती है । यह शहर का जीवन उसे नापसन्द है। वहाँ का मलेरिया भी उसे सुखकर लगता है।"

मैं चुपचाप सब कुछ सुन रही थी, हठात् वह पूछ बैठी, "तुम कल मामी के पास चलोगी, सरल ।"

"नहीं ।"

"क्यों ?"

"मुझे बाहर जाने में न जाने क्यों भय सा लगता है, कलकत्ता शहर...,

यह विशाल नगर !"

"सरल यह सब भावुकता है। आज भी सब काम चालू हैं, रेस होने वाली है। आज उसके बड़े-बड़े पोस्टर टंगे हुए थे। दिल्ली, लाहौर, बम्बई, पूना से घोड़े और घुड़सवार आए हैं। सिनेमाघरों के मालिक आज भी उसी प्रकार नई-नई फिल्मों का विज्ञापन करते हैं। जो मर रहे हैं, लोगों को उनसे मतलब नहीं है।"

"लेकिन वे लाशों से भरी सड़कें।"

"सो जा सरल, एक लाश को देखकर जब तू उद्विग्न हो गई तो और सब देख कर तो तू पागल बन जाती।"

और सचमुच हम सो गईं, किन्तु जीवन का एक भूचाल जो हम पर छा गया था, एक बेबसी थी, एक कमजोरी......

श्यामाप्रसाद मुखर्जी, अनुशीलन दल, इस्फानी, चोर बाजार, सिक्रेटेरियट की लाल फीतों वाली फाइलें, मंत्रि-मंडल और लाशें ! लाशें !! लाशें !!! असहाय, वे घरबार, मित्रों से दूर, अपने गाँवों को फिर कभी न देख सकने वाले लोग; जो कि शहरों में असहाय की भाँति, जहाँ स्थान मिला लेट कर मर गए। जीवन एक संघर्ष है। संघर्ष सफलता की कुंजी है। वह संघर्ष और बंगाल का व्यापारी ? व्यापारी अन्न चोर बन गया। सारा चावल चुरा लिया। आगे जनता सड़कों, लंगर खानों, वेश्यालयों और श्मशान घाटों की राही बन गई। चावल और राजनीति, समाज और चावल, चावल और भुखमरी, नैतिकता और चावल......चावल......चावल......चावल ! लाशें..... लाशें......लाशें !! वेश्यालय..... चकले......सतीत्व का भाव-तोल !!!

रामगढ़, काले-काले छाए बादल !... ...युद्ध आरंभ हो चुका था... ...सरल की वह मूकता......वह भावुकता . ...! छोटी-छोटी घटनाएँ... ...। जीवन की तीव्र गति और बंगाल का अकाल। मलाया ब्रह्मा का पतन......क्रिप्स का भारत के लिए एक योजना लेकर आना... .। अगस्त

९·· ···। लपटों और जोश का झोंका·····। भुखमरी का बंगाल, जो मर कर भी जीवित ही है। भूख से व्याकुल देश, आज भी अपनी संस्कृति का माथा उठाए हुए है। आँधी और तूफान के बीच फंसे लोग, नया रास्ता निकालने की ओर अग्रसर हैं। नर पिशाच अनाज चोर आज भी अपनी करतूतों से बाज नहीं आते हैं। अपने व्यक्तिगत स्वार्थों के लिये, एक बड़ी तादाद वाली जनता को भूखों मार डालने वाले अपराधी !

फिर वही युद्ध······चौथा वर्ष······चटगाँव पर बम वर्षा······ भुखमरी से मरी निर्बल जनता पर एक और प्रहार······। कुछ मिनटों तक सिर्फ धमाके, बिजुली की सी कड़क और बमों के फटने की भयंकर आवाजें गूँज उठती हैं। सारा वायु मंडल आग की भाँति सुर्ख हो गया।······कुछ देर के बाद शान्ति। आग के अलाव अब भी जल रहे थे। पर शब्द केवल स्त्री-पुरुषों, बच्चों और जख्मियों के रोने कराहने का ही था।······जगह-जगह धरती भीतर धँस गई। घर ढेर हो गए थे। इधर उधर गाएँ मरी पड़ी थीं। उनका रक्त जमीन पर फैला हुआ था। पेड़ टूट-टूट कर जमीन पर आ रहे थे।······और मनुष्यों के शरीरों के टुकड़े-टुकड़े !······एक लड़की की लँहूलहान लाश····· !! घास की बगारें जल कर खाक हो गई थीं। लाशें ! लाशें !! लाशें !!! गीद्ध मुर्दों पर टूट रहे थे। भूख······भुखमरी······ जापानी हमला··· ··बम वर्षा··:··। दो विनाशकारी धाराओं के बीच फँसा हुआ देश······। एक बड़ी जनता मुसीबत में फँस कर मर रही है। वे जाति-भेद नहीं जानते हैं। हिन्दू-मुसलमान, किसान-मजदूर, बढ़ई-मछुवे······। सब अपने को एक भारतवासी पाकर साथ-साथ दम तोड़ते हैं। वे लाशें, जाति और वर्ष की सीमा से बाहर हैं। वे हड्डियों से भरे मैदान, जहाँ जाति और वर्ग का भेद मिट गया है। मर कर सब ने शायद सीख लिया कि सब एक हैं। न हिन्दू है, न मुसलमान, न काँग्रेसी, न मुसलिम लीगी, न फारवर्ड ब्लाक के और न······। सब आज मिल कर एका कर बैठे हैं कि इस मुसीबत में हम एक ही हैं। और वह कलकत्ते की विशाल नगरी ? वहाँ सिक्रेटेरियट की इमारत की कौंसिल में संघर्ष······फजलुल हक, श्यामाप्रसाद की दलीलें···

…वह चावल चोर……मौत के घने काले परदे में जीवन का जीवट प्रहसन का प्रदर्शन……। वे राजनीतिक वर्ग जो नरकंकालों के ऊपर सतरंज का खेल खेल रहे हैं यदि एक हो जाय तो……। मौत की वह भयंकर बाजी…।

बंगाल की मौत……। मृणाल, सरल, बंगाल की नारी जाति के दो प्रतीक !!……मध्य वर्ग का टूटता हुआ ढाँचा। वह देहाती जनता……। उस वातावरण की प्रेत छाया। वह मुरदों का भात ! भात !! भात चिल्लाना !!! भूखों की टोलियाँ, मुर्दों की पाँतियाँ,……। सरल का जीवन। धर्म और कर्म की नागफांस। सरल की वह भावुकता आज भी क्या उसे घेरे रहती है ? वह सरल, जो जीवन के प्रति कभी उदासीन नहीं रही। प्रेमलता सोचती थी कि वह जीवन सपने, सुनने और सपनों का बना बड़ा ढेर है। सरल तो वर्तमान और भविष्य का एक संघर्ष स्वीकार करती थी। साधारण सा संघर्ष जहाँ कि कर्त्तव्य से विमुख न होकर, अपने उत्तरदायित्व को निभाना ही सच सा है और बाकी सब झूठा। घने बादलों की छाया और रामगढ़ !

कुहरा सा छा गया था सरल के चेहरे पर। वह कुछ बोल न सकी थी। अवाक रह गई। जैसे कि दुनिया का बड़ा नकशा वह आसानी से देख लेती है कि पाँच महासागर हैं और पाँच ही महाद्वीप भी हैं। पहाड़ हैं जिनकी सब से ऊँची चोटी एवरिस्ट है। झीले हैं, नदी हैं, रेगिस्तान हैं, मैदान हैं, पठार हैं……,तरह-तरह की आबहवा हैं। देश हैं, जहाँ के लोगों का रहन-सहन भिन्न-भिन्न सा है। विज्ञान ने आज सब देशों को मिला दिया है। कभी एक जमाने में तो यह दुनिया बहुत बड़ी लगती थी आज अब बड़ी नहीं लगती है। यह युद्ध बड़ी दूर हो रहा है, पर उसका असर सब पर पड़ रहा है। कोई जैसे कि उससे अलग नहीं हो। सब दल के नेता रामगढ़ में इकट्ठा हुए हैं कि इस युद्ध में वे क्या करें। सरल तो उसी प्रकार अवाक सी खड़ी थी। तो बोला केशव, "सरल क्या सोच रही हो तुम।"

सरल ने आँखों की पलकें ऊपर उठाईं। चुप फिर भी रही। वह युद्ध की बात नहीं समझ पाती है। १९१४-१८ का युद्ध एक घटना सा लगता है। जिसका ठीक सा ज्ञान उसे नहीं। आज का युद्ध भी समझ में

नहीं आता। कभी इनसान युद्ध करता था, वह युद्ध धर्म युद्ध कहलाता था। आज का युद्ध तो ·····। असभ्य जातियों का युद्ध और सभ्य का। अबीसीनिया की असभ्य जाति को इटली वालों ने जीत लिया। लेकिन स्पेन का गृह-युद्ध जहाँ कि दो विचारों की लड़ाई थी। बारसिलोना का पतन का समाचार पढ़ कर वह दंग रह गई थी। 'लीग आफ नेशन' चुपचाप आँखें मूंदे रही। इस प्रकार तो यह युद्ध बड़ी दूर नहीं था। जब आया तो उसका झोंका बड़ा सा नहीं लगता है।

सरल को चुप देख कर कहा था केशव ने, "रामगढ़ भी सरल एक-एक मिनट में इतिहास की बीती घटना बनता जा रहा है। कांग्रेस ने जो फैसला किया है वह एक बड़ी जीत नहीं है। हम अधिकृत उपनिवेश के लोग हैं। साम्राज्यवादी हमारी शक्ति का उपयोग अपनी पूँजीवादी लिप्सा और अहम् के लिए कर रहे हैं। आज यदि हम सब दल मिल कर सफलता पूर्वक सशस्त्र विद्रोह कर सकते, तो शायद भारत स्वतंत्र हो जाता। यह दाँव फिर गाँधी जी हार रहे हैं।"

"गाँधी जी की हार केशव ! चुप रहो तुम। वह देखो एक-एक कर लोग चले जा रहे हैं। और झोपड़ियाँ उजड़ रही हैं। तुम किस गाड़ी से जाओगे !"

"मैं शायद सात की स्पेशल से चला जाऊँगा। और तुम ?"

"हम लोग कल सुबह की गाड़ी से जायेंगे। प्रेम कहती है कि सारी रात तो सामान ठीक करने में ही लग जायेगा।"

"सामान ठीक करने में ! अविनाश तो कहता था कि वह शाम को चलेंगे।"

"वे जा रहे हैं। प्रेम हमारे साथ जावेगी। तुम मुझे माफ कर देना केशव। मैं तुमको कब जानती थी। और आज भी ठीक ठीक नहीं पहचान पाई हूँ। तीन दिन हम बहुत व्यस्त रहे। यहाँ का जीवन मेरे लिए एक नया अनुभव था। यहाँ एक नई उमंग थी। लेकिन तुम सन्तुष्ट नहीं लगते हो। क्यों क्या कोई भारी मुसीबत आने वाली है हम पर ?"

"सरल, तुम डर क्यों जाती हो। अभी तुम अपनी किताबों के भीतर रहा करो। प्रेम के सम्मुख तुम हार मान लेती हो। क्या तुम उसका जीवन सफल समझती हो?"

""केशव, प्रेमलता तो……!

"मैं प्रेम को बहुत दिनों से जानता हूँ। जब वह बहुत छोटी थी। बचपन से ही वह झूठ बोलने में उस्ताद रही है। भाई-बहिनों पर झूठा शासन किया करती थी। आज भी वह जीवन में बहुत सफल नहीं है। उसका बाहरी रूप एक दिखलाता है। भीतर वह बहुत थोथी है।"

"प्रेमलता! तुम यह सब क्या कह रहे हो केशव?"

"अविनाश का कोई भविष्य नहीं है। प्रेमलता यह बात जानती है। इसी लिए वह चिन्तित है कि क्या दाँव खेला जाय? वह बहुत कुछ सोच समझ कर रास्ता ढूँढ़ लेना चाहती है कि वे दोनों दुनिया की आँखों से ओझल न हो जाँय। आज अविनाश का राजनीतिक अथवा सामाजिक कोई व्यक्तित्व नहीं है। प्रेमलता, जो एक अरसे तक अपना प्रभाव सब पर रखती थी आज उसका प्रभाव मिट गया है। मैं इस बात को बहुत दिनों से जानता था। तुझे भूख तो नहीं लग रही है।"

"बारह बज गया।" सरल ने घड़ी देखकर कहा। "चलो, खाना तो खाना ही होगा। मैं प्रेम से पूछ आती हूँ।"

सरल चली गई थी। केशव देख रहा था कि झोपड़ियाँ उजड़ रही हैं। वालिंटियर लौट रहे थे। धीरे-धीरे सब मुसाफिर अपने-अपने देशों को वापस जाने की तैयारी में थे। रामगढ़ का वह शोरगुल सारे देश के कोने-कोने में बिखर-बिखर कर पहुंच रहा था। वह अपार भीड़! वह बड़ा जन समूह!! रामगढ़, काँग्रेस की एक भारी मंजिल थी, जिस पर देश का भविष्य निर्भर था। और उसके बाद……। सरल अभी नहीं आई थी। केशव चुप-चाप खड़ा-खड़ा देख रहा था। वे बड़े-बड़े फाटक, वह पांडाल, वह जलूस, वे झोंपड़ियाँ स्वागत-समिति का दफ्तर……। चारों ओर आज वह सरगर्मी नहीं थी अब वह सारी उमंग मिट चुकी थी। जलसा समाप्त हो चुका था।

मानो कि आँधी-पानी के भारी तूफान के बाद आज कांग्रेस ने एक भारी विजय प्राप्त कर ली हो। वे साम्राज्यवादी युद्ध से दूर थे। गाँधी जी का वही असहयोग का अस्त्र था। वे फिर एक बार संचालन करना स्वीकार कर चुके हैं। वही जनता से अलग होकर उनको दूर रखने वाली भावना......। जनता की शक्ति की रहनुमाई दिखलाने के लिए गाँधी जी कोई नया अचंभा संभवतः ढूँढ़ निकालना चाहते थे।

लेकिन केशव सरल को भी तो नहीं पहचानता है। वह स्वयं नहीं चाहता कि उसे पहचान ले। प्रेम को जानता था। सरल को भी जान लिया। सरल प्रेम की बुआ की लड़की है। प्रेम को हटाकर, सरल को वह भली-भाँति नहीं जान सकता है। उस तूफान में सरल एकाएक मिल गई। वह तूफान शान्त हो चुका था। वह अब वहाँ से चला जा रहा है, भविष्य में सरल से भेंट हो, या नहीं। इस पर वह विचार नहीं करता है। पग-पग की स्मृतियाँ बटोर कर रख लेना, उसे भला नहीं लगता। उसे तो अपना भविष्य मालूम सा है। एक साफ रास्ता आगे है। सरल उस रास्ते में कहीं भी खड़ी नहीं मिलती है। शायद उसे वह नहीं मिलेगा—यह वह भली भाँति जानता था।

अब लौट कर आ गई सरल। बोली, "वे अभी तक दूकान पर लौट कर नहीं आए हैं। प्रेम झुँझला रही है। सारा सामान बिखरा पड़ा है। और दूकानदार अपना सामान संभाल रहे हैं। कहती थी कि मैं आज ही चली जाऊँगी। बच्चू, रहें अपनी दूकान को लेकर।"

"तो चलो हम वहाँ चलें। मैं दूकान पर कुछ देर रह जाऊँगा।"

"नहीं, प्रेम ने कहा है कि उसके लिए हम खाना ले आवें।"

केशव कुछ नहीं बोला। सरल आगे बढ़ गई। वे हलवाई की दूकान पर पहुँच गए। सरल कुरसी पर बैठ गई। अविनाश ने खाना मंगवा लिया। वे दोनों खाना खाने लगे।

सामने रास्ते में अपार भीड़ गुजर रही थी। गाँधी जी की जय के नारे! आजाद, नेहरू, राजेन्द्र बाबू के जय के नारे!! लोग बढ़ रहे थे।

कभी बीच-बीच में कोई राष्ट्रीय गीत अपनी ही तरज में गाता चला जा रहा था। सरल अचरज में वह सब ताकने लगती थी। उसके लिये वह एक नया अनुभव था। भारी उत्साह से वह अपनी खिली आँखें केशव की ओर फैलाती, तो देखती थी कि केशव को कचोड़ियाँ अधिक प्यारी हैं और बीच-बीच में वह बिल्कुल चीनी मिली बालूशाही उड़ा रहा है। उसे वह भीड़ आकर्षित नहीं कर पा रही है। जैसे कि वह सब बहुत साधारण सी घटना हो। एकाएक बैंड बज उठे। वालिंटियरों का एक दल राष्ट्रीय बैंड बजाता हुआ आगे बढ़ गया। पीछे से देश रक्षिक महिलाएँ भी केशरिया साड़ियों में चुपचाप चली गईं। उसका दिल भर आया। वह सब मन में हिलोरें ले रहा था। वह चौड़ा मैदान, वह दृश्य, वे झाँकियाँ! एकाएक केशव ने पूछ दिया, "क्या भूख नहीं है सरल?"

"क्यों, क्या!" सरल उलझन में बोली।

"इस भीड़ में शक्ति नहीं है?"

"क्या केशव?"

"ये सब अहिंसा के पुजारी हैं—गाँधी जी के चेले। खून देख कर सब काँप उठते हैं। सत्य और अहिंसा की कसौटी पर सब को तोलना तो आसान नहीं लगता है। शायद आजादी भी इससे नहीं मिलेगी।"

केशव ने आधी कचोरी तोड़, उसमें तरकारी ले ली और मुंह में डाल कर उसे चबाने लगा। फिर एक पूरी बालूशाही से मुंह भर लिया। सरल कुछ भी बात न समझ कर, एक टुकड़ा तोड़ कर खाने लगी। उसकी दृष्टि अब भी उस भीड़ पर लगी थी, जिसे वह छेद नहीं पाती थी। लगता था कि वह बड़ा देश सिकुड़ कर रामगढ़ में चंद दिन बसेरा लेने चला आया था। आज प्रान्त-प्रान्त अलग हो गए हैं। फिर नक्शा फैल रहा है। वह भी तो चली जावेगी।

सरल को उस तरह मूक सा पाकर केशव न जाने क्या-क्या सोच रहा था। क्या वह उससे कुछ सवाल पूछ लेना चाहता है? वह क्या पूछेगा? सरल का कोई उत्तर भी वह नहीं चाहता है। फिर क्यों उसके मन में कई

सवाल पूछ लेने की जिज्ञासा है। सरल आज्ञाकारी बालिका की भाँति चुप-चाप खाना खा रही थी। यदा-कदा वह बार-बार सड़क की ओर आँख फेर लेती है। उस भीड़ को टकटकी लगा कर देखती, मानों कि वह उसी में खो गई है। उस सरल की आँखों में एक विचित्र भावना थो। मानो कि उसका हृदय उस सारे व्यापार से तरंगित हो उठा हो। और वह दोनों जो कि उस भीड़ से कुछ दूरी पर बैठे हुए हैं; उनके मन की भावनाएँ अलग-अलग सी हैं। उनके बीच एक दूरी है, जो संध्या को निखर उठेगी। वे अपनी-अपनी भौगोलिक और सामाजिक सीमाओं में चले जावेंगे। सरल राजनीति के उन झोंको को तमाशबीन की भाँति पढ़ती रहेगी। केशव का नाम कहीं नहीं मिलेगा। दूरी अधिक बढ़ जायगी। शायद जीवन की यह घटना एक याद भी न रह जाय। सरल और प्रेम दोनों भी साथ नहीं रहेंगी। जीवन की गति के साथ वे अलग-अलग झोंकों में बह जावेंगी। प्रेम अब बहुत सुलझ गई है। सरल भी अनुभव पाकर सुलझती जावेगी। उन गुत्थियों को सुलझाने में केशव का कोई हाथ नहीं रहेगा। एक-एक व्यक्ति पर सोचना तथा उसको कुरेद कर कुछ पा जाना, यह केशव का ज्ञानदान अनुचित सा है।

सरल उठ बैठी, "बोली मैं उनको बुला लाऊँ!" वह आगे बढ़ गई। केशव उसी प्रकार बैठ रहा। दादा और अविनाश आ गए थे। केशव उसी भाँति बैठा रहा। अविनाश तो हँस कर बोला, "देखो दादा, यह केशव चुपके-चुपके सरल की दावत कर रहा है। हमें निमंत्रण तो अलग रहा, खबर तक नहीं दी।"

"दादा क्या खाओगे?" पूछा सरल ने।

केशव ने तो कचौड़ियाँ और तरकारी मंगवाली थीं। कुछ मिठाई भी आ गई। सरल चुप थी। पूछा अविनाश ने, "प्रेम कहाँ है?"

"दूकान पर।"

हँस पड़ा अविनाश। बोला फिर, "केशव क्या तू आज ही जा रहा है? मैं तो कल आऊँगा। दादा तुम क्या कल तक रुक नहीं सकते हो?"

दादा ने सिर हिला दिया कि वे नहीं रुक सकते हैं। गंभीर होकर कचोड़ियाँ तोड़-तोड़ कर खाने लगे।

"सरल कल तू प्रेम के साथ जा रही है न ?" पूछा अविनाश ने।

"हाँ" कह कर वह चुप हो गई। उसे लग रहा था कि एकाएक न जाने वह क्यों सिकुड़ कर छुप जाना चाहती है।

"तो केशव तुझे ही क्या जल्दी पड़ी है जाने की।"

केशव चाय पी रहा था। एक घूँट पीकर बोला, "मुझे तो जल्दी जाना ही होगा। यहाँ का तमाशा पूरा हो गया है। सब तमाशबीन चले गए। बड़े-बड़े लीडर जब नहीं रुके, तो मैं ही रुक कर क्या करूँगा। क्यों दादा, हम लोग भी अपनी-अपनी गठड़ी बगल तले दबा कर साँझ को कूच का डंका बोल देंगे।"

यह मजाक सरल न समझ सकी। सोचा कि केशव रुक क्यों नहीं जाता है। उस बात की अवज्ञा करके पूछ बैठा अविनाश, "दादा, तुम हमारे यहाँ तो कभी नहीं आते हो। अब के जरूर आना। देखो, एक हफ्ते की छुट्टी समझ लेना। आपकी बातें तो सब सुनने को ही पड़ी हुई हैं।"

केशव ने चुटकी ली, "दादा अपने सत्य के अनुभव क्यों नहीं लिख डालते हो। उनकी बड़ी आवश्यकता है।"

गाँधी जी के सत्य के अनुभव ! मन में सोचा सरल ने कि यह केशव कितना दुष्ट है। बार-बार उसे चिढ़ावेगा। कभी उसे आश्रम की बालिका कह कर छेड़ता है, तो कभी कुछ, कभी कुछ ! इस बार वह चैतन्य सी हुई। देखा केशव को। फिर आँखे नीची कर लीं। तो पूछा केशव ने, "चाय पियोगे दादा। और आप...।"

सरल हँसी, कहा, "एक प्याला मंगवादो तो।"

केशव ने चाय का प्याला मंगवा लिया। सरल चुपचाप चाय पीने लगी। अब बोले दादा, "यह बड़ी भीड़ जो चली जा रही है, वास्तव में जनता की सही भीड़ नहीं है। ये शहरों के लोग हैं। इनके नेता कुछ मिल मालिकों के ऐजन्ट हैं, तो कुछ साम्राज्यवादियों के गुमाश्ते। जो आज भी

चाहते हैं कि मंत्रिमंडल फिर बन जाँय। तो वे उनसे चिपक जाँय।"

"दादा का रायवाद पनप रहा है। दादा, इतने रुष्ट क्यों हो?" कह कर अविनाश सरल से बोला, "तुम हमारे साथ चलोगी या सीधे अपने घर।"

"छुट्टियाँ कम हैं। प्रेम के साथ जाऊँगी, घर नहीं।"

केशव दूकान पर खड़ा होकर पैसे चुकाने लगा। रूमाल में उसने प्रेम के लिए खाना बंधवाया। उसे सरल को सौंप कर पान की दूकान से पान लगवा लाया। सरल अब तक उलझन में थी। तीन दिन की इन सारी घटनाओं को समझने की ओर वह सचेष्ट है। कुछ बातें तो वह बिलकुल नहीं समझ पाती है। उनमें यह केशव है, प्रेम है और दादा हैं। सबको वह अपने से दूर पाती है। वे बहुत समीप रहने पर भी दूर से लगते हैं। एक अविनाश ऐसा है, जिनको वह भली भाँति जानती है।

राह में वह बार-बार अनुभव करती थी कि वह उस भीड़ में खो रही है। दादा मुस्करा कर लोगों मे बीच-बीच में बातचीत कर लेते थे। केशव तो बहुत गंभीर बना, चुपचाप कदम मिलाकर चल रहा था। क्षण-क्षण में भीड़ घट रही थी। लोग चले ही जा रहे थे। रामगढ़ का आकर्षण मिट रहा था। उसका जीवन नष्ट हो रहा था। वहाँ की दुनिया उजड़ती जा रही थी। आगे शायद खेतों में काम करने वाले किसान या फिर जंगलों में लकड़ी काटने को आए मजदूर उस विशालता की बात सोचेंगे, जो कि एक दिन रामगढ़ था और फिर समय के साथ दूर पीछे हट गया। ये तीनों-चारों राही या और राहगीर, जो यहाँ आए उनको भी इतिहास के एक पन्ने के अतिरिक्त रामगढ़ का कोई स्वरूप नहीं मिलेगा। न उसमें बादल कड़केंगे, न बिजली चमकेगी, न मेह की घनी घटा आवेगी और संभवतः न सरल, केशव, अविनाश, दादा, प्रेम एक साथ मिलकर इस प्रकार विचार-विनिमय करेंगे।

सरल के मन में कई बातें उठ-उठ कर दब जाती थीं। वह चैतन्य है। कभी-कभी फिर भी न जाने क्यों मन के भीतर घना कुहरा पाती थी, जिसे छेद सकने में वह अशक्त है। क्या वह केवल इस बड़े संघर्ष में एक

तमाशबीन बन कर आई है ? या रामगढ़ के बाद की मंजिलों से भी उसका कोई सम्बन्ध रहेगा। नेताओं के व्याख्यान उसने सुने हैं। उनकी दलीलें चाव से सुनीं। मन में उनको दुहराया कि कुछ बातें वहाँ स्थिर रह जाँय। वह न जाने क्यों उस सबके बीच अपने को अनजान पाती है। राजनीति के सबकों के प्रति वह सदा से उदासीन रही है। भला आज ही उस सबसे कैसे पूरी भिज्ञ हो जाय ! ऐसा कोई उत्साह उसे नहीं है। इस चेतना को अपेक्षित मान कर वह उससे हट हट जाती है। उसकी अपनी बी० ए० की पढ़ाई है। इम्तहान है। कुछ विषयों में उसे परीक्षा देकर, विश्वविद्यालय की एक 'डिगरी' ले लेनी है। उस पर वह ज्यादा सोचती है। कल भी उसी पर सोचती रहेगी। आगे बी० ए० के बाद एम० ए० है। उसके बाद की बात आज वह सोच लेना नहीं चाहती है। वह पंचवर्षीय योजना बना लेने की पक्षपाती नहीं है।

दादा दूसरी ओर मुड़े थे कि कहा अविनाश ने, "दादा, क्या दूकान तक नहीं चलोगे। प्रेम से तो मिल कर ही जाना चाहिए।"

"प्रेम कहाँ है ? क्या दूकान पर ?" एकाएक दादा के मुंह से ये शब्द छूटे, जैसे कि अब तक प्रेम का ज्ञान उनको नहीं था। वे नुमायश की ओर बढ़ गए। फुहारे से पानी उसी तरह हवा में बौछारें ले रहा था। लेकिन वहाँ का वातावरण फीका-फीका लगने लगा। दूकानदार अपने ग्राहकों को आखरी माल बेच रहे थे। उनको लुभाव देते कि कुछ सस्ती चीजें बेचनी पड़ रही है। मेंह के कारण बहुत नुकसान हो गया है। ग्राहक टूट पड़ते थे। उनको भी जैसे कि उस अवसर से लाभ उठाना था।

दूकान पर ठीक तरह पहुँच तक नहीं पाए थे कि देखा प्रेम का चेहरा लाल हो रहा है। वह दादा से बोली, "देखो दादा, यह राजनीति क्या मनुष्यता को कुचल देती है। ये कहते हैं कि बोस बाबू गुंडे हैं। चन्द भद्र लोगों के बल पर नेतागिरी करने चले हैं। बुद्धिवादी होना एक बात है और राजनीति का व्यवहारिक ज्ञान दूसरा।" उसकी आँखों से आँसू की धारा फूट निकली। वह सिसक रही थी।

पास ही खड़े सोसलिस्ट साहब सिगार का धुआँ उड़ा रहे थे। इस अचानक हमले को पाकर बोले, "प्रेम जी राजनीतिक दलीलें आँसुओं से धुल नहीं सकती हैं। न मैंने ही झगड़ा शुरू किया। आपने ही सोसलिस्टों के पुरखों तक को गालियाँ देनी शुरू करदीं कि उन लोगों ने बोस बाबू को धोखा दिया है। तब तक मैं हँसता रहा। सोचा कि आप चुप हो जावेंगी, लेकिन आप तो बहुत आगे बढ़ गईं। क्यों दादा, आपही फैसला करदें कि क्या मैंने झूट बात कही है। बोस बाबू के बंगाल के कारनामें आखिर क्या हैं? वहाँ की राजनीति को कितना गंदला बना दिया है। इस पर प्रेम जी अपनी बात को बढ़ा-चढ़ा कर उनका पक्ष लेती हैं।"

अविनाश चुप रहा। सरल सन्न ही खड़ी थी। लेकिन कहा केशव ने "साथियों यह रगड़ा-झगड़ा तो रोज का धन्धा है। प्रेम जी आप इस प्रकार आँसू बहाना शुरू कर देंगी, तो मिल चुकी हिन्दुस्तान को आजादी। अब आप पहिले कुछ खा पी लें फिर इतमीनान से सारी परिस्थिति पर विचार करेंगे।"

सोसलिस्ट साहब ने सिगार का आखरी कश लगाकर, उसे बाहर फेंक दिया। बोला केशव से, "कामरेड। तुमारी बातों की मैं ताइद करता हूं। प्रेमजी यदि सारे झगड़े की जड़ मैं हूँ, तो लो मैं चला जाता हूँ। दोस्तों सलाम। जिन्दा रहे तो फिर कभी मिलेंगे।"

दादा पूछ बैठे, "क्यों क्या तीन की गाड़ी से जारहे हो?"

"हाँ, क्वाटर टु ट्र। दो बजने वाले हैं जनाब। वक्त हो गया है। अच्छा साहबान। प्रेम जी अब आपसे 'फारवर्ड ब्लाक' के जल्से में मुलाकात होगी।

वह सबसे हाथ मिलाकर चला गया। उसका इस नाटकीय ढंग से चला जाना किसी की समझ में नहीं आया। प्रेम भी नहीं जान सकी। अब वह चला गया तो सब लोग कुछ देर तक चुप ही रहे।"

सरल ने सावधानी से सब सामान संजो कर रख लिया। भीतर से लोटे में पानी ले आई। प्रेम खाना खा रही थी। अविनाश के साथ केशव

काउन्टर पर खड़ा था। दादा स्टूल पर बैठे हुए थे। सरल कुछ अनमनी सी थी कि प्रेम क्यों उस प्रकार आँसू बहा रही थी। खाते-खाते कहा उसने अविनाश से, "मैं आपके मारे भी तंग हूँ। आप कहाँ चले गए थे। मैं आपकी दासी तो हूँ नहीं कि सब सामान संभालूं। उधर काम भी बढ़ गया था। मैं बिक्री करती कि चीजें संभालती। आपका क्या, चौराहे पर खड़े होकर दलील करनी शुरू कर देते हो, दूसरे की परवा नहीं।"

अविनाश ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह भीतर से पेटियाँ ले आया और उन पर किताबें संभालने लगा। केशव भी काम में जुट गया। दादा उसी तरह बैठे थे। पूछा प्रेम ने, "कब जारहे हो दादा?"

"सात बजे की गाड़ी से।"

"हमारे यहाँ कब आओगे?"

"कह नहीं सकता प्रेमजी।"

"देखा दादा वादा कर लो। अबके एक सप्ताह रहना पड़ेगा। आपकी अधूरी-अधूरी कहानियाँ लोगों से सुनी है। अब सब कुछ आपसे सुन लेना चाहती हूं।"

दादा चुप रहे। कहा फिर प्रेम ने, "दादा बतलाओ न कब तक आ जाओगे। क्यों किस सोच में पड़े हुए हो?"

दादा तो कुछ नहीं बोले। प्रेम ने पत्ते उठा कर बाहर फेंक दिए। हाथ धो डाले। भीतर जाकर साड़ी बदल आई। बालों को ठीक तरह संवार, बच्चे की तरह दादा को उठाती हुई बोली, "चलो दादा चाय पी आवें।"

दादा के ना-ना करने पर भी उनको उठा लिया। कहा सरल से, "चल तू भी। अब ये लोग अपना काम जाने। देखिए महाशय सारा सामान घंटे भर में तैयार हो जाना चाहिए। मैं अपनी चीजें लौट कर संभाल लूँगी। आप निश्चिंत रहें।"

सरल, दादा और प्रेम उठ कर चले गए। बाहर आते ही प्रेम में एक नया सा उत्साह सरल ने पाया। वह दादा से छोटी-छोटी बातें पूछती थी। एक बच्चे की भाँति सारी परिस्थिति को जान लेना चाहती थी। दादा

कभी तो उत्तर देते। या फिर उसे टकटकी लगा कर देख, चुप हो जाते। प्रेम अपने को मुक्त सी ढीली छोड़ रही थी। सरल क्षण-क्षण भर में बदलने वाली प्रेमलता पर सोचने लगी, जिस पर कि केशव ने भी अपनी राय दी थी। क्यों वह सब केशव ने कहा है। एक अरसे से केशव उसे जानता है। प्रेम भी दावा करती है कि वह उसे भली भाँति पहचानती है। प्रेम ने एक अजनवी परिवार बनाया है। वहां सब तरह के लोग बसेरा लेते हैं। उन परिचित मुसाफिरों के बीच वह जीवन को आसानी से चला लेती है। सरल उस वातावरण के योग्य अपने को नहीं पाती है। प्रेम पर सब विश्वास कर लेते हैं। वह उन सबसे दलील करके, उनकी बातों के बीच लुका छिपी खेला करती है। सब लोगों से झगड़ती है। अपना सही दावा रखती है कि वह किसी विचारधारा के बीच भावुकता से नहीं बह जाती है।

प्रेम दादा से कह रही थी, "दादा काँग्रेस का यह खेल तो खतम हो गया। मंत्रिमंडल की आकांक्षा रखने वाले लोगों पर यह एक भारी धक्का है। इस निर्णय के बाद, अब इन लोगों के कार्यक्रम में निष्क्रियता सी आ गई है। मैं सोचती हूँ एक मौका मिला है। इस युद्ध से हमें लाभ उठाना ही चाहिये।"

"क्या प्रेम जी?" दादा ने सवाल सा पूछा। कहा सरल से, "तुम कहाँ पढ़ती हो सरल।"

सरल ने धीमे स्वर में सब बतला दिया। दादा सुनकर बोले, "आज तुम सरीखी लड़कियों को देखकर अचम्भे में रह जाता हूं। हमारे जमाने में लड़कियाँ कॉलेजों तक नहीं पहुँच पाती थीं। वहाँ पढ़ना एक सामाजिक श्राप माना जाता था। आज तो तुम लोग सब बातों पर दलील कर लेती हो। यह देश के लिए हितकर ही है।"

तभी प्रेम ने बीच में पूछ डाला, "दादा तुम सुना कोई किताब लिख रहे हो दर्शन की।"

"हाँ, वर्तमान दार्शनिक अराजकता के कारणों पर कुछ लिखना चाहता हूँ। आत्मा को किस प्रवृति द्वारा पूर्ण सन्तोष मिलता है? हम यहाँ

नुमायश के बीच खड़े हैं। कई चड़कीली-भड़कीली चीजें यहाँ हैं। हमारी दृष्टि एक सुंदर चीज को खरीदने के लिए ललचाती है। उसको खरीद लेने के बाद भी सन्तोष नहीं होता है। दूसरी वस्तु मन को ललचाती है। उसके बाद तीसरी और संभवतः मेले की सम्पूर्ण वस्तुएँ खरीद लेने पर भी मन को सन्तोष नहीं मिलेगा। यह प्रवृति अनादि है।"

बीच में ही टोक बैठी प्रेम, "दादा यह विषय तो 'पॉलिटिक्स' से कठिन है। आप अपने दर्शनशास्त्र का सबक बन्द करदे।",

"क्या, डारविन का वैज्ञानिक 'विकासवाद' तो तुम समझती हो न! इस सम्बन्ध में बेर्गसों का कथन है कि जड़वाद की व्याख्याओं का सार वस्तुतः यह है कि वे भूत और भविष्य को वर्तमान का परिगणनीय धर्म समझती हैं। और इस बात का दावा करती हैं कि अखिल प्रत्यक्ष है।...।"

बात काट कर बोली प्रेम, "दादा, यह सब अखाड़े में बैरागियों को सिखलाना हम लोग अभी संन्यासिनी बनने की नहीं सोच रही हैं। क्यों न सरल?"

सरल की समझ में सवाल ही नहीं आया। भला वह क्या उत्तर देती। वह चुप रही। तीनों चुपचाप चलने लगे। आखिर बोले दादा, "अलीपुर जेल में मैंने इस विषय की पुस्तकें पढ़ी थीं। तभी से इस विषय पर दिलचस्पी बढ़ गई।" और अब चुप हो गए।

प्रेम बात आगे बढ़ा कर चुपचाप साथ देने लगी। सरल के मन में अभी तक वह अपार भीड़ एक द्वंद्व मचाए हुए थी। फिर प्रेम के आँसू याद आए। दादा की ओर देखा, चेहरे पर अब भूरियाँ पड़ गई थीं। जेल की यातनाओं के कारण दादा अवस्था से पन्दरह-बीस साल बूढ़े लगते थे। उनकी कुतूहल और जिज्ञासा फिर भी उम्र के साथ थी। अब बोले वे, "प्रेम जी जब मैं मद्रास जेल से छूटा तो यह दुनिया बिलकुल नई मालूम दी। समझ में नहीं आता था कि इतना परिवर्तन कैसे हो गया है। १९१८ के बाद १९३७ में एक बार नई रोशनी हमने देखी। बहुत थोड़ी चर्चा जेलों में सुनाई पड़ती थी। आज तो लड़ाई में वह पुराना उत्साह नहीं है। विज्ञान ने सब कुछ

बदल दिया है। एक आश्चर्यजनक परिवर्तन सा आ रहा है।"

प्रेम का ध्यान इस ओर नहीं था। वह अपने मन में कुछ और ही सोच रही थी। आज दिन का अपना व्यवहार! केशव ने न जाने क्या सोचा होगा। वह आखिर क्यों उस प्रकार सहानुभूति बटोर लेना चाहती थी। अब वह होटल के पास पहुँच गई। जिसकी पालें उतारी जा रही थीं। सिन्ध रिस्तरां के लोग भी तेजी से सामान बन्द करने में लगे हुए थे। कुछ फर्निचर भी उठाया जा चुका था। दरी की जगह पुआल बिछी थी।

सरल ने वेटर को बुलाया, प्रेम ने पूछा, "मुझे तो भूख भी लग रही है।" अपने लिए कुछ खाने को मंगवा कर, चाय के लिए कहा।

वेटर चला गया। चाय साधारण सी रही, चाय पीते-पीते पूछा सरल ने, "क्या वे आज ही जा रहे हैं?"

"मुझे कुछ मालूम नहीं है।"

सरल इस उत्तर पर न सोच कर, चुप रही। प्रेम जल्दी-जल्दी चाय पीकर उठी। दादा खड़े हुए। वे वहाँ से बाहर निकले। दादा ने उनसे विदा ले ली। प्रेम ने फिर वही वादा दुहराया। सरल देख रही थी कि जिधर दादा गए हैं। उधर ही वह पारसी सी० आई० डी० वाला भी जा रहा था। सोचा सरल ने कि क्या आज भी पुलीस दादा को चैन नहीं लेने देती है। दादा के जीवन पर उसे भारी तरस आया।

प्रेम तो राह भर कुछ नहीं बोली। सरल भी चारों ओर देखकर, चुप रही। दोनों चुपचाप दूकान पर पहुँचे। केशव दूकान के सामान को संभाल रहा था। पूछा प्रेम ने, "वे कहाँ हैं?"

"भीतर।"

"सो रहे होंगे। इतना काहिल तो शायद ही कोई हो। क्या आज नहीं जा रहे हैं?"

"शायद नहीं।"

"तब तो कल भी इनका खिसकना कठिन है। इनके प्रोग्रामों का यही हाल है। और तुम कब जा रहे हो?"

"आज सात बजे की गाड़ी से।"

"कल तक रुक क्यों नहीं जाते हो ?"

केशव चुप रहा तो कहा ही प्रेम ने, "बाकी जैसा ठीक समझो। मैं तुमसे कहना भूल गई थी कि हम अब 'साबरमती' नहीं जा रहे हैं ?"

"क्यों ?"

"मेरा मन वहाँ नहीं लगता है। शायद ये कोई नौकरी कर लें।"

"नौकरी ?"

"क्यों बुरी बात क्या है ? अमेरिका जाना होगा।"

"अमेरिका ?"

"ऑफर अच्छा है, मुझे तो पसन्द है।" "कहकर प्रेम चुप हो गई।"

अविनाश के इस निश्चय पर केशव को कुछ भी आश्चर्य नहीं हुआ। वह जानता है कि अविनाश कितना कमजोर है। यह झूठी लड़की प्रेम ही उसकी एक कमजोरी है। दोनों ही असफल हैं। अवसरों के शिकार होकर, अपना दायित्व बिलकुल भूल जाते हैं। वह इस अविनाश के बहुत नजदीक होने पर भी, मन में उससे बड़ी दूर है। प्रेम को तो वह एक बुझे हुए नक्षत्र की भाँति मानता है, जो उदय होते ही बुझ गई। जो समाज में एक अस्वस्थ परिवार बनाकर वहाँ जोंक की भाँति चिपकी है।

केशव फिर सामान संभालने लगा। उसी तरह किताबें संभालता रहा। सरल और प्रेम काउन्टर पर खड़ी ही थीं कि एकाएक बोला केशव, "मुझे तो सात की गाड़ी से जाना है। अपने कैम्प का हाल देख आऊँ।" बिना किसी उत्तर की प्रतीक्षा किए चला गया।

सरल इस झोंके से अवाक रह गई। फिर प्रेम का हाथ बटाना शुरू कर दिया। बड़ी देर तक दोनों सामान संभालती रहीं। एक बड़ा सा वक्त कट गया। संध्या हो आई। वह भीड़ जिसने सरल के मन को भारी किया था, अभी तक चालू ही थी। वे सब अपने-अपने घरों को जा रहे हैं। भारत एक बहुत बड़ा देश है। सूर्य डूब रहा था। दूर जैसे कि आज पश्चिम की ओर की लाली का भास पहिले-पहल सरल को हुआ हो। उसी भीड़ से केशव उस

ओर आया। पास पहुँच कर बोला, "मैं विदा लेने आया हूँ प्रेम जी। बड़ी देर लग गई। लाचार था।"

सरल कुछ अनमनी सी लगी। इससे पहिले कि वह संभल जाय। उसने दोनों को अभिवादन कर विदा लेली थी। वह चुपचाप उस भीड़ में रल गया। बिजुली की रोशनी हो गई थी। बड़ी देर के बाद अविनाश की आहट मिली, जो केशव को विदा करके लौट आया था। अनायास न जाने क्यों सरल का मन भर आया। उसकी आँखें भीज गईं। वह उन आँसुओं को संभाल लेने भीतर चली गई।

कुछ देर के बाद संभल कर सरल बाहर आई, बोली प्रेम से, "घूमने नहीं चलोगी।"

प्रेम उस उदास चेहरे को पढ़ कर साथ होली। दोनों बहुत आगे बढ़ गईं। वहाँ, जहाँ पर कि वह बड़ी मशीनें घर-घर करके नदी के पानी से बिजुली बना रही थी। एक बड़ा बाँध था वहाँ।

प्रेम बैठ गई। बोली वह, "सरल, मेरी स्थिति आज तेरी होती, तो मैं दादा को वर लेती। दादा के साथ मुझे बहुत सुख मिलता।"

"दादा!" सरल के आगे दादा के ढाँचे का स्वरूप बहुत कुरूप लगा। क्या कहना चाहती थी प्रेम?

"सच कह रही हूँ सरला, प्रेम तो आसान सा झोंका है, जो जीवन की ऊपरी सतह को छू लेता है। उसकी व्याख्या सरल और कठिन दोनों हैं। हम प्रेम के फल को खा लेना चाहती हैं। प्रेम के बीज को बोकर, एक पौधा नहीं पनपा पातीं हैं। दादा के जीवन के ऊसर में, जो सुन्दर धरती बनायी जा सकती है, वहाँ प्रेम का नया बीज बोकर एक नया जीवन स्वतः उदय हो जायगा।"

"लेकिन प्रेम···।"

"दादा की नई जेल यात्रा। अनिश्चित स्वतंत्रता न! इसमें घबराहट क्यों होती है सरल। आदान-प्रदान में कहीं रुकावट कब पड़ती है। नशा तो सब चाहते हैं। दादा का नशा चूक गया है। तो···।"

"चुप रह प्रेम, मुझे डर न जाने क्यों लगता है।"

"केशव का अहित सोचकर··।"

सरल उलझ गई। पास नदी के किनारे से कोई पक्षी बोल उठा। दूर लोगों का स्वर उसी प्रकार हल्ला मचाए हुआ था। सरल एकाएक उठ कर बोली, "चलो प्रेम मुझे न जाने क्यों आज भय हो रहा है कि···"

सरल क्या कहना चाहती थी, स्वयं नहीं जान सकी। प्रेम तो उठ बैठी। कुछ अधिक पूछताछ नहीं की। दोनों कैम्प में लौट आईं।

रात भर सरल दादा के भद्दे स्वरूप पर सोचती रही। क्या प्रेम ने यह बात सिर्फ मजाक में ही कही थी?

बंगाल! रामगढ़ की सीमाओं के पास का वह प्रदेश—पिछले साल किसानों की औरतें भीख माँगती थीं। इस साल भीख नहीं मिलती है। अब दो कौर खिचड़ी के लिए शरीर बेचना पड़ता है। माँए भूखी मरती हैं, तो घर से कोसों दूर अपने बच्चों को छोड़ देती हैं कि शायद कोई रहम दिल उठा कर ले जावे।······साम्राज्यवादी शासन के नीचे उपनिवेशों की कैसी रक्षा होती है, यह ब्रह्मा, मलाया का उदाहरण है। उसकी अपनी नीति ने मनुष्य द्वारा इस अकाल को पैदा करके, पनपने दिया है।······सरकार जनता को खिलाने की अपनी जिम्मेदारी भूल गई। अन्न चोरों और मुनाफा खोरों से हार गई और उसके बाद······'

सरल और केशव······। उनके बीच '४० और '४४ की दूरी आज है। कोई सामीप्य नहीं। प्रेम और अविनाश, एक अच्छी नौकरी के बाद उन दोनों का सम्बन्ध भी टूटसा गया। और वे क्रान्तिकारी दादा चुपचाप किसी जेल में आखिर मर गए। किसी अखबार के कोने में चार लाइनों की खबर छपी थी। भूगोलिक दुनिया में भी भारी अन्तर आ गए थे। एक नया इतिहास उस दूरी वाली घटनाओं के बीच छुपा पड़ा था। उस बड़ी दूरी की लम्बाई को लाँघ कर आया था—वह सरल का पत्र। उसके सवाल आज सहल नहीं थे। जमाना इतनी तेजी से बदल जायगा किसी को इस सब की

जानकारी नहीं थी ।

"सरल की वे लाइनें, जिनमें जीवन के, किसी स्तर की परिभाषा थी । कुछ भी अब उलझा सर्वनाम वहाँ नहीं था—

सवाल था एक—निराश्रय स्त्रियों को वेश्यावृति के अतिरिक्त क्या जीविका का कोई उपाय नहीं है ? और कुमारी लड़कियाँ क्यों आज उर्वशी, मेनका, और नाना अप्सराओं का भ्रान्ति स्वरूप लेने तुल गई हैं ?

"तिथि याद नहीं है मुझे । संध्या को मां बोली थीं, सरल सिनेमा नहीं जावेगी आज तू ?"

"सिनेमा माँ । क्या सिनेमा देखने जाना होगा आज ?"

"हाँ जल्दी तैयार हो जा । दुनिया को तो मरना ही लिखा है । कई दिन से सिनेमा चलने की बात थी । तू देख आ न ?"

माँ की बात मैं न समझ सकी कि यह सिनेमा जाना कैसे आवश्यक अंग बन गया है । माँ का कहना न टालकर मैं तैयार हो गई । जब कार पर बैठी तो वहाँ थे बाबू जी के दोस्त······। हमारे परिवार से उनका घनिष्ट सा नाता था । बोले वे, "सरल, कभी से वे कह रहे थे कि सरल का स्वास्थ गिर रहा है । मैंने समझाया कि आज कल की लड़कियाँ सोचती बहुत हैं । पढ़ना लिखना सीख लेने के बाद, सेहत की चिन्ता उनको नहीं रहती है ।"

मैं अधिक कुछ सोचूँ कि 'कार' स्टार्ट हो गई । पूछा मैंने "और पिता जी ?"

"वे चौरंगी से साथ हो लेंगे ।"

मैं चुपचाप बैठ गई । शहर में जीवन नहीं सा था । चारों ओर एक उदासी छाई हुई थी । सुन्दर सड़कें, भव्य महल··· ··। चौरंगी के पास कार खड़ी हुई थी कि एक औरत आकर बोली, "रानी, मुझे दो पैसे देदे ।"

मेरे पास दो पैसे नहीं थे । मैंने उसे इकन्नी दे दी । उसने मेरी ओर देखा और फिर धीरे से बोली, "माँ, आप आसपास कहाँ रहती हैं ? इस लड़के के लिए कोई काम नहीं है आपके यहाँ ? यह नौकर का काम कर सकता है और मैं दो रुपए में इसे आपको दे सकती हूँ, फिर मैं कुछ नहीं मागूँगी ।"

चारों ओर दुबले-पतले मर्द, औरतों और बच्चों ने हमें घेर लिया। मैं घबरा गई। वे पास आकर बोले, "वे तो यहाँ नहीं पहुंचे हैं। यहाँ तो ये भिखमंगे चैन से भी खड़ा नहीं होने देते हैं। चलें रिस्तोरां में उनकी प्रतीक्षा करेंगे।"

मैं निरुत्तर थी। वह भारी भिखमंगों की भीड़! उसे अवाक ताकती रह गई। यह कितनी बड़ी दुनिया है? यह अकाल किस तरह दूर-दूर से लोगों को कलकत्ते में खींच कर ले आया है। सड़कें श्मशान सी लग रही थीं। कहीं भी जीवन नहीं था। चारों ओर उन भिखमंगों की भीड़ थी, जो शायद अब लौटकर अपने खेतों की ओर नहीं जा सकेंगे। जिनको मौत की एक ऐसी घाटी से गुजरना पड़ रहा है, जहाँ से कि वे लौटकर नहीं आ सकते हैं। उनके वे सुन्दर लाँबे खेत, वे हल, वे छोटे-छोटे उजड़े मकान, वे सब-सब उनकी प्रतीक्षा करते रहेंगे। किन्तु वे अपनी उस सीमा से दूर कलकत्ते की सड़कों पर प्राण दे देने की ठान चुके हैं। वे प्राण—एक हिचकी और समाप्त।

हम 'रिस्तोरां' के भीतर चले गए। वहाँ के जीवन को देखकर मुझे बड़ी निराशा हुई। वही चहल-पहल थी। अकाल के कोई चिन्ह विद्यमान नहीं थे। वे परेशानी में बोले, "सिर्फ तीन 'कोर्स' मिलेंगे। यह भी कैसा कन्ट्रोल है कि भली भाँति मन पसन्द खाना नहीं मिल सकता है।"

मैं चुप रही, चुपचाप उनके साथ एक कोने वाली मेज पर बैठ गई। उन्होंने 'विग' खींच लिए। बड़ी देर बाद लौटे। वेटर ने खाना लगा दिया। उनके मुँह से ह्विस्की की तीव्र गन्ध आ रही थी। रेडियो पर एक बेसुरा सा गाना सुनाई पड़ा :

प्रीति न जाने बालम मोहि बोले ··
··············
ऊँची अटरिया में सेज बिछाई···
············

फिर घर-घर र र र के साथ वह ध्वनि बन्द हो गई। बाहर से एक अजीब कराहने का शब्द कानों में पड़ा। मैं सिहर उठी। मेरी दृष्टि सामने

टँगी तख्ती पर पड़ी। वहाँ लिखा था—दुश्मन के भी कान होते हैं ? सैनिक बातों पर विचार-विनिमय न किया जाए।

होटल की उस चहल-पहल को देख कर मैं दंग रह गई। वहाँ फौजी अफसर थे और ऊँचे मध्यवर्ग की स्त्रियाँ। वहाँ का सारा वातावरण विचित्र लगा। भुखमंगों की दुनिया से केवल पाँच कदम की दूरी पर इनसानों का वहिश्त था। बाहर लोग मर रहे थे। भीतर ह्विस्की उड़ रही थी। जीवन के इस भारी अन्तर ने मुझे डस सा लिया। वेटर पुलाव और न जाने क्या-क्या खाने वहाँ रखा गया; किन्तु मेरा मन भर आया। पास से मैंने किसी की बात चीत सुनी, "ह्विस्की ! कौन कहता है कि कलकत्ते में इसकी कमी है। १६०) और २००) में जितनी बोतलें चाहें 'चोर बाजार' से मिल सकती हैं।"

चोर बाजार ! हर चीज चोर बाजार में, चावल चोर बाजार में और ह्विस्की भी चोर बाजार में। उस 'चोर बाजार' के मालिक पहिले पहल मैंने उस 'रिस्तोरों' में देखे। जो अन्न का भंडार सा लगा। सोचा मैंने यहीं आकर तो मुनाफे खोर मुरदों का श्राद्ध करने ह्विस्की की तिलांजली देते हैं।

लेकिन पिता जी नहीं आए थे। मैं सन्न रह गई कि बात क्या हो गई है। उलझन हटा कर पूछा, "पिता जी नहीं आए।"

उन्होंने कहा "दास बाबू का यही हाल है। कहा था चौरंगी में मिलेंगे। फिर यहाँ के लिए कहा था शायद सिनेमा घर पहुँच गए हों। तुम तो कुछ भी नहीं खा रही हो। क्यों बात क्या है ?"

उस वातावरण से मुझे उबकाई आने लगी। मैं चारों ओर देखती और आश्चर्य में रह जाती थी। कितना भारी अन्तर था भीतर और बाहर की दुनिया में ! लेकिन वे बोले, "प्यास तो नहीं लग रही है। 'बियर' तो अच्छी चीज है। युरोप में तो पानी लोग पीते ही नहीं। यह तो हमारी असभ्य जाति का 'ड्रिंक' है।"

मैंने चुपचाप इनकार कर दिया। मेरी समझ में वह स्थिति नहीं आई। वे बाहर चले गए। मैंने एक बार सामने टंगी तख्ती को देखा। एक बच्चा मुँह पर हथेली रखे समझा रहा था कि चुप रहो। दुश्मन के भी कान

होते हैं। दुश्मन के कान क्या उस 'रिस्तोरां' में भी हैं क्या वह रिस्तोरां आज 'व्यक्ति' के विचारों को व्यक्त करने देना नहीं चाहता था। लेकिन मैं घबरा उठी। पहचाना मैंने कि वह युवती जो उनके साथ आई थी, अभी-अभी प्रोफेसर नियुक्त हुई है। मैंने उसे देखा तो आश्चर्य में पड़ गई। उसे मैं भली भाँति पहचानती हूँ। वह पास आई और अपने साथ के युवक से बोली, "मिस······।"

उसके कान में सुन्दर इयररिंग झूल रहे थे। मैंने हाथ जोड़ दिए। वह युवती मुझसे बोली, "एतराज न हो सरल तो हम भी यहीं बैठ जावें।"

भला मैं क्या कहती। स्वीकृति देनेवाली कौन थी? फिर भी स्वीकृति दे दी। वह बैठ गई। वह युवक खड़ा हुआ और पूछा, "तुम 'सीरियस' ड्रिंक लोगी या ·····।"

"आधा पेग·······।" वह युवती मुसकराई।

मुझसे पूछना ही चाहते थे कि वह युवती बोली, "सरल बियर ले लेगी।"

मैं अवाक रह गई, 'सीरियस ड्रिंक' और सरल बियर लेगी! वह युवक चला गया था। हम तीनों बैठे ही रह गए। उस युवती ने अब उनसे पूछा, "क्यों क्या हाल है आपकी ऐसम्बली का?"

" 'फूड' पर डिबेट चल रहा है। मैं तो श्यामाप्रसाद से सहमत हूँ कि यह सब मंत्रिमंडल का कसूर है। ऐसा निकम्मा मंत्रिमंडल तुरंत हटा दिया जाना चाहिए। इससे तो 'गवर्नर' का राज्य ठीक है। सेक्सन ९३!"

"सेक्सन ९३ का राज्य? लेकिन आप लोग जो बड़े-बड़े 'ओहदों' पर हैं आप क्या कर रहे हैं? अभी तक तो आप गोदामों से नाज नहीं निकाल पाए हैं। इन 'डिबेटों' या सर ज्वालाप्रसाद के आगमन से तो स्थिति नहीं संभल रही है। आखिर आप लोग राजनीति को उन मुरदों की हड्डियों से क्यों तोल रहे हैं। इस पर आप लोगों ने जो रुपया कमाया सो अलग। ऐसा मुनाफा तो कभी किसी को नहीं हुआ है।"

"लेकिन अकाल की सारी जिम्मेदारी तो मंत्रिमंडल पर है?"

"मंत्रि-मंडल पर ! नहीं-नहीं । आप लोगों पर, जो कि आज भी अलग-अलग हैं । व्यर्थ राजनीति की दलीलें करके लोगों की आँखों में धूल झोंक रहे हैं । आपके भाई की केमिस्ट की दूकान है । पचीस-पचीस गुने दामों पर वे इन्जक्सन बेचते हैं, क्योंकि लोग गरजमन्द हैं । आपकी बुआ का लड़का आपके ओहदे की आड़ में गल्ले का बड़ा व्यापारी बना हुआ है । वह चाहता है कि चोर बाजार कायम रहे ।"

"आप कब से प्रोग्रेसिव हो गई हैं, मिस चटर्जी ? क्या आज कल 'डान्स' का मौसम समाप्त हो गया है । मालूम पड़ता है कि आपको 'स्केटिंग' से फुरसत मिल गई है । अन्यथा ये सब बातें आपको परेशान न करतीं ।"

युवती चुप हो गई । संभवतः वह ज्यादा दलील करना नहीं चाहती थी । पूछा मुझसे "तुमारे 'रिसर्च' का क्या हाल है ?"

"आजकल तो कुछ भी काम नहीं करती हूँ ।"

"प्रेमलता की कोई चिट्ठी मिली ?"

"हाँ, एक आई थी पिछले दिनों । लिखा था कि अमेरिका वालों को यह भूखे मर जाने की बात समझ में नहीं आ रही है । वे लोग अभी-अभी घूमकर न्यूयार्क लौटे हैं । इस भुखमरी का मजाक उड़ाते पूछा है उसने कि यदि बात सच हो तो उसे सूचना दे दूँ । ताकि वह एक बार आकर देख तो जाय कि यह कैसा तमाशा है ?"

"प्रेमलता ने यह बात लिखी है, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है सरल ? सारी दुनिया तो चंड राजनैतिक दाँव-पेचों का खिलवाड़ बनी हुई है । वहाँ सही खबरें न पहुँचती होंगी ।, यहीं जब कि बंगाल के बाहर वाले प्रान्तों के रहने वालों को पूरा-पूरा ज्ञान नहीं है । तब अमरीका तो बड़ी दूर सा है । युद्ध काल में जो न हो जाय संभव ही है ।"

"यह लड़ाई कब तक रहेगी । बंगाल तो मर जायगा तब तक ?"

तभी बोला वह युवक, "बंगाल मर नहीं रहा है जी रहा है । चन्द दिनों का और तमाशा है । आप शायद अनुशीलन दल के परचों को नहीं पढ़ती हैं । आज सारी जनता बोस बाबू की प्रतीक्षा कर रही है । वे ही इस

मुसीबत में रास्ता दिखलावेंगे।"

"और गाँधी जी ?" पूछा मैंने।

"गाँधी जी तो कभी कोई भी अचम्भा दिखला सकते हैं। वे मदारी हैं और उनकी दृष्टि में सारी जनता एक साधारण भीड़ है।"

वेटर सब सामान ले आया था। मुझे उस वातावरण में सुख नहीं मिला। मैं वह सब देख कर दंग रह गई। जीवन में एक भारी विभिन्नता है, इसका अनुमान मुझे पहिले-पहल वहीं हुआ। मिस चटर्जी गिलास में सोडा डाल कर चुस्कियाँ ले रही थी। मुझे चुपचाप बैठी देखकर बियर पीने को कहा। मेरी अस्वीकृति पर बोली, "यह पुराने सड़े-गले संस्कार न जाने कब नष्ट होंगे। विचारों तक को स्वतन्त्रता नहीं मिल सकती है। हमें एक आजाद कौम बनना है। एक बलवान जाति।"

पुराने सड़े-गले संस्कार ! पिछली मान्यताएँ······। और नई विचार धारा कि युरोपीय जातियों की भाँति चलकर उनके स्वभाव को अपना लेना। फिर मिस चटर्जी तो कह ही रही थी, "क्लब का जीवन, डान्स, स्केटिंग······। उन लोगों के जीवन में कितना तीव्र प्रवाह है। सुखकर जीवन व्यतीत करने के लिए साधन हैं। एक हमारी जाति है, जिसके प्रतिनिधि सड़कों पर भिखमंगे बने भीख माँग रहे हैं। वह भी नहीं मिलती तो मर जाते हैं। अकर्मण्य हैं। बिलकुल निकम्में। आज भी अहिंसा और सत्याग्रह के दामन की दुहाई दी जाती है। जब कि अन्य देश सैनिक शक्ति के आधार पर जातियों को उठा रहे हैं कि अपना राष्ट्र बलवान बन जाय।"

मेरे साथी बोले, "जापान की आशा कभी थी, आज वह संभव नहीं है। आज तो हिन्दू जाति नष्ट हो रही है। इस 'लीगी मंत्रिमंडल' ने हमें तबाह कर दिया है।" एकाएक घड़ी की ओर देखकर बोले, "पौने नौ ! जल्दी खाना खा लीजिए। सिनेमा तो आप चलेंगी मिस चटर्जी ?"

"कौन सी फिल्म है ?"

"good Earth"

"चलेंगे हम भी।"

कुछ देर तक सब खाना खाने में संलग्न रहे। वेटर बीच-बीच में खाली 'प्लेटें' ले जाता था। रिस्तोरां की उस चहल-पहल के बीच उतने फौजियों को देखकर मैं दंग सी रह गई। क्या हमारा सब अन्न ये फौज वाले खा रहे हैं ! लेकिन इतना बड़ा बंगाल है और फौजी गिनती के कुछ। सो यह तो संभव सी बात नहीं लगी। फिर भी मन में अकुलाहट थी। और मृणाल की बातें याद आती थीं। क्या ऐसे ही होटलों में उसने भी प्रवेश पाया होगा। यह मिस चटर्जी यहाँ क्यों आई हैं ? यह एक छोटा 'पेग' ले लेती है। उसकी दृष्टि में भारतीय संस्कृति कोई सही संस्कृति नहीं है। वह उससे दूर भागती है और अपना जीवन इसी प्रकार व्यतीत करती है। उसकी चर्चा प्रत्येक परिवार में होती है। लेकिन सब पार्टियों में वह लोगों को मोह लेती है और औरतों तथा पुरुषों दोनों के मुँह पर उसी की चर्चा रहती है।

वे प्लेटें, वह खाना……! बी० बी० सी० का 'रिले' रेडियो पर सुनाई पड़ा। 'दुनिया की हलचल……। वह भी बन्द हो गया और अब आल इंडिया रेडियो अपने समाचारों को ब्रॉडकास्ट कर रहा था। मैं अपने भीतर सिकुड़ती जा रही थी। वे लोग उठ बैठे। हम लोग कुछ देर बाद 'कार' पर बैठ गए, मेरी तबीयत बहुत घबरा उठी। बोली मैं, "मैं घर जाऊँगी।"

"और सिनेमा ?"

"मेरी तबीयत ठीक नहीं है।"

"सिली !" बोली मिस चटर्जी। "तभी तो कहती थी थोड़ी बियर ले ले, तेरी तो तन्दुरुस्ती चौपट्ट हो जावेगी। रिसर्च के बाद—टी० बी०! तू अपनी परवा ही नहीं करती है सरल।"

मैं चुप रही। मुझे लगा कि मेरी आँखे मुँद रही है। तो वे बोले, "माफ करना मिस चटर्जी मैं इनको घर छोड़ कर अभी लौट आवूँगा। मेरा आप इन्तजार करें।"

मैं कार पर बैठ गई। 'कार' चलने लगी तो वे बोले, "सीधे घर चलेंगी या……बाग हो कर। शायद वहाँ की हवा में आपका दिल बहल जायगा। आप तो बहुत घबरा गई हैं।"

उनकी आँखों को देखकर मैं भयभीत हो गयी। शायद वे बहुत नशे में थे। मैंने सरलता से कहा, "मैं अब कहीं नहीं जाऊँगी। आप मुझे घर छोड़ दें।"

उन्होंने कोई तर्क नहीं किया। कार सड़कें पार कर हमारे घर के दरवाजे पर पहुँच गई। मैं जल्दी-जल्दी ऊपर पहुँची। पिताजी खाना खा रहे थे। माँ छोटे बच्चों को सुला रही थी। मुझे देखकर दोनों ने कुछ नहीं पूछा। मैं अपने कमरे के भीतर पहुँची। भीतर से चटखनी लगाई। फूट-फूट कर खूब रोई। कपड़े बदल कर लेट गई। पर नींद नहीं आई। बड़ी रात बीत गई थी। मुझे एकाएक भारी प्यास लगी। मैं बाहर आई तो माँ को कहते सुना, "आज लड़की की इज्जत बेच कर भात खाना लिखा था।

"इज्जत बेचकर......!" मैं सन्न रह गई।"

बोले पिताजी, "इज्जत ! आज किसी की इज्जत नहीं है। तीन बोरे चावलों के लिए सरल की माँग !" वे शायद आगे नहीं बोल सके। उनका गला भर आया।

मुझसे यह सब नहीं सहा गया। मैं दरवाजे के बाहर खड़ी होकर बोली, "माँ मैंने इज्जत नहीं बेची है।"

"सरल !" माँ उठी। उसने चटखनी खोली। मुझे मेरे कमरे में ले गई। मुझे देखकर बोली, "सरल तेरी तबीयत ठीक नहीं लगती है। सो जा अभागिनी बेटी।"

"माँ, मैंने अपनी इज्जत नहीं बेची है !" मैं तेजी से बोली। मेरा सारा बदन सिकुड़ गया। गला भर आया। आँखों के आगे अँधेरा छा गया......।

सरल की चिट्ठी का पूर्व भाग समाप्त हो गया था। सच ही सरल एक भारी तूफान के दौर को पार कर रही थी। वह एक सूखी पत्ती की भाँति उस तूफान में फंस गई। सरल एक नहीं थी। सरल तो लाखों की आवाज का एक स्वर था। शायद और स्वर भी जीवित होकर बोलें। वे भी शायद सवाल

पूछें और उनका उत्तर हमे देना ही पड़ेगा। इतिहास का यह बड़ा प्रश्न, केवल प्रश्न बन कर ही नहीं रह सकता! ६ अगस्त की आँधी और उसको ढक लेने वाला यह बड़ा तूफ़ान! जो उस आँधी को भी ढक लेता है!!

सरल उस घटना के बाद बीमार पड़ गई। अपनी बीमारी में भारी निराशा को बटोर कर उसने पत्र लिखा था, पर उसे भेज नहीं सकी। वह न चाहती थी कि अपने विश्वास को अपेक्षित रखे। दिन बीतते चले गए। लगभग दो महीने के बाद सरल स्वस्थ हो पाई। वह सारा झगड़ा उसके लिए एक भारी परीक्षा थी। अपने पत्र के साथ सरल ने एक छोटा दूसरा टुकड़ा अलग से लगा कर फिर लिखा था—

'वह पत्र मेरी भावुकता का एक सुपना था केशव। आज वहसब सही नहीं लगता है। मैं 'आत्म रक्षा समिति' म काम कर रही हूँ। और यह कौन कहता है कि बंगाल मर गया है। वह जीवित है। वह अपना रास्ता खोज निकालना चाहता है। हम सब मिल कर एक नई चेतना ला रहे हैं। आज आश्चर्य से देखती हूँ कि सब वर्ग एक हो रहे हैं। बंगाल एक हो गया है। अब हमसे नाज छुपा कर रखने का साहस किसी को नहीं है। अब युवतियों को वेश्यालयों का दरवाजा नहीं खट-खट खटाना पड़ेगा।'

और उस पतझड़ के बाद आज बसन्त का आना!

रूस जर्मन सन्धि का अन्त

[आरकेष्ट्रा धीरे-धीरे बजता है]

पहला एनाउन्सर—यूक्रेन का वह देश, जहाँ गेहूँ की पक्की पीली-पीली बालों से सब धरती छिप जाती है, वहाँ का वह प्राकृतिक दृश्य किसका मन नहीं मोह लेगा। संध्याकाल हो आया। गोधूलि के समय चरवाहे अपने ढोरों को जंगलों से वापस ले आये हैं। किसान अपने खेतों से लौट आये। फसल कट चुकी है। धीरे-धीरे क्षितिज में भी सूर्य की लाली बुझ गई। रात हो आई।

उसी देश के हृदय में एक सुन्दर बसे गाँव के निवासी फसल कट जाने का उत्सव मना रहे हैं।

[लोगों की हँसी-खुशी के शब्द। भारी भीड़ के चलने-फिरने का शब्द। सुन्दर गाना हो रहा है]

दूसरा एनाउन्सर—वहाँ एक परिवार में गृह-स्वामी, उनकी पत्नी, लड़की नादिया व और पड़ोसी आपस में गपशप कर रहे हैं। यह २३ अगस्त, १९३९ का दिवस है। हिटलर के नये नये विचार और सिद्धांत की बातें सब योरप के लोगों में कुतूहल फैला चुके हैं। इस परिवार के बीच भी उसी की बातें चालू हैं।

एक पड़ोसी—नात्सी लोगों का लीडर हिटलर अब धीरे-धीरे सब देशों पर अपना आतंक जमा रहा है।

दूसरा पड़ोसी—लेकिन हमारा देश उस तानाशाह से नहीं घबराता। हम लोगों का देश सबसे सुखी है। हमारा नागरिक जीवन बहुत सुखद है।

[टन, टन, टन-न न आठ बजते हैं]

गृहस्वामिनी—(आश्चर्य से) आठ बज गये। नादिया बर्लिन पर रेडियो तो लगा। आज २३ अगस्त है। देखें, वहाँ से क्या समाचार आते हैं।

[रेडियो की घर-घर-घर]

एक व्यक्ति—हम बर्लिन से बोल रहे हैं—

आज रूस और जर्मनी के बीच, दोनों देशों में अमन-चैन रखने के विचार से एक सन्धि हुई है। जिसकी धाराएँ ये हैं—

दोनों देश वादा करते हैं कि दोनों में से कोई भी देश एक दूसरे के विरुद्ध अपनी शक्ति काम में नहीं लावेगा। न दोनों मिलकर किसी तीसरे देश पर चढ़ाई करेंगे।

यदि कोई तीसरा देश, इन दोनों देशों में से किसी एक से साथ युद्ध करेगा, तो दूसरा देश किसी तरह शत्रु को सहायता नहीं पहुँचावेगा।

ऐसे मसले, जिनका सम्बन्ध दोनों देशों से है, जो कि वहाँ के अधीन

अधिकारों से सम्बन्धित हैं, उन पर दोनों देश आपस में एक दूसरे की राय लेकर उस झगड़े का निपटारा करेंगे।

दोनों में से कोई भी देश ऐसे किसी गुट से सम्बन्ध नहीं रक्खेगा, जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से किसी के भी विरुद्ध बनेगा।

आपसी मामलों पर दोनों देश एक दूसरे से सलाह लेंगे या पंचायत करके फैसला करा लेंगे।

इस संधि की मियाद दस साल की होगी। मियाद के बीत जाने से एक साल पहले यदि दोनों देशों में से कोई भी पैक्ट समाप्त होने की सूचना नहीं देगा, तो पैक्ट की मियाद पाँच साल और बढ़ जायगी।

यह बर्लिन है!

अभी आप रूस-जर्मन पैक्ट की धाराएँ सुन रहे थे। अब हमारा आगे का प्रोग्राम सुनिए—

गृहस्वामिनी—नादिया, बस, रेडियो बन्द कर दे।

[घर-घर की आवाज]

गृहस्वामी—[जोर से] हिटलर ने "माइन काम्फ" में लिखा है कि रूस के वर्तमान शासक खूनी-अपराधी हैं। संसार में वे सभ्य और ईमानदार नहीं हैं। उनका काम तो धोखेबाजी और लूट-खसोट करना है।

गृहस्वामिनी—आप ठीक कहते हैं। मुझे तो इस सन्धि में कुछ गहरी चालबाजी मालूम पड़ती है। न-जाने कामरेड स्टालिन ने क्या सोचा होगा।

एक पड़ोसी—लेकिन बिना सोचे-समझे मोलोतोव ऐसा कदापि स्वीकार नहीं करते। यह राजनीतिक शतरंज का खेल है, जिसमें किसी वक्त कुछ भी हो सकता है।

दूसरा पड़ोसी—तुम तो राजनीति-राजनीति चिल्ला रहे हो। शत्रु का विश्वास भी आस्तीन में साँप पालना है। न जाने कब डस ले।

नादिया—मा, दस बजनेवाले हैं। तुम नाटक देखने नहीं चलोगी।

गृहस्वामिनी—मैं भूल गई थी। वहाँ सब लोग हमारी बाट जोह रहे होंगे। चलो चलें।

[सबके जाने की आवाज]

[दूर से सुन्दर संगीत सुनाई पड़ता है, जो बीच-बीच में तेज हो जाता है और फिर धीमा। धीरे-धीरे वह संगीत बन्द हो जाता है]

पहला एनाउन्सर—सोवियत के प्रचलित सरकारी क्वाटरों से संध्या को सूचना मिली है कि इस पैक्ट के बारे में वहाँ के लोगों को पूर्ण विश्वास है कि एक दिन वह घातक सिद्ध होगा। जिस बचाव के लिए यह हुआ है, वह कदापि सिद्ध नहीं होगा।

दूसरा एनाउन्सर—इस पैक्ट की शर्तों को पढ़कर बर्लिनवाले आँखें मलते ही रह गये। वहाँ के समाचार-पत्रों ने विशेषांक निकालकर इसका स्वागत किया है।

पहला एनाउन्सर—रूस के प्रसिद्ध पत्र 'प्रवदा' का कहना है कि यह पैक्ट आपस के आर्थिक सम्बन्धों में ही सुधार नहीं करेगा, बल्कि इससे आगे के लिए मित्रता का वातावरण भी बन चुका है।

दूसरा एनाउन्सर—मिस्टर हिंडस ने न्यूजरिव्यू में लिखा है, सच पूछा जाय तो रूस में कम्यूनिज्म है ही नहीं। लेनिन का कहना कि 'राष्ट्र' कुछ भी नहीं है, वह हरएक व्यक्ति की वैयक्तिक स्वतंत्रता का आधार है, यही रूस में नीली पेन्सिल से मोटे-मोटे अक्षरों में लिखा मिलेगा।

पहला एनाउन्सर—मिस्टर चेम्बरलैन ने हाउस ऑफ कामन्स में कहा—

हमने पूर्ण विश्वास से सोवियत के साथ समझौता करने की इच्छा प्रकट की थी। हम अपनी सेना-सम्बन्धी नीति के बारे में बातचीत करने मिस्टर मोलोतोव के पास सदस्यों को भेज रहे थे कि जर्मन और रूस के पैक्ट का समाचार हमें मिला, जो कि बड़े दुःख की बात है।

दूसरा एनाउन्सर—और कुछ दिनों तक इस समाचार पर दुनिया के प्रत्येक देश में टिप्पणियाँ होती रहीं। कई महीने बीत गये। इस बीच जर्मनी के सैनिक पोलैंड पर अधिकार जमा चुके थे।

[सिपाहियों का मार्च, बिगुल...बैण्ड...]

दूसरा एनाउन्सर—१७ सितम्बर, रूसी फौजी दस्तों ने पोलिश-यूक्रेन और ह्वाइट रूस का हिस्सा जर्मनी से पोलैण्ड के बटवारे में ले लिया है। एम्० मोलोतोव का एलान है—

एम्० मोलोतोव—पूर्वी पोलैण्ड में ८० लाख ह्वाइट रूसवाले अल्प-संख्या में है, जिनको पोलैण्ड ने 'स्थानीय स्वतंत्रता' देने का वादा किया था। लेकिन ऐसा न होकर, उनके साथ बुरा बर्ताव किया गया और अब तो पोलैण्ड एक स्वतंत्र राजनीतिक शक्ति के रूप में मिट गया है। उसकी सरकार का कोई पता नहीं कि कहाँ है। इसी लिए रूस के कम तादादवाले बाशिन्दों की रक्षा के लिए यह हमला हुआ है।

[सिपाहियों का मार्च, बिगुल...बैण्ड...]

पहला एनाउन्सर—और प्रति दिवस नई-नई घटनाएँ और राज-नीतिक संघर्ष का हाल सुनाई पड़ा। संसार के लोग आश्चर्यचकित होकर, यह सब सुनते थे।

दूसरा एनाउन्सर—११ अक्तूबर, रूसी-लिथूनियन आपसी समझौते पर कल रात हस्ताक्षर हो चुके हैं। उसके अनुसार Vilna नगर और जिला लिथूनिया को दे दिया गया।

तीसरा एनाउन्सर—मास्को, २५ अक्तूबर, एक सरकारी एलान में बतलाया गया है कि पोलैण्ड का जो हिस्सा रूस के कब्जे में आ गया है, वहाँ के हरएक किसान को चार या पाँच एकड़ जमीन और एक-एक गाय दी जा रही है।

यह भी बतलाया गया है कि सोवियत रूस दो महीने के अन्दर दस लाख टन अनाज जर्मनी भेजेगा—

[चलती हुई लारियाँ]

पहला एनाउन्सर—रूस के प्रधान मन्त्री मोलोतोव ने 'सोवियत-काउ-न्सिल' में कहा—

मोलोतोव—जर्मनी और रूस को एक दूसरे से लड़ाने की सारी चेष्टाएँ बेकार हो गई हैं। यह झूठ बात है कि रूस फिनलैण्ड से 'आलैण्ड' तथा

और टापू माँगता है। रूस फिनलैण्ड से 'आपसी मदद' का पैक्ट करना चाहता था, जो कि उसने नामंजूर कर दिया।

[सिपाहियों का मार्च, लारियाँ चल रही हैं। बैण्ड बज रहे हैं। भीड़ जा रही है]

दूसरा एनाउन्सर—एम्सटर्डम, २ दिसम्बर, १६३६। रूस और फिनलैण्ड की लड़ाई से हिटलर बहुत परेशान है। बाल्टिक की रियासतों में रूस का प्रभाव इतना बढ़ गया है कि जर्मनी के कमांडरों में आपस में मतभेद हो गया है। इसी लिए इसके विरुद्ध जर्मनी ने रूस को बहुत शिकायतें लिख भेजी है, जिनका उत्तर देना स्टालिन ने अस्वीकार कर दिया है।

[सिपाहियों का मार्च, लारियाँ चल रही हैं। बैण्ड बज रहे हैं]

पहला एनाउन्सर—युद्ध की प्रगति का सब हाल यूक्रेन के भीतरवाले गाँव के उस परिवार को मालूम हैं। वह किसान-परिवार कभी तो बहुत उत्तेजित हो जाता है। फिर उनको आश्चर्य होता है। कभी वे दुनिया को इस तरह नष्ट होते देखकर दुखी भी होते हैं।

दूसरा एनाउन्सर—प्रातःकाल हो आया। गृहस्वामिनी नाश्ता तैयार कर चुकी। सब नाश्ता कर रहे हैं। इसी बीच...

[खट-खट-खट......]

[तारवाला आता है]

तारवाला—नादिया।

गृहस्वामिनी—नादिया, किसका तार है ?

[खट-खट तारवाला चला जाता है]

नादिया—वायला का। वह आज शाम की गाड़ी से आ रही है।

पहला एनाउन्सर—वायला उस परिवार की सबसे बड़ी लड़की लेनिनग्रेड के संगीत-विश्व-विद्यालय में पढ़ती है। उस दिन संध्या को—

[चलती रेलगाड़ी—रेलगाड़ी रुकती है। कार के हार्न का स्वर, कार चलती हुई, कार रुकती है। दरवाजा खुलता है]

वायला लम्बे सफर के बाद अपने घर पहुँच गई।

वायला—मा, नादिया—

गृहस्वामिनी—वायला, लेनिनग्रेड का क्या हाल है ? यहाँ तो युद्ध-युद्ध-युद्ध ! हिटलर क्या दुनिया को नष्ट करके चैन लेगा ?

वायला—मा, लेनिनग्रेड में किसी को भी हिटलर की परवा नहीं। हमारा देश अपने उद्योग-धन्धों तथा और नई-नई स्कीमों में, अपनी उन्नति के लिए लगा हुआ है। और नादिया, अब चल, तुझे अपना वायलिन दिखा दूँ, अब के मैं नया ले आई हूँ।

[दोनों जाती हैं]

गृहस्वामिनी—वायला कहती है—वहाँ सब निश्चिंत अपने-अपने कामों पर लगे हैं, तब हम ही बेकार घबरा जाते हैं। उनसे कहूँ कि अब के गोशाला ठीक करानी है। अच्छे बीज भी अगले दिनों के लिए बोने हैं। लड़ाई-लड़ाई—रूस तो अपनी उन्नति पर लगा है। जाऊँ उनसे कह दूँ। ओ वायला, तूने हमें नया जीवन दिया है, मेरी लाड़ली वायला !

[जाती है]

[वायलियन दूर बजता है। फिर समीप-समीप लगता है। अब बिलकुल पास। वायला और नादिया के पाँवों की खट-खट-खट]

नादिया—मुझे नहीं सिखलाओगी जीजी।

वायला—अच्छा, ले तू ही बजा।

नादिया—ला...

[वायलिन गड़बड़-सा बेसुरा बजता है]

वायला—ठीक तो है।

नादिया—अच्छा लो।

[वायलिन सुन्दर स्वरों में बजता है। बजता रहता है]

दूसरा एनाउन्सर—वायला के वायलिन के स्वरों ने उस परिवार में नया जीवन और नूतन उत्साह भरा। गृहस्वामी अब गाँव के नव निर्माण पर सोचने लगे। कभी-कभी युद्ध के समाचार वहाँ पहुँचते थे; पर वे वायला के वायलिन की स्वर-लहरी के बीच डूब जाते।

[वायलिन धीरे-धीरे लगातार बज रहा है]

[सिपाहियों का मार्च व बैंड—]

दूसरा एनाउन्सर—१९४०—जनवरी—फरवरी, १३ मार्च—रूस-फिनिश संधि पर हस्ताक्षर हुए,

९ अप्रैल, जर्मनीवालों ने नारवे पर चढ़ाई की।

१० मई, हालैएड और बेलजियम पर चढ़ाई।

[सिपाहियों का मार्च, बैएड—शोरगुल]

पहला एनाउन्सर—यूक्रेन के उस छोटे परिवार में वायला अपने वायलिन से सबको मोह लेती थी।

[वायलिन बजता है—धीरे-धीरे बन्द हो जाता है]

दूसरा एनाउन्सर—१० जून, इटली भी जर्मनी के साथ युद्ध में सम्मिलित हो गया।

जर्मनी की सेनाएँ फ्रांस में युद्ध कर रही हैं।

[लारी—टैंक, मार्च—बैंड—]

१७ जून, फ्रांस का पतन हो गया।

जौलाई—अगस्त—सितम्बर—

जर्मनीवाले अपनी पैशाचिकता का पूरा-पूरा उपयोग कर ब्रिटेन पर वायुयान द्वारा आक्रमण करते रहे। अक्तूबर—नवम्बर—दिसम्बर—हिटलर की दृष्टि बलकान के सुन्दर देशों पर पड़ी। वह वहाँ का सुख देख ललचा उठा, और लालची भाग्यवादी की तरह वहाँ उसकी सेनाएँ पहुँचीं।

[लारी—टैंक—सिपाहियों का मार्च—बैंड]

पहला एनाउन्सर—यूक्रेन में बसे उस सुन्दर गाँव में सब लोग अपने समीप के देशों का समाचार सुन बार-बार घबरा उठते थे। नादिया समाचार पत्रों से समाचार सुनाती; लेकिन संगीत-प्रेमी वायला अपनी वायलिन में मस्त थी। उस पर उनका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता था। वह अपनी वायलिन लेकर कहीं एकान्त में बैठ जाती और—

[वायलिन बजता है—धीरे-धीरे दूर-दूर-सा-फिर नहीं सुनाई पड़ता।]

पहला एनाउन्सर—लेकिन युद्ध की गति पर सारे संसार को आश्चर्य होने लगा कि अब क्या होगा। प्रतिदिन नात्सी-सेनाएँ सुन्दर-सुन्दर देशों को उजाड़ रही थीं, इस पर लोगों के अलग-अलग विचार थे—

[टैंक—सिपाहियों का मार्च—बैंड]

दूसरा एनाउन्सर—२ जनवरी, १९४१—

'रेड स्टार' का कथन है कि रूस पर आक्रमण होने की शंका बढ़ती जा रही है।

तीसरा एनाउन्सर—१२ फरवरी, बेलग्रेड का समाचार है—

मो० शोबोलेफ ने बादशाह बोरिस से कहा कि रूस बलगेरिया की स्वतंत्रता को स्वीकार करता है। लेकिन यदि वहाँ अन्य किसी देश की सेनाएँ घुसेंगी तो रूस जैसा चाहेगा, वैसी ही कार्यवाही करेगा।

पहला एनाउन्सर—मास्को, २५ फरवरी, १९४१—

अर्थ-मंत्री ने सेना के खर्च में बढ़ती कर दी है।

दूसरा एनाउन्सर—मास्को, २२ मार्च—

समाचार मिला कि साइबेरिया और कीव में 'लाल सेना' इस तरह तैयारी कर रही है, मानो सचमुच ही लड़ाई आरम्भ होने वाली है।

[सिपाहियों का मार्च]

तीसरा एनाउन्सर—लंदन ७ मई, १९४१—मास्को रेडियो पर बतलाया गया है कि मोलोतोव की जगह स्टालिन प्रधान मंत्री हो गये।

पहला एनाउन्सर—'लंदन टाइम्स' का कहना है कि रूस-जर्मनी के बीच जो व्यापारिक समझौता हुआ था, उसकी शर्तों के अनुसार रूस से जर्मनी को जल्दी-जल्दी माल नहीं पहुँच रहा है। इसी लिए जर्मनी की सरकार और रूस की सरकार में लिखा-पढ़ी चल रही है।

दूसरा एनाउन्सर—जब कि 'मानचेस्टर गार्जियन' का कथन है कि मोलोतोव से 'प्रधान मंत्री' की जगह ले लेना किसी होनेवाली अन्तर्राष्ट्रीय घटना का सन्देह पैदा करता है। सम्भवतः मोलोतोव जर्मनी की ओर शर्तें स्वीकार करना चाहते थे, जो स्टालिन को अनुचित लगीं।

तीसरा एनाउन्सर—ग्रीस, क्रीट, अफ्रिका आदि में युद्ध की प्रतिदिन की घटनाओं को वायला बार बार अपनी वायलिन से अब निरर्थक ढकने की चेष्टा कर रही थी।

[वायलिन फिर बजता है]

युद्ध की गति से अब सब परिचित हो गये थे।

[सेनाओं का मार्च, बैंड]

पहला एनाउन्सर—और नादिया-वायला के उस परिवार में एक दिन दोपहर को एरोप्लेन से [एरोप्लेन चलता है] उनका भाई साशका, जो कि मास्को के सैनिक विश्व विद्यालय में पढ़ता है, छुट्टियों में आ पहुँचा।

दूसरा एनाउन्सर—सुनहली सन्ध्या है। सारा परिवार बैठा हुआ वायला से वायलिन सुन रहा है।

[वायलिन बजता है]

गृहस्वामिनी—साशका, लड़ाई का क्या हाल है ?

साशका—मा, शीघ्र ही हम लोगों को भी युद्ध में जाना होगा।

गृहस्वामिनी—[आश्चर्य से] युद्ध में ?

साशका—हाँ, राजनीतिक चालें ही ऐसी होती हैं। हमें हिटलर पर कभी विश्वास नहीं था, इसी लिए हमारे देश में भी तैयारियाँ हो रही हैं। वायला, वायलिन फिर बजा।

[वायलिन फिर बजता है—फिर एकाएक रुक जाता है]

वायला—भैया, युद्ध...युद्ध...युद्ध......

क्या संसार की सारी संस्कृति मिट जायगी ? ओफ, मैं स्वप्न देखती थी—गेहूँ के सुन्दर-सुन्दर खेतों से दूर जो जैतूनों का बाग है, उसके पास ही अंगूरों की बेलों के बीच बैठकर अपनी दुनिया बसा लूँगी। वहीं रहकर वायलिन बजाऊँगी और सुन्दर-सुन्दर गीत गाऊँगी।—और तुम तो कहते हो.........

साशका—पगली लड़की। यह भावुकता देश की रक्षा के लिए होनी चाहिए। हमारा व्यक्तित्व तो कुछ भी नहीं है। हमारा देश है—हम देश के

हैं। अच्छा, वायलिन सुना है।

[वायलिन बजाती है]

[धीरे-धीरे वायलिन का स्वर दूर-दूर सुनाई पड़ता है। सिपाही मार्च करते हैं। लारियाँ घर-घर चलती हैं। हवाई जहाजों की गड़गड़ाहट सुनाई पड़ती है। बैंड बजता है—कुछ देर बजता रहता है]

पहला एनाउन्सर—और २२ जून को, साढ़े तीन बजे रात को जर्मन रेडियो से हिटलर की घोषणा सुनाई पड़ती है—

हिटलर—जर्मनी ने आज रूस पर हमला कर दिया है, जिसके कारण ये हैं—

१. रूस ने बाल्टिक रियासतों पर बिना जर्मन से राय लिये धावा करके उनको अपने अधिकार में ले लिया।

२. यूगोस्लाविया के लोगों को रूसवालों ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध करने के लिए बहकाया, तब भी मैं चुप रहा।

३. मैं यह बात निश्चित रूप से बता देना चाहता हूँ कि "बोल्शेविज्म" जर्मनी के 'सोशलिज्म' के विरुद्ध शासन-प्रणाली है। मैं अपने देश की पूर्वी सीमा खतरे में नहीं देखना चाहता।

४. मैंने सन् १९३९ में रिबनट्राफ को मास्को भेजा था; क्योंकि मेरा ख़याल था कि रूस से समझौता हो जायगा। हम लोगों ने एक पैक्ट पर हस्ताक्षर भी किये थे। लेकिन रूस ने उसकी शर्तों को, उसी समय तोड़कर लिथुआनिया को अपने देश में मिला लिया, जिससे हजारों जर्मनों को उस देश से निकल जाना पड़ा। मैं फिर भी कुछ नहीं बोला।

५. मैंने पोलैण्ड के युद्ध के बाद रूस को संसार के अन्य देशों के आगे एक शान्ति-प्रस्ताव प्रस्तुत करने को कहा था, ताकि युद्ध बन्द कर दिया जाय, वह उन लोगों ने ठुकरा दिया। यही नहीं, १९३९ के जाड़ों से १९४० के वसन्त तक उन लोगों ने विना मेरी राय के फिनलैण्ड पर धावा कर दिया और बाल्टिक की रियासतों पर भी अधिकार जमा लिया।

६. जिस समय मोलोतोव बर्लिन आये उन्होंने चार बातें प्रस्तुत की

थीं। यदि रूस रूमानिया, बसाराविया तथा बुकोविना पर हमला करे तो क्या जर्मनी इसमें साथ देगा?

फिनलैंड से रूस को भय है। समय पर क्या जर्मनी फौजें भेजकर रूस की मदद करेगा?

क्या जर्मनी को स्वीकार है कि बल्गेरिया में रूस अपनी सेना भेजकर उसे गारंटी दे?

रूस दर्देदानियाल में खुला रास्ता चाहता है। वह फासफोरस में अपना समुद्री अड्डा बनाना चाहता है।

७. जर्मनीवाला को ज्ञात है कि पूर्वी सीमा पर जर्मनी की कोई भी मेकेनाइजड सेना की टुकड़ी पहले नहीं थी। लेकिन यूगोस्लाविया में बगावत मचाने की इच्छा रखकर, सलोनिका के रास्ते 'सर्व लोगों' को युद्ध का सामान पहुँचाने की शर्त पर रूस ने पैक्ट तोड़ डाला।

इसी लिए १,५०० मील के लम्बे मोर्चे पर जर्मनी के पचास लाख सिपाही लड़ रहे हैं।

[मार्चिंग—ऐरोप्लेन, बैंड—लारी—]

दूसरा एनाउन्सर—मिस्टर मोलोतोव ने इसके उत्तर में कहा है—

मोलोतोव—आज चार बजे सुबह सोवियत-सरकार को बिना कोई कारण बतलाये और बिना युद्ध की घोषणा किये, हिटलर ने हमारे देश में जीतोमरो, कीव, सेवास्तोपोल, कोन्स तथा और नगरों पर धावा कर दिया है। दुनिया के इतिहास में ऐसी धोखेबाजी की मिसाल मिलना संभव नहीं है। जब कि हमारा जर्मनी से पैक्ट हो चुका था, तब यह धावा एक डकैती के सिवा और क्या हो सकता है?

धावा करने के बाद, साढ़े पाँच बजे जर्मनी के राजदूत ने यह सूचना हमें दी है।

यह युद्ध बेकार हमारे सिर मढ़ा गया है। जर्मनी की जनता, श्रमिक किसानों की राय इसमें नहीं ली गई है। यह उन तानाशाह डिक्टेटरों की करतूत है, जिन्होंने इतिहास के पन्नों को फ्रेंच, चेक, पोल, नारवेजियन, बेल्जियन,

डेन्श, डच, ग्रीक लोगों के लहु मे रँगकर, उनके देशों को दासता के बन्धन से जकड़ा है।

हमारा देश पूरी शक्ति और विश्वास के साथ इस युद्ध को लड़ेगा और अन्त में हिटलर की भी वही दशा होगी, जो कि नेपोलियन की कभी हुई थी।

[सेनाओं का मार्च, बैंड—भीड़—]

तीसरा एनाउन्सर—ब्रिटेन के प्रधान मंत्री मिस्टर चर्चिल ने रूस पर जर्मन की इस चढ़ाई पर कहा है—

हमने सोवियत-रूस की सरकार से कह दिया है कि हम हर तरह रूस को मदद देने के लिए तैयार हैं।

हमारा एक ही उद्देश्य है कि हिटलर मिट जाय; क्योंकि रूस पर होने वाला धावा, ब्रिटेन पर होने वाले धावे का आरम्भ-मात्र है।

रूस जर्मनी के धावे से मुझे कुछ भी आश्चर्य नहीं हुआ। मैंने इसकी चेतावनी स्टालिन को दे दी थी।

मैं अपने सब साथियों से अपील करता हूं कि वे रूस की सहायता करें।

[ऐरोप्लेन और समुद्री जहाज चलते हैं]

पहला एनाउन्सर—और यूक्रेन का वह सुन्दर देश, जहाँ के निवासी चैन से रहते थे, जहाँ एक नई संस्कृति थी, जहाँ सुख और शान्ति थी—

[सुन्दर गाने का आरकेष्ट्रा]

उसी पर एक दिन हिटलर की फौजों ने आक्रमण कर दिया।

[सेना का मार्चिङ्ग, ऐरोप्लेन, लारियाँ चलती हैं, बैंड]

एक दिन सुबह साशका अपने परिवार वालों के साथ चाय पी रहा है। तभी एक सैनिक आता है।

[सैनिक का आना]

साशका—कीव से आर्डर आया है।

गृहस्वामिनी—क्या लिखा है उसमें?

साशका—हमारा देश खतरे में है। मुझे उसकी रक्षा के लिए जाना होगा।

दूसरा एनाउन्सर—सचमुच ही उसी दिन दोपहर को—

[लारी आकर रुक जाती है]

[खट-खट-खट—कई लोग आते हैं]

वायला—भैया, क्या जा रहे हो ?

साशका—हाँ, वायला एक बार अपना वायलिन तो सुना; फिर न जाने कब सुनने को मिलेगा।

[वायलिन बजता है]

[खट-खट-खट]

गृहस्वामिनी—यह क्या, वायलिन बजा रही है वायला। अच्छा साशका—बेटा—चिट्ठी भेजना—

गृहस्वामी—बेटा, देश के प्रति यही तुम्हारा कर्तव्य है कि तुम उसकी रक्षा करो।

साशका—अच्छा...

[लारी चलती है। फिर दूर—दूर—दूर चली जाती है]

पहला एनाउन्सर—और युद्ध की प्रतिदिवस की घटनाओं को सब लोग चौकन्ने होकर सुनते हैं कि कहाँ क्या हो रहा है।

३ जुलाई को स्टालिन कहता है—

स्टालिन—जर्मनी वालों ने एकाएक हम पर धावा किया। उनकी रूस की सीमा पर १७० डिवीजन सेना थी। इसी लिए वे एकाएक बढ़ते चले आये। अब उनसे भिड़ने हमारी सेनाएँ पहुँच चुकी हैं। यह युद्ध सोवियत रूस का तो है ही, साथ ही उन देशों का भी है, जिन पर कि जर्मनीवालों का अधिकार है।

[बैण्ड बजता ही रहता है]

दूसरा एनाउन्सर—यूक्रेन का वह हरा-भरा देश, जो स्वर्ग-सा शान्त

था, जहाँ नागरिक प्रसन्न थे, जहाँ के ग्रामीण अपने धन्धों में लगे रहते थे, जहाँ हँसी-खुशी का साम्राज्य था—

[सुन्दर आरकेष्ट्रा]

वहीं—

[सेनाओं का मार्च—बैंड—लारियाँ चलती हुईं]

जर्मनी की सेना से वहाँ के सैनिक लड़कर अपने देश की रक्षा में लगे हैं।

वायला सब कुछ घटनाओं को पढ़ती है। सोचती है, उसका प्यारा देश—वह उत्तेजित होती है और वायलिन बजाती है।

[खट-खट-खट कोई आता है]

नादिया—जीजी।

[वायलिन बजता ही रहता है]

नादिया—जीजी, तूने यह पढ़ा—

वायला—[वायलिन बन्द कर] क्या है नादिया ?

नादिया—अस्पतालों में नर्सों की आवश्यकता है। मैं वहीं जा रही हूँ।

वायला—तो मैं भी वहीं चलूँगी।

नादिया—पहले वायलिन सुना।

(वायला वायलिन बजाती है।)

पहला एनाउन्सर—एक दिन वायला और नादिया भी चली गईं।

(रेल की सीटी बजती है और रेल चली जाती है)

दूसरा एनाउन्सर—आज यूक्रेन युद्धभूमि बना हुआ है, जहाँ कि रूस और जर्मनी की सेनाओं के बीच घमासान युद्ध हो रहा है।

(सेनाओं का मार्च. बैंड)

धुँधली रेखाएँ

आज भी केशव निर्मला की सही पहचान नहीं कर सका है। वह बोलती है, हँसती है और बात-बात में मीठी चुटकी ले लेती है। फिर अपने नव निर्मित वातावरण में चुपचाप छुप कर रह जाती है। केशव उस कुहरे को नहीं छेद पाता है। वह तो उसके मनके भीतर पैठ, उसके मन का ताला तोड़ कर पूछ लेना चाहता है—क्यों निमू रानी, आज तुम्हारी वे सब शरारतें कहाँ काफ़ूर हो गई हैं। वह खुश मिजाजी और उस मस्ती की दुनिया को कहाँ छोड़ आई हो? आज तो तुम में पिछली-सी सजावट नहीं पाता हूँ। न साधारण शोखी ही बची है। न तुम तकरार करती हो। तुम्हारा खिला चेहरा फीका-सा दीख रहा है। जब कि गृहस्थी का नाग इसी भाँति लड़कियों को डस लेता है, तब तुम लोग कोई सही उपाय क्यों नहीं कर लेती हो कि अलसा न सको। यदि किसी भावुकता के कारण मन मुरझा जाता है, तो उसका उपचार न करना भूल होगी। यह विज्ञान का युग है, जहाँ कि उस जंक को मिटा डालना ही हितकर होगा। आदिम और आज के इनसान की विचारधारा इतिहास की कई पगडंडियाँ लाँघ चुकी है। अब वह आदिम साम्यवाद, दासप्रथा, सामन्तवाद तथा पूँजीवाद की भारी-भारी मंजिलें तय कर चुका है। आज भावुकता की कसौटी पर निर्माण की भावना को परखना अनुचित होगा। तुम को कौन-सी उलझन है? जीवन में कोई अड़चन हो, तो उसका निपटारा हो ही जाना चाहिए। अपने व्यक्तित्व के प्रति सन्देह करके, उसे मिटा डालने की चेष्टा करना शुभ नहीं है। न नष्ट हो जाने की भावना जीवन का सही प्रतीक है। मौत भी सबल छुटकारा नहीं है।

तभी निर्मला बेबी को गोद में लिए आई और कुर्सी पर बैठ कर दूध पिलाने लगी। सरलता से बोली, "आज पाँचवी बोतल टूट गई। बाजार में ठीक से बोतलें नहीं मिल रही हैं और रबर तो बिलकुल सड़े-गले हैं।"

केशव देख रहा था कि माँ में कोई खास उत्साह नहीं हैं। बच्चों को पा

कर भी खुशी नहीं है। चेहरे पर विषाद की भारी छाप है। लगता था कि कमरे के किसी कोने से कोई चुपके सुभा रहा हो—यह मध्यवर्गीय परिवार का अवशेष है। पिछले महायुद्ध में वे भारी तूफान में फंस कर कच्चे पड़ गये थे। बहुत जीर्ण और अस्वस्थ थे। इस महायुद्ध की चोटों को सहने की सामर्थ्य न रहने पर, टूट रहे हैं। परिवार की दीवारें सड़ गई हैं। झूठी प्रतिष्ठा की चमक ओझल हो रही है। सामन्तवादी युग का पलास्टर सीलन पड़ जाने के कारण झड़ गया है। दादा-परदादाओं द्वारा स्थापित भारी-भारी शहतीरों पर झुर्रियाँ पड़ गई हैं। बड़े-बड़े परिवारों का साम्राज्य तितर-बितर होकर अलग-अलग छितरा गया है। यह वैसे ही एक बड़े परिवार का अंग है—पति, पत्नी और दो बच्चे। यह परिवार अपनी धरती से बड़ी दूर, नौकरी करता हुआ, जीवित रहने की ओर सचेष्ट है।

पूछा निर्मला ने, "आज तीन महीने में आए हो?"

"बाहर चला गया था। कल ही तो लौट कर आया हूँ। यहाँ का क्या हाल-चाल है?"

निर्मला ने उत्तर नहीं दिया। चुपचाप दूध पिलाती रही। केशव परिवार का ढांचा देखने लगा। पति सौ-सवा सौ माहवारी कमाकर लाते हैं। यही परिवार की आमदनी है। पहली तारीख को बजट बनाया जाता है और आठ तारीख तक फेल हो जाता है। फिर बनिए के यहाँ के पर्चियों पर 'रासन' आती है। इसके अतिरिक्त कुछ बिल अगले महीनों पर डाल दिए जाते हैं। तकाजे वाले जब नाक में दम कर देते हैं, तब उनको चुकाने की बारी आती है। परिवार और मामलों में चाहे पिछड़ा ही हो, पर पाँच साल में दो बच्चों को पैदा करने का भागी है। इन दो बच्चों की रक्षा करने में आमदनी का एक बड़ा अंश खर्च हो जाता है। इतना ही नहीं, बेबी के जन्म के साथ निर्मला को ऐसा रोग लगा कि गले का लाकेट सोने का भाव बढ़ जाने के कारण व्याज की भाँति खर्च हो गया। उसका गला सूना-सा भला नहीं लगता है।

बेबी को दूध पिला कर निर्मला ने केशव को सौंप दिया। खुद बाहर

चली गई। बेबी ने एक बार उस नए जन्तु को देखा। कुछ क्षण कुतूहलवश टकटकी लगा कर देखता ही रहा। आखिर मुंह बिचका दिया। केशव ने देखा कि आँसू न होने पर भी उस बच्चे ने रोने का बहाना स्वीकार कर लिया था। जब कि वह पुचकार कर थक गया तो उठा और कमरे में टहलने लगा। दीवारों पर 'एलस्ट्रेटेड वीकली' के कवर से काटी गई कुछ तसवीरें टंगी थीं। एक ओर एक 'केबिनेट् साइज' का फोटो लगा था, जो कि सम्भवतः शादी के बाद खींचा गया होगा। उसमें निर्मला के चेहरे पर एक स्वाभाविक लाज थी और वह चौड़े 'बार्डर-वाली' सुन्दर साड़ी पहने हुए थी। पति पूरे साहबी ठाठ में थे। फोटोवाली युवती का जीवन आजवाली निर्मला में नहीं मिला। वह ताजगी नहीं थी। फोटो के बाद वर्त्तमान और भविष्य के जाले ने सारा उत्साह छीन लिया। वह उस जाले में फंसती जाती है। आज अब उसे छुटकारे की कोई चाहना नहीं होगी।

रसोई से उसने एकाएक लड़की के रोने की आवाज सुनी। बाहर आ कर देखा कि निर्मला के सिर पर से सारी खिसक गई है। सूखे बाल हवा में उड़ रहे थे। वह लड़की को मारती हुई कह रही थी, "ले अब मुझी को खा जा।"

लड़की को मार तो कम पड़ी, फिर भी रोने का स्वर बहुत ऊँचा था। सोचा केशव ने कि यह मार तो रोज का काम है। बिना इसके न माँ अपनी झुँझलाहट हटा सकती है और न लड़की अपनी जिद। माँ पीट कर अन्त में अपनी हार मान लेती है। लेकिन निर्मला सँभल गई। वह तो भूल गई थी कि केशव बाहर बैठक में बैठा हुआ है। तो इस प्रकार का उच्छृङ्खल रूप केशव ने आज देख ही लिया। अपनी इस असमर्थता पर सोच कर, वह चुपचाप रसोई में चली गई। वह लड़की मुन्नी दालान के फर्श पर पड़ी ऊँचे स्वर में रोती ही रही। केशव ने समीप पहुँच कर कहा, "मुन्नी, विलायती मिठाई मिलेगी। चुप हो जायगी रानी बिटिया। माँ बड़ी खराब है न!"

रसोई घर में धुआँ, धुआँ, धुआँ भरा हुआ था। वहीं तो निर्मला थी। मुन्नी 'लेमन ड्राप' पाने के लोभ में चुप हो गई थी। पर यदा-कदा

सिसकियाँ आ ही जाती थीं।

केशव देख रहा था कि दालान के एक छोर में तुलसी का बड़ा पौधा कनस्टर पर उगा हुआ है । खाली जमीन पर सुन्दर क्यारियाँ बनी थीं। उनमें राई, मेथी, पालक आदि साक उगे हुए थे । एक बड़ा नीम का पेड़ अपनी भारी छाया खपड़ैल वाले रसोई घर पर फैलाए हुआ था। सामने तार पर धुँधली जामुनी रंग की सारी फैली हुई थी। आधा तार बच्चों के छोटे छोटे फ्राक आदि कपड़ों से भरा हुआ था।

निर्मला आग फूंकती जाती पर गीली लकड़ियाँ सुलगने का नाम न लेती थीं। यह सब देख कर केशव रसोई घर के दरवाजे पर खड़ा हो कर बोला, "नौकर कहाँ चला गया है?"

"छोड़ दिया।"

"तो बिना नौकर के···।"

"आजकल नौकर रखना आसान काम नहीं है। तनख्वाह से चौगुना तो उसके खाने में ही खर्च हो जाता है।"

"फिर भी तुम्हारी सेहत?"

बात पलट दी निर्मला ने, "उनसे कहा था कि अच्छी लकड़ी देखकर लाना, पर एम० ए० पास कर लेना एक बात है, लकड़ी की पहचान दूसरी। जैसा किसी ने बहका दिया। उस दिन ठेलेवालों ने साढ़े पाँच पँसेरी कह कर गीली लकड़ी दे दी।"

"सवाल था तुम्हारी तन्दुरुस्ती का, निर्मला?"

और निर्मला आग फूँकती रही। धुएँ से भरे उस कमरे में जैसे कि काम करने की आदत पड़ गई हो। सोच कर कहा केशव ने, "चाय तो रहने दो। मैं पीकर आया हूँ। व्यर्थ क्यों परेशान हो रही हो। अभी तो चार भी नहीं बजा है।"

"मोढ़ा उठा लाऊँ। यहीं दालान में बैठ जाओ।"

"नहीं-नहीं, ठीक है।"

"हैं, बेबी सो गया। कहा क्यों नहीं।" वह बाहर आई और उसे ले

कर भीतर कमरे में चली गई। लौटकर आई थी कि हँस कर केशव ने कहा "तुलसी के पेड़ को देख कर तेरे माँ की बात याद आ गई।"

"कौन सी ?"

"वही बालगोविन्द के साथ तेरी शादी कर देने की।"

कुछ न कह, वह मुस्करा कर भीतर चली गई।

निर्मला ठीक सतरह की भी न हो पाई थी कि माँ उसकी शादी करने की चिन्ता में पड़ गई। इसका कसूर यही था कि अपनी उम्र की लड़कियों से वह अधिक स्वस्थ थी। जब उसकी किसी सहेली की शादी होती, तो उसकी माँ गद्‌गद हो कर उस लड़की को विदा करते हुए कहती थी कि निमू के लिए लड़का जरूर ढूँढ़ना। अब वही अकेली छूट रही है। कभी-कभी वह भुंभलाहट में कहती थी कि उसकी सात भाँवरें पत्थर के काले बालगोविंद से कर देगी। आखिर शादी तो करनी ही होगी। आज वह उस मायके की सीमा से बाहर है। बहुत दूर है। अपने इस संसार से बाहर उसे झाँकने की फुरसत नहीं है। सुबह से शाम तक इस चहार-दीवारी के भीतर काम में जुटी रहती है। कुछ सोचने विचारने का समय नहीं मिलता है। असंतुष्ट होने पर कुड़कुड़ाहट नहीं करती है। गुस्सा चढ़ जाने पर बच्चों की मरम्मत सीधा-सादा नुस्खा है। दिन बहुत बड़ा नहीं लगता। महीने आसानी से कट जाते हैं। मौसमें साधारण रूप में गुजर जाती हैं। उनका खास असर उस पर नहीं पड़ता है। जाड़ा, गरमी, और बरसात, सदा ही सुबह उठ, घर के काम में जुट जाती है। वक्त का अधिक ध्यान नहीं रहता है। स्वप्न के सुनहले जाल फिर भी बीच-बीच में उठ जाते हैं। उन पर भले ही विश्वास न करे। भाग्य की कसौटी पर आकांक्षाओं को परखना नहीं चाहती है। जीवन का प्रवाह तीव्र नहीं है। सारी झंझट आसानी से बीत जाती है। मन पर भावुकता की चोटें भारी पीड़ा नहीं पहुंचाती हैं।

मुन्नी तो अब बोली, "ताफी !"

ठीक अभी उसने टाफी लाने का वादा किया था और विलायती मिठाई का आश्वासन भी वह दे चुका है। वह इस प्रकार अपनी भूल को

मान लेगा। जोर से बोला, "हम जरा बाहर जा रहे हैं।"

"क्या ?" निर्मला ने पूछा।

"अभी लौट आवेंगे।"

"अच्छा, समझी ! यह मुन्नी की फरमायश होगी ! लेकिन आप तो इसकी आदत बिगाड़ रहे हैं। जा मुन्नी, आलमारी से चीनी का डिब्बा उठा ले आ।"

मुन्नी तो चुपचाप केशव की उँगली पकड़े खड़ी रही तथा बार-बार उँगली खींच कर इशारा करती थी कि बाहर चलो। केशव ने मुन्नी के चेहरे का आग्रह पढ़ा और उसे लेकर बाहर चला गया।

पास ही दो फर्लांग पर एक पान की दूकान है। वहाँ के लिए रवाना हुआ है। मुन्नी उस दूकान को भलीभाँति पहचानती है। मुहल्ले में वह बड़ी चहल-पहल की जगह है। छोटा-मोटा बिसाती का सामान सुई, डोरा, बटन वहाँ मिल जाता है। कलम, दवात, रोशनाई, कागज आप ले सकते हैं। बिस्कुट, लेमनड्राप आदि भी हैं और साथ में पान की दूकान की जो रौनक है सो अलग ही ! मुहल्ले के पिछवाड़े जो कहार, धोबी, मजदूर, चपरासी आदि निम्नवर्ग के लोग रहते हैं, उनकी बैठक यहाँ जमती है। भले घर की बहू-बेटियों की सच्चरित्रता की आलोचना के साथ-साथ इस युद्ध की भी तीव्र आलोचना होती है कि जापान ने क्या कहा है। और बर्मा का जो नया दफ्तर आया है, वहाँ क्या-क्या बातें हुआ करती हैं। पानवाला पतला-दुबला है, पर उसकी लुगाई भारी-भरकम मोटी है। पिछले दिनों वह कलक्टर साहब के जमादार के साथ पूरे सात रोज तक गायब रही। एक दिन सुबह लोगों ने मारपीट की आवाज सुनी। कुछ लात और घूसों की मार के बाद पति ने उसे फिर दूकान पर बैठा दिया और सब पिछला कलंक धुल गया।

इस दूकान की बातों की जानकारी केशव को है और उनकी बातें भी उसने सुनी हैं। उनकी बैठक में कई दफ्तरों के चपरासी, कुछ बंगलों के कहार तथा ऐसे लोग हैं, जो रोज सनसनी पैदा करनेवाली खबरें बटोर कर ले आते हैं। चाहे कुछ गप्पें हों, पर वर्णन रंगीन होता है और दिलचस्प !

तो केशव एक परिवार की परिधि से दूसरे की ओर बढ़ रहा है। दोनों के बीच एक चौड़ा रास्ता है। दोनों के बीच थोड़ी दूरी है। उस पानवाली को उसने कभी मुरझाया नहीं पाया है। दो बच्चे उसके हैं। अधेड़ है। पर नए फैशन के मुताबिक रहती है। माथे पर बड़े काँच की बिन्दी लगाती है। अपने बनाव और श्रृङ्गार में कहीं कोई कमी नहीं रखती है। हाथ तो चूड़ियों से भरे रहते हैं। वह जीवन और परिवार के प्रति उदासीन नहीं रहती है। छोटे बच्चे को निर्लज्जता से दूध पिलाती है।

लेकिन वास्तव में मुन्नी तो अपनी नई दुनिया में जा रही थी। यह रास्ता उसे बहुत प्रिय है। उसकी आँखों के आगे कई काँच के बड़े बड़े बर्तनों का ढाँचा है, जिसमें रङ्गीन मिठाइयाँ रहती हैं। वह अपनी भाषा में अपने ही भाव व्यक्त करती हुई, उसकी उंगली मजबूती से पकड़े हुए बढ़ रही थी।

केशव और मुन्नी चले गए। अब एकाएक निर्मला चैतन्य हुई। उफ! उसे क्या हो गया है? आज केशव क्यों आया। सुबह से ही मन ठीक नहीं। सुबह दूध की बोतल मुन्नी ने तोड़ डाली। पति से दूसरी लाने को कहा था तो वे झुँझला उठे। वह भी बोली थी कि क्या बच्चे उसीके हैं? घर में एक पैसा नहीं है। कब तक और कैसे वह गृहस्थी को चलावे। अब यह सब उसकी शक्ति से बाहर है। जिस नौकरी से ठीक तरह पेट नहीं भरता, उसे लेकर क्या वे चाटें? पति आफिस से उदास मुंह लौटते हैं और उस पर अहसान लादते हैं कि यदि यह गृहस्थी नहीं होती तो वे मस्ती से दिन काटते। वे अपने निठल्ले साथियों का हाल सुनाते, जो कि परिवार की झंझटों से बरी हैं। एक दिन रात को वे उनकी पार्टी से 'रस' पी कर आए थे। निर्मला उस रात भर रोती रही। बच्चों की कसमें दे कर कहा था कि यह न किया करो। शहर में कई सिनेमा आए और चले गए। चार साल में उसने एक भी नहीं देखा है। पिछले दिनों नुमायश में वह एक साड़ी खरीदना चाहती थी, पर पति की स्वीकृति नहीं मिली। बच्चों के कपड़ों तथा उनकी छोटी-मोटी चीजें मोल लेने में ही चालीस रुपया खर्च हो गया था।

उसने एक साड़ी पसन्द की थी। नीली धरती पर चौड़ा पीला बार्डर बहुत खिल रहा था। कानों के टॉप्स भी थे वहाँ! वह दूकानों को ताक कर ही लौट आई थी। मन की बात मन में ही घुट कर रह गई। वहाँ तो एक तृष्णा बढ़ी थी, जो अबुझी ही मिट गई। बच्चों के 'फ्राक' सिला कर ही तसल्ली कर ली थी कि उसके भाग्य में अच्छा पहनना नहीं लिखा हुआ है।

अब उसका मन सबल हो उठा। उसने कमरे में बड़े आईने में अपने को देखा; वह बूढ़ी-सी लगने लगी थी। उसे देख कर कोई नहीं कहेगा कि वह तेईस साल की होगी। वह तो पैंतिस-छत्तीस की लगती है। उसने अपना ब्लाउज देखा। उसका रंग फीका पड़ गया था। साधारण मैली साड़ी पहने हुए थी। सिर के बाल रूखे थे। उसकी आँखों में आँसू छलछला उठे। यह केशव क्या सोचता होगा? यही न कि निर्मला एक बाबू की पत्नी है। वह बाबू आफिस में दिन भर काम करके भी अपने परिवार का ठीक-सा लालन-पालन नहीं कर पाते हैं।

केशव इन बाबुओं की हंसी अक्सर उड़ाता है कि यह जाति बिलकुल निकम्मी है। पंगु है। ये समाज के बहुत निर्बल अंग हैं। फिर उनका परिवार तो एक भारी तूफान में फँस गया है। जहाँ से आसानी से छुटकारा नहीं मिल सकता है। उस बड़े आइने पर धूल पड़ी हुई थी। उसमें वह अपना भद्दा-कुरूप चेहरा देखती रह गई। बड़ी देर तक खड़ी रह कर अपनी प्रतिछवि को टकटकी लगाकर आँकती रही। अपने को खूब—खूब देखा! अब वह किसी भावना की असह्य चोट से तिलमिला कर तेजी से भीतर कमरे में चली गई? उसने अपना सन्दूक खोला। सुन्दर ब्लाउज निकाला, लाल बार्डर की जार्जेट की साड़ी निकाली। जल्दी-जल्दी गुसलखाने में पहुँची। वहाँ उसने कपड़े बदले। अब भीतर पहुँच कर बालों को काढ़ा। अपनी इस छवि को आइने में देखकर तसल्ली नहीं हुई। फिर वही भद्दा-भद्दा चेहरा था। वही-वही कुरूपता! वह उलझन में पड़ गई। सोचा कि पति अपराधी है। अन्यथा आज उसकी यह हालत नहीं होती। उसकी आँखें डबडबाईं। वह फूटफूट कर रोने लगी। रोती ही रही। जिस प्रकार नदी के भंवरों के बीच

फँसा हुआ व्यक्ति छुटकारे को सोचता है, उसी भाँति वह भी इस सबसे छुटकारा चाहती है कि जरा कहीं सांस ले ले। अन्यथा उसका दम घुट रहा है। वह तो मर रही है।

एक दिन कहा था केशव ने, 'शादी तो एक पहेली है निर्मला। गृहस्थी की एक नई दुनिया—दूसरी मंजिल!'

तब तो वह इस कठोर व्यंग को नहीं समझ पाई थी। बार-बार समझने की चेष्टा की थी। और कई रात उस बात पर सोच लेने का लोभ हुआ था।

केशव कहता रहा था, 'प्रत्येक पीढ़ी की अपनी एक कहानी होती है। अपना प्रेम और अपने ही झगड़े होते हैं। सब परिवर्त्तनशील है। पशु-पक्षी पेड़-पौधे आदि मूक और स्थिर रहते हैं। उनमें कोई अन्तर नहीं आता है।'

और याद आईं उसी केशव की कही बातें, 'दादी, नानी बनना ही तो बदा है तुमको। इससे अधिक समाज तुमसे कुछ नहीं चाहता है। तुम भी और मांग नहीं करोगी। तुम्हारी जाति शक्तिहीन हो गई है। उसमें बल नहीं रहा। रो-रो कर चरणों की दासी की मांग रखती हो। पति को देवता स्वीकार कर लिया है। आलू और टमाटर की खेती की भाँति बच्चे जनोगी, जब कि सारी दुनिया के विचार तथा धारणाएँ बदल रही हैं। तुम्हारी जाति स्थिर खड़ी है। नया मूल्यांकन नहीं चाहती हो। नए शिष्टाचार और मर्यादा के लिए उत्साहित नहीं हो। जैसे कि आलसी अजगर अपने स्थान से हिलता-डुलता नहीं है। वैसे ही तुम जहाँ पड़ी हो, वहीं रहोगी।'

निर्मला सिसकियाँ ले रही थी। सच ही तो वह नानी-दादी बनने जा रही है। इस घर में उसने अधिक कुछ नहीं पाया है। कितना ही शृङ्गार कर ले, लेकिन जो कुरूपता आ गई है वह आसानी से नहीं हटेगी। कभी बहुत पहले यह केशव कहता था, 'तुम सौन्दर्य की राशि हो निर्मला।'

जब एक दिन निर्मला परेशान हो उठी थी। माँ के ताने असह्य हो गए थे कि वह अभागिनी है, नहीं तो भला क्या दुनिया भर में लड़कों की कमी थोड़े ही है। उस दिन रात भर मेंह की झड़ी रही। सुबह भी बूंदा-बांदी

चालू थी। माँ का मिजाज ठीक नहीं था। पूछा था उसने कि वह श्यामा के घर हो आवे। माँ ने तो बहुत भली-बुरी बातें सुना दीं। वह अपमान इसी लिए हुआ था कि वह लड़की थी। उस समय निर्मला के मन में बात उठी थी कि वह मर जाती तो सारा बखेड़ा मिट जाता। वह दिन भर रोती रही। सन्ध्या को उसने दरवाजे पर केशव की आहट पाई। सोचा कि वह उससे सारी बातें कह देगी। वह उद्विग्न हो उठी थी। चुपके से उठ कर केशव के आगे खड़ी हुई। देखा था केशव ने कि उसका चेहरा धुला हुआ है। आँखें सूजी हुई लाल थीं। गद्गद् स्वर में बोली, 'मुझे मरने की दवा ला दे, केशव। जहर की एक पुड़िया ले आ। अब ज्यादा नहीं सहा जाता है।'

'क्या बात है नीमू?'

मैं स्वयं लड़का ढूँढ़ने जाऊँ। माँ की बातें सुनते-सुनते मैं थक गई हूँ।'

स्थिति समझ कर केशव बोला था, 'ओ, इस बात पर! अरी अभी तो तूने गुड़िया की शादी का न्योता तक कभी नहीं दिया, और सोच रही है अपने ससुराल की!'

केशव ने उसका श्रीहीन चेहरा देखा था। उसे आधुनिक विवाह और परिवार के स्वरूप, उनका ऐतिहासिक विकास और समाज के आर्थिक जीवन पर उनकी निर्ममता आदि बातों की जानकारी है। इनसे विश्वास होता है कि यह मध्यवर्गीय परिवारों का समूह जो गले-गले पानी में डूबा हुआ है, जो आज तक पुराने समाज की चिरकालीनता के प्रति अन्ध विश्वासों से भरा है, जहाँ पुरानी मान्यताएँ मिट रही हैं, और उनकी शक्ति नष्ट होती जाती है। वहीं से कल एक स्वस्थ-वर्ग उठेगा, जो शक्तिशाली होगा।

लेकिन निर्मला को सन्तोष नहीं था। माँ की बातें डंक की तरह चुभ गई थीं। वह केशव को बहुत दिनों से पहचानती है। उससे उसका खास रिश्ता भले ही न हो, बचपन से उससे अपनी कोई बात नहीं छिपाई है। आज भी पूरा ढाढ़स है। फिर केशव कठिन से कठिन बात सुलझाने की क्षमता रखता है। पक्की से पक्की गांठ खोल डालता है। वह बहुत बलवान है। यह

उससे जो कहेगी, वह मान लेगा। लेकिन उसका मुँह बन्द हो गया। वह बिलकुल चुप थी। कुछ क्या कहे, समझ में नहीं आया। उसने तो सारे वातावरण को मजाक का साधारण पुट दे डाला था। वह अवाक-सी मूक, अस्त-व्यस्त, निर्जीव खड़ी भर थी। उसके प्राण किसी ने छीन लिए थे। वह अपनी वैयक्तिक आत्महत्या तो कर चुकी है। उसके प्राणों की डोरी सत्यवान के प्राणों की तरह यमराज के हाथ में है। वह ठग कर ही केशव से उन प्राणों को वापिस ले सकती है, जो आसान काम नहीं है। वह बहुत चतुर है। क्या यह उसकी अग्नि-परीक्षा थी, जिससे सीता तक को छुटकारा नहीं मिला है।

तभी मुस्कराकर कर कह दिया केशव ने, 'अच्छा, अब शादी में ही धूमधाम रहेगी, यही कहने आया था चाची से। आखिर बुद्धू मियाँ विश्वनाथ मान गए। घर में न सास का झगड़ा है न ससुर का। सारे घर की रानी बन कर रहोगी। बाबूगिरी करता है और सौ रुपल्ली हर पहली तारीख को लाकर मुँह दिखलायी देगा। तू चुप क्यों है? चाची सुनेगी तो बताशे बांटेगी। भई, हम तो आज आठ लड्डू से कम खा कर कदापि नहीं टलेंगे।'

'लेकिन केशव।'

'क्यों, बात क्या है? आँख क्यों डबडबा आई हैं?'

'केशव! केशव!! मैं शादी नहीं करूँगी।'

'तो मुझे ढेर-सी जहर की पुड़ियाँ लानी पड़ेंगी। जल्दी ही लाइसेन्स लेकर दूकान खोल डालूँगा!'

'केशव! केशव!!'

'बाजबहादुर-रूपमती, लैला-मजनू और शीरीं-फरहाद की तरह कोई पाठ तो न पढ़ना होगा।'

'केशव! केशव!! मैं शादी नहीं करूँगी, नहीं करूँगी। तू पिता जी से कह दे। मैं शादी नहीं करूँगी।'

'वाह, बुद्धू मियाँ क्या ऐसे-वैसे हैं। जनाब कम्पटिशन से नौकरी पर आए हैं। स्कूल में एक नम्बर के घोंटू वीर थे। जब देखेगी उनका 'फेल्ट

हैट' तो भाग्य को सराहेगी ।'

'लेकिन केशव···'

केशव का चेहरा सफेद पड़ गया। वह निर्मला की अनुचित भावना थी। क्षण भर वह चुपचाप उसे देखता रह गया। आखिर कुछ सोच कर बोला, 'चाची के पास हो आऊँ। अगले महीने में लगन है। बीस-बाईस दिन ही तो बाकी हैं।' सारा इन्तजाम करना है। वह जल्दी-जल्दी चला गया था।

निर्मला स्तब्ध, लुटी-सी खड़ी रह गई थी। उसके प्राणों को केशव ने नहीं लौटाया था। उसकी मांग को भी सरलता से ठुकरा दिया। वह हार गई और वह जीत कर उसके प्राणों का दाँव लगा रहा है। क्या निर्मला ने उसे अपना कोई अधिकार दिया है ? वह क्यों नहीं माँ के आगे खड़ी होकर कह देती है कि केशव उन सब को छल रहा है। वही यह सारा प्रपंच रच रहा है। सब बात झूठ है। कम से कम पिता जी उसकी बात स्वीकार कर लेंगे। वे सदा उसका पक्ष लेते रहे हैं। लेकिन वह अपने कमरे में पहुँची। बिस्तर पर लेट गई। फफक्-फफक् कर बड़ी देर तक रोती रही। कारण जान कर भी मन-बुझाव नहीं कर सकी थी। रोना उचित सा लगा, अपने प्रति अविश्वास हो आया था।

तभी दरवाजे पर खटका हुआ। मुन्नी सयानी बनी-सी केशव से अपनी भाषा में बातें कर रही थी। वह मुन्नी को 'टाफी' दे कर बहकाता है। लेकिन एक दिन चुपके उसे भी बहका कर, खड़ा-का-खड़ा हँसता हुआ तमाशा देखता रह गया था। शादी भर उसका अपना चुटकी लेनेवाला व्यापार चालू था। जैसे कि उसके लिए वह एक साधारण सी घटना थी। उसे सीख दी थी। सयाना बन कर घर-वालों से राय-मशविरा लिया करता था। उसे विदा करते कोई हिचक नहीं हुई थी। चेहरे पर खास नाउम्मेदी नहीं छाई। निर्मला को उसकी शक्ति का परिचय था ही।

इससे पहिले कि वे भीतर पहुँचे, वह उठी और जल्दी से रसोई घर की ओर बढ़ गई। मुन्नी की आवाज बहुत तेज थी। वह केशव से हाथ छुड़ा कर भीतर आकर बोली, "अम्मी ताफी !"

निर्मला चुप रही तो मुन्नी ने कागज के थैले में से एक टाफी निकाल कर अम्मी को देनी चाही।

अम्मी ने नहीं ली, तो बाहर आकर केशव को दे दी। पूछा केशव ने "अम्मी ने नहीं खाई?"

मुन्नी बात नहीं समझ सकी।

निर्मला तो दरवाजे की देहली पर खड़ी हो कर बोली, "चाय बन गई है। बैठक में चलो।"

बोला केशव मुन्नी से, "चल, चाय मिलेगी और पेट पूजा करने के लिए नाश्ता।"

अब वह बैठक में बेन की टूटी कुर्सी पर बैठ गया। उसे सारे फर्निचर को देख कर बड़ी हँसी आई। तीन इजीचेयर हैं, दो बेत की। बीच में एक अजीब-सी मेज धरी हुई है। दरी जो बिछी है, उस पर बड़े-बड़े बेडौल-से सूराख हैं।

निर्मला चाय ले आई थी। दो चीनी मिट्टी के टूटे हैंडिल वाले प्याले हैं, अल्मूनियम की केटली, कटोरी पर चीनी और काँच के गिलास में दूध। उसने हलवा बनाया था और पकौड़ियाँ। सब मेज पर रख कर बोली, "प्याले सब टूट गए। आजकल तो बीस-पच्चीस में भी ठीक से 'टी-सेट' नहीं मिल रहे हैं।"

"तो गिलास में ले आती।"

"तुमको प्याले की चाय जो पसन्द है।"

"अच्छा इसी लिए कबाड़ी की दूकान लगाई है।" कह कर वह खिलखिलाया। हँसी बैठक के भीतर गूंज उठी।

निर्मला के हृदय पर इस हँसी की प्रतिध्वनि नहीं हुई। वह असमंजस में पड़ गई कि केशव क्यों हँस रहा है। आज वह हँसी बहुत फीकी लगी। उसमें जीवन नहीं था। निर्मला अप्रतिभ हुई, पर उसने भाव व्यक्त नहीं किया। चुपचाप प्याले में चाय उड़ेल डाली। पूरी चाय बना भी नहीं पाई थी कि भीतर बेबी रो उठा। वह चली गई और बेबी को गुसलखाने में ले जा कर

उसके कपड़े बदल डाले अब बाहर चली आई।

केशव चाय पी रहा था। निर्मला चुपचाप खड़ी थी। मुन्नी दोनो मुट्ठियों में पकौड़ियाँ भरे खा रही थी। उसने निर्मला की उस सजावट को देख कर कहा, "अबके तो तू बड़ी दुबली हो गई है।"

"नहीं तो!"

"शायद गृहस्थी की परेशानियाँ असह्य हो जाती होंगी। लेकिन यह 'रैन बसेरा' तो है नहीं। गृहस्थी की अपनी सीमाएँ होती हैं।"

"क्या कहा तुमने रैन बसेरा!"

"यही न कल्पना की दुनिया! पर यहाँ तो कल्पना से अधिक बुद्धि से काम लेना पड़ता है। तुम शायद अभी तक कल्पनालोक की रानियों वाला सपना देखा करती हो।"

"यह झूठ है केशव! मैं···।"

"तुम परिवार के लिए त्याग कर रही हो, यही कहना चाहती थी न! किसी बात का शौक तुझे नहीं है। लेकिन ये मध्यवर्गीय परिवार थोथी फैशन की नकल करना सीख गए हैं। शहर के बीच में यही एक वर्ग सबसे अस्वस्थ है। इस बड़े युद्ध का झोंका सह सकने की सामर्थ्य इसमें नहीं है। नई शक्तियाँ जाग्रत हो उठी हैं। यह वर्ग उनके साथ अधिक दिनों तक लड़ कर नहीं चल सकता है। पुराने सामाजिक बन्धन टूट रहे हैं। भावना और विचारों की पुरानी दुनिया लड़-खड़ा रही है। इन्सान के साथ इन्सान की नए आदर्शवादी सम्बन्धों की ओर प्रवृत्ति बढ़ने लगी है। पुराने तरीके नष्ट हो रहे हैं। प्रेम का आकर्षण भी अब नशा-सा नहीं रह गया है।"

केशव ने चाय का प्याला मुँह से लगाया और घूँट-घूँट करके चाय पीने लगा। फिर उसने प्याला रख दिया। चम्मच से हलवा उठा कर मुंह में डाला। धीरे-धीरे पकौड़ियाँ खाने लगा।

निर्मला तो मूक खड़ी थी। उसका मन उमड़-घुमड़ रहा था। वह जी भर कर रोना चाहती थी। बरवश आँसू रोके हुए थी। केशव की बात उसकी समझ में नहीं आई। तो···। नहीं वह खड़ी ही थी। केशव चाय पी रहा था।

उसका चेहरा गम्भीर था। वह सारी बात कह कर ही चुपचाप बैठा है। कभी पकौड़ी उठा कर खाने लगता, तो फिर चम्मच से हलवा उठा कर निगलता। चाय का पहला प्याला निपटा कर बेतकल्लुफ़ी से दूसरा ढाल रहा था। दो चम्मच चीनी डाल कर चम्मच चलाता रहा। फिर चम्मच वैसे ही रहने दी। सिर ऊपर उठा कर निर्मला की ओर देखा। बोला। "बैठ जा न! चाय नहीं पीयेगी।"

वह कुछ नहीं बोली। स्थिर खड़ी की खड़ी रही. तो वह दूसरे प्याले में चाय उड़ेलने लगा। ठीक तरह बना कर बोला, "ले चाय पी ले।"

निर्मला ने प्याला नहीं उठाया। कुछ देर उसी भाँति खड़ी रही और फिर मन्थरगति से भीतर चली गई। जब बड़ी देर तक लौट कर नहीं आई तो केशव उठा और भीतर झाँक कर देखा कि निर्मला रो रही थी। खूब रो रही थी। वह पास खड़ा होकर बोला, "निर्मला।"

निर्मला चुप थी।

"क्या बात है निर्मला?"

अब बोली निर्मला, "मैं तो ऊब गई इस गृहस्थी से केशव! कै दिन यह सब चलेगा। इससे मेरी आस्था हट गई है। वह विवाह करना मेरी विवशता थी। अन्यथा मुझे वहाँ अधिक सुख था।"

"विवाह की विवशता क्यों निर्मला? इस वर्ग की बेकारी, गरीबी आज चमक उठी है। अब इस वर्ग में भी चेतना का असाधारण प्रवाह आ गया है। क्या तुम इस छोटे इम्तहान में फेल हो जाओगी।"

"केशव!"

"हाँ निर्मला, आदि काल से आँसू बहा कर तुम सब अबला कहलाई हो। आज भी क्या ·····?"

निर्मला सिसक रही थी। अब उसने अपने आँचल से आँसू पोंछ डाले। अवाक केशव की ओर देखती रह गई।

फिर कहा केशव ने, "क्या तुम्हारा कर्त्तव्य इस परिवार को स्वस्थ बनाना नहीं है? इन बच्चों को आनेवाले जमाने के लिए तैयार करना होगा।

इतनी बड़ी हो कर आँसू कब तक बहाती रहोगी। यह तो हँसी की बात है। तू चुप क्यों हो गई। दुख की कल्पना को बढ़ा देना भी उचित नहीं है।"

"लेकिन केशव......?" निर्मला अधिक और न कह कर चुप रह गई।

सोचा केशव ने कि वह उसका तर्क सुनेगा। उसके अपने पक्ष की बात पर पूरा-पूरा विचार किया जाना चाहिए। वह कुछ देर तक इसी आश्वासन पर चुप रहा। अन्त में बोला, "तुम शायद 'रैन बसेरा' वाला जीवन ही सही जीवन मानती होगी। गृहस्थी की सम्पूर्ण जिम्मेवारियाँ, यहाँ तक कि बच्चों का पालन-पोषण का भार भी नौकरों पर हो। रेडियो हो, ग्रामोफोन के बढ़िया रेकार्ड हों। बस तुम 'बन की चिड़िया' बनी-बनी रहो।"

निर्मला के ओंठ एकाएक खुले। मन में विद्रोह की तीव्र लहर आई। बोली वह, "इसी तरह बहका कर तो तुम हमारे मालिक बन बैठे हो। हमारा दैनिक जीवन लाखों महत्त्वहीन व्यर्थ की बातों में कट जाता है। आप लोग आज भी सोचते हैं कि सात भाँवरों में एक 'दासी' ले आए हैं।"

फिर उसकी आँखें डबडबा आईं। आगे अधिक नहीं बोल सकी। तब उसने समझाया, "नीमू, यह मालिक वाली भावना पिछले युग के साथ मिट गई है। क्या तुम यह स्वयं नहीं देख रही हो। ये विचार तो पुराने पड़ रहे हैं। इस आनेवाले नए युग में तुम दासी नहीं रह जाओगी।"

स्वयं केशव कुछ अधिक कहना नहीं चाहता था। अब आखिर उठ कर वह बाहर चला गया।

दूर पुलीस लाइन से घंटे ने पाँच बजाए। वह उठ बैठा। कमरे के बाहर पहुँच कर वहीं से पूछा, "बुद्धू मियाँ कै बजे लौट आते हैं?"

"छः।"

"इस समय तो मुझे देरी हो रही है। कह देना कि कल शाम को आऊँगा। तू अच्छे पकवान बना कर रखना। पेट पूजा यहीं करूँगा।"

इससे पहिले कि निर्मला कुछ कहे, उसने अपनी साइकिल निकाली और चला गया।

———

एक चुटकी

सिनेमा हॉल से बाहर निकल कर विद्या अपनी कार पर बैठी ही थी कि देखा, उदय सामने चला जा रहा है, वह उलझन में पुकार बैठी, "उदय !"

अपरिचित शहर, जहाँ कि आज वह अपने को बिलकुल अनजान पा रहा था। उदय इस अपरिचित स्वर को सुनकर रुक गया। क्षण-भर खड़ा रहा। उस भारी भीड़ में अनुमान न लगा सका कि वह पुकारने वाला कौन है। तभी उसकी आँखें कार के पास खड़ी हुई युवती पर पड़ीं। वह उसे देख रही थी। मन में हिचक उठी। समीप पहुँच कर पहचाना कि वह विद्या थी। बोला फिर "आप !"

"यहाँ कब से हो ?"

"अभी एक्सप्रेस से आया हूँ।"

और मुसकरा कर अपनी बात कही विद्या ने, "मैं तो यहाँ तेरह महीने से हूँ। मिस्टर नवल......।"

"मिस्टर नवल !"

तो बात को फैलाया विद्या ने, "देखो हजरतगंज के चौराहे से सीधी सड़क गई है न मिल की ओर। वहीं हमारा बंगला है। अभी तो कुछ दिन यहीं रहोगे। हमारे यहाँ कब आओगे ?"

उदय सोच रहा था कि क्या उत्तर दे। वह विद्या के पास जाकर क्या कहेगा ? मिस्टर नवल के प्रति उसे कोई लोभ नहीं है कि उनसे व्यर्थ ही जान-पहचान कर ले। उसे इन सबसे कोई काम भी नहीं है। वह अपने में भीतर चुपचाप यही सब गुनगुना रहा था कि पूछा ही विद्या ने, "कहाँ ठहरे हो ?"

ठिकाना ! उसने असमंजस में विद्या की ओर देखा। उसे अभी तक ख्याल नहीं था कि उसका कोई ठिकाना भी है। वह तो अठारह महीने के बाद

इस नई दुनियाँ के बीच आया है। सुबह आठ बजे उसे जेल के ऑफिस से सूचना मिली थी कि वह छोड़ दिया गया है। वह बड़ी देर तक बाराबंकी स्टेशन पर 'दून एक्सप्रेस' की प्रतीक्षा करता रहा। गाड़ी दो घंटे लेट थी। जब वह लखनऊ चारबाग में उतरा तो जल्दी-जल्दी एक पूर्वपरिचित साइकिल वाले की दूकान पर पहुँचा। चादर में बँधा अपना सामान उसे सौंप दिया। नाई की दूकान पर जाकर शेव कराया। वहीं से सिनेमा हॉल की ओर रवाना हो गया था। अब बात उठी कि सच ही उसे टिकने के लिए कहीं ठिकाना चाहिए।

गूँगे उदय से सावधानी से कहा विद्या ने, "तो सुबह चाय पर चले आना। मैं इन्तजार करूँगी। यहीं आठ बजे हम लोग चाय पीते हैं।"

लेकिन उदय तो खाँसने लगा। विद्या चौंकी, बोली, "तुम्हारी सेहत ठीक नहीं लगती है।"

"मेरी सेहत! हाँ सुना कि वह खराब है। जेल का डाक्टर यही कहता था। आज सुबह उसने मुझे विदा करते हुए समझाया था कि टी० बी० का पूरा-पूरा शक है; सीख दी थी कि यदि जीवन के प्रति मोह है, तो ठीक तरह से दवा-दारू करनी होगी। मुझे उसकी बातों से बड़ी हँसी आई। जीवन का मोह तो हर एक को होता है। पर अपनी परवा, यह कठिन काम है।"

विद्या ने एक बार सारी परिस्थिति पर विचार किया। कुछ सोच कर बोली, "मालूम होता है, सीधे सिनेमा चले आए हो। संकोच न हो तो हमारे यहाँ चले आना। यह इस तरह......।"

"तुम्हारे यहाँ!"

"क्यों हर्ज क्या है?"

जब वह कुछ नहीं बोला, तो कहा विद्या ने, "देखो जरूर आना। मैं उनसे कहूँगी। और रात टिकने के लिए तो कोई ठिकाना ढूँढ़ना ही होगा।"

सोचकर कि वह रात भर कहाँ भटकता रहेगा, उत्तर दिया उदय ने, 'आऊँगा विद्या, जरूर आऊँगा। अब सिनेमा देख आऊँ। नहीं तो इसी समय

साथ चला चलता ।"

विद्या चली गई । उदय टिकट लेकर सावधानी से भीतर बैठ गया । फिल्म शुरू हो गया था । एक युद्ध-चित्र—मास्को के समीप जर्मनों की हार । सारा हॉल अमरीकन और ब्रिटिश फौजियों से भरा हुआ था । उसका हृदय मास्को के नागरिकों की देशभक्ति देखकर भर आया । और आज वह जिस देश में है………। रेलगाड़ी में उसने देखा था कि सारे वातावरण पर युद्ध की गहरी छाप है । सुबह के समाचारपत्रों में प्रमुख खबरें थीं—इम्फाल घेरे में……चेकास्लोवाक-रुमानिया सीमा पर लाल सेना पहुँच गई………।

फिल्म में वही नात्सियों के अत्याचार ! साहित्य, कला तथा संस्कृति का विनाश………। हिटलर का अपनी सैनिक शक्ति के बल पर समस्त संसार को गुलाम बनाने का स्वप्न देखना । जर्मनी स्वामी होगा और दुनिया के समस्त राष्ट्र उसके दास………

उसने एकाएक अपने मन में भारत के नक्शे की पूर्वी सरहद पर दृष्टि फेरी । एक तारीख चमक उठी । पाँच दिसम्बर ४३, एतवार का दिन—— जब कि कलकत्ते पर बम गिर रहे थे……विमान-भेदी तोपों की गड़गड़ाहट ……हवाई जहाजों की भनभनाहट……मजदूरों की बस्ती के टिन के घर आज सब ढेर हो गए थे……मजदूर-परिवार सूअर की तरह अपने दरबों को छोड़कर चले जाने की तैयारी में थे……इनसान के बेटों के शरीर के टुकड़े छिन्न-भिन्न, तितर-बितर पड़े हुए……लोग ढूहों के बीच अपना सामान ढूँढ़ रहे थे……नारी, पुरुष, बच्चों की बोटियाँ—बोटियाँ उड़ी लाशें………

जापानी फासिस्त ! वह अपने मनही मन गुनगुनाया ।

नौ अगस्त……। वह दिवस बहुत पीछे चुपचाप एक स्तंभ की भाँति खड़ा था । वह उस क्षणिक प्रवाह से बाहर नहीं रह सका था । वह देशभक्ति की उस लहर में बह गया था । आज वह समझ गया है कि उस क्रान्ति की कोई सही बुनियाद नहीं थी । गाँधी और नेहरू, मलाया, ब्रह्मा में साम्राज्य-वाद की हार देखकर जनता के हाथों भारत की रक्षा करना चाहते थे । वह उस प्रवाह में बह गया बह गया था ।

अक्तूबर '४२—सुबह समाचारपत्रों में मोटी मोटी लाइनों में छपा हुआ था—आसाम पर जापानी हमला......लाल फौज ने पश्चिमी मोरचे से नात्सियों को खदेड़ दिया...... । बुद्धिवादी नागरिकों की आँखें खुल गई थीं। शहर ढाई महीने से एक करवट लिए निर्जीव पड़ा था। विद्यार्थी-आन्दोलन की गति रुक गई थी। साम्राज्यवाद ने जनता की रीढ़ की हड्डी पर प्रहार किया था। शहर सूना-सूना लगता था। यदा-कदा काली तारकोल से पुती चौड़ी-चौड़ी सड़कों पर लारियाँ और ट्रकों का शोर होता। उनमें बन्दूक लिए सिपाही खड़े दीख पड़ते थे। करफ्यू ग्रार्डर और सैनिक शक्ति ने आतंक छा दिया था।

राष्ट्रीय आन्दोलन की वह तसवीर : टूटे तार के खम्भे, उखड़ी पटरियाँ, चूर चूर पड़े सवारी गाड़ी के डिब्बे, जली लारियाँ, स्टेशनों से बाहर लूटकर फेंका हुआ बिखरा सामान ! इन्कलाब की वह कितनी झूठी लहर थी। शायद जापानी फासिस्त आ जाँय......शहरों से दूर भारत के हृदय में बसे ग्रामवासी भावुकता के प्रवाह में तोड़-फोड़ करने की ओर अग्रसर हो गए।

लेकिन उदय डिफेन्स आफ इंडिया की १२९वीं धारा के अन्तर्गत गिरफ्तार हो गया था। वे तूफानी दिन ! ज्वाला की लपटों में झुलसती मातृभूमि !! उसके अवसरवादी साथी आज न जाने कहाँ होंगे। आज वह स्वयं अपने को इतना बलवान नहीं पाता है। वह बहुत निर्बल है। उस क्रान्ति ने उसे अन्धकार में धकेल दिया। जहाँ कि उसे कोई रास्ता नहीं मिला।

वह उदय सामने परदे पर चलती-फिरती तसवीरें देखने लगा। एक युद्ध-चित्र का प्रदर्शन हो रहा था। वह विद्या आज उस तसवीर को देखने आई थी। वह उसे बहुत अधिक नहीं पहचानता है। वह तो उसके साथ विश्वविद्यालय में पढ़ती थी। एक रात पुलीस ने उदय को पकड़ने की चेष्टा की, तभी उसने विद्या की शरण ली थी। विद्या पर उस वातावरण का भारी असर पड़ा था। उसकी भावुकता देशप्रेम की ओर पिघल गई थी। जानता था उदय कि वह सब क्षणिक है। भविष्य में विद्या से उसे कोई खास

उम्मेद नहीं थी। वह रात भर उसे अपने 'प्लान' सुनाता रहा। वह सावधानी से सुनती रही। वह सुना रहा था कि किस तरह वे गैरकानूनी परचे छापते हैं। और उनका एक संगठित दल है। डाइनामाइट, पलीते और गन पाउडर। जापान! हाँ जापान!! क्या तुम शोगन का रेडियो नहीं सुनती हो। हमें तो इस क्रान्ति को कुछ ही दिन और चलाना है। फिर एक संगठित सैनिक शक्ति हमारा साथ देगी। देश पर हमारी हुकूमत होगी।

सुनती रही विद्या। उसके सम्मुख जो देशभक्ति की मिसाल थी वह बहुत साफ-सुथरी और उज्ज्वल थी। विद्यार्थियों के जुलूस का अदालत पर झंडा लगाने की चेष्टा, पुलीस की गोलियाँ और तीन विद्यार्थियों की कुर्बानियाँ!

बड़ी रात तक उसने विद्या को सारी बातें सुनाई थीं। कहा था, 'विद्या, यह क्रान्ति की जो लहर बह रही है इसमें लाखों नौजवान कुर्बान हो जायँगे। हजारों परिवार नष्ट होंगे...।'

विद्या ने उस क्रान्ति को समझने की चेष्टा की और मिली थी वही गोलियों की बौछार! तीन नवयुवकों की मौत। मिलिटरी शासन का एक भयानक रूप......!

आधी रात, घर के लोग सो गए थे। विद्या चोरी से उदय को अपने कमरे में छुपाए हुए थी। बार-बार उसका हृदय रोमांचित हो उठता था। उदय ने स्वयं उस युवती को देखा था। उसके साहस पर विश्वास किया था। बार-बार टकटकी लगाकर उसे निहारा था। शहर पर करफ्यू था। रात मौत की भाँति शान्त थी। विद्या तो चुपचाप दाँतों से नाखून कुतर रही थी। वह बात करता-करता ऊँघने लगा। अब बोली थी विद्या, 'सो जाओ।'

'सो जाऊँ! नहीं, अब मुझे जाना है।'

'आप चले जावेंगे?'

'क्यों भय की क्या बात है।'

'तुम क्या कह रहे हो? इस रात को जब कि चौराहे पर पलटनवाले पहरा दे रहे हैं। सिपाहियों से भरी लारियाँ सड़कों पर पैट्रोल कर रही

हैं........।'

'तो क्या हुआ, यह रोज का धन्धा है।'

'नहीं मत जाओ तुम।'

उदय चुप रह गया तो कहा विद्या ने, 'आज मैंने शोगान का रेडियो सुना है। अब हमारी मुसीबत के दिन बीत गए हैं।'

लेकिन थका उदय ऊँघ रहा था। सोचा था विद्या ने कि वह इस अपरिचित को कब पहचानती है। जीवन में कभी-कभी कैसी घटनाएँ घट जाती हैं। उदय को तो नींद आ गई थी। तो बोली विद्या, 'उदय, सो जाओ तुम। कुछ देर सो जाओ। तुम्हारी आँखें लाल हैं। चेहरा सुस्त पड़ गया है। तुम सो जाओ।'

विद्या ने बच्चे की भाँति उदय को अपने बिस्तर पर सुलाकर ठीक तरह कम्बल उढ़ा दिया। लेकिन विद्या को नींद नहीं आई वह तो चुपचाप कुरसी पर बैठकर किताब पढ़ती रही। फिर उसने किताब रख दी, खड़ी हुई। सुराही से पानी निकाल कर पिया। कमरे में धीरे-धीरे टहलती रही। उदय ने कंबल उढ़ाने की आहट पाई। फिर कम्बल उढ़ा दिया गया। वह युवती हट गई। एकाएक बत्ती बुझी। कमरे में अँधेरा छा गया। कुछ देर के बाद उसने हल्की-हल्की सिसकियाँ सुनी। शायद विद्या रो रही थी। वह सच ही रो रही थी। क्यों रो रही थी, जानकर भी वह चुप रहा। फिर उठा, बिजुली का स्विच दबाया, चारों ओर कमरे में नजर डाली। विद्या फर्श पर रेशमी गद्दा बिछाकर उस पर सो गई थी। सामने दीवाल पर विद्या का एक सुन्दर 'बस्ट' टँगा हुआ था। वह कोने में खड़ी आलमारी के पास पहुँचा। उसे खोला। रंग-बिरंगी साड़ियाँ, ब्लाउज सँवारे धरे हुए थे। कुछ शृंगार का सामान भी था। मेज पर पुस्तकों का ढेर लगा था और पास घूमनेवाली आलमारी किताबों से भरी हुई थी। मेज पर धरी बड़ी टाइमपीस टिक-टिक-टिक कर रही थी। उसमें एक बज गया था। वह कुछ देर तक उसके पास गद्दे पर बैठा रहा। उसके लम्बे-लम्बे काले-काले बालों को सूँघा, भीनी-भीनी महक चल रही थी। अब वह खड़ा हुआ। सावधानी से चटखनी खोल रहा

था कि हल्का खटका हुआ, विद्या की नींद उचट गई। वह आँखें मलकर उठी और बोली, 'यह क्या उदय! यह तो सरासर धोका होगा। तुम इस तरह क्यों जा रहे हो। इस रात को जब कि चारों ओर……… '

उदय ने क्षण-भर विद्या को देखा। आँखों में नींद थी। चेहरे पर थकान। उसका वह रूप अजनबी लगा। साधारण होने पर भी उसमें सरसता थी। उसकी वाणी में एक चाह मिली। यह ऐसी स्थिति उदय के जीवन में पहिले कभी नहीं आई थी। वह असमंजस में बाहर बढ़ गया था। इससे पहिले कि विद्या दरवाजे पर पहुँच कर उससे रुक जाने का अनुरोध करे, उदय उस घने अँधियारे में ओझल हो गया। उसने पीछे मुड़कर देखा था कि विद्या बड़ी देर तक दरवाजे पर खड़ी-खड़ी उसका इन्तजार करती रही। फिर दरवाजा बन्द कर लिया। कमरे के भीतर अँधियारा छा गया था।

उदय सोचता रहा कि विद्या ने क्या सोचा होगा? क्या यह विद्या की हार थी कि वह उसे रोककर नहीं रख सकी। नारी तो शक्तिशालिनी कही जाती है। विद्या ने वे आँसू क्यों बहाए थे? यदि वह चाहता तो क्या उसे जीत नहीं सकता था। इस विद्या के रूप की चर्चा कई बार उसके कानों में पड़ी थी। युवकों के बीच वह छोटी-छोटी कहानियाँ बनकर भी सुनाई पड़ती थी। यह कब जाना था कि उसी विद्या के समीप इस प्रकार क्षणिक बसेरा लेना होगा।

ये परदे पर चलती-फिरती तसवीरें! नात्सियों द्वारा बरबाद किए गए शहर, फांसी पर लटकाए हुए सैकड़ों नागरिक!...बच्चों की लाशें!! अपमानित युवतियों के सड़े-गले शरीर। मास्को के समीप जर्मनों की हार।

वह जेल से छूटकर एक नई दुनिया में आ गया है। गाड़ी में मुसाफिरों के मुँह से उसने युद्ध की चर्चा सुनी थी। बंगाल की भुखमरी की जानकारी प्राप्त की। सचमुच दुनिया बड़ी तेजी से बदल गई थी। लोगों में पस्त-हिम्मती, नाउम्मेदी दीख पड़ी। वह चुपचाप एक दर्शक की भाँति सब कुछ देखता रह गया। और यह विद्या! उस रात उसने विद्या से विदा

तक नहीं ली थी। चुपचाप सड़क पार कर रहा था कि पुलीसवालों ने उसे गिरफ्तार कर लिया था। एक ने तो मजाक में खीसे निकाल कर कहा था—अपनी प्रेमिका के पास से आ रहे हो दोस्त!

विद्या और उसकी प्रेमिका! यह भूठ सा मजाक। इस पर दूसरा इन्सपेक्टर खिलखिलाकर हँस पड़ा था। चुपचाप उदय ने यह बात पी ली थी। रात भर थाने में रखकर अगले दिन उसे बाराबंकी डिस्ट्रिक्ट जेल में भेज दिया गया था।

इन्टरवल हुआ। हॉल में रोशनी जगमगाई। फौजी बाहर निकल रहे थे। पीछे सीटों पर कई अफसर अपने परिवार वालों के साथ बैठे हुए थे। वह उठ बैठा और बाहर चला आया। उसे भारी प्यास लगी हुई थी। वह लेमनेड पीने लगा। पीकर वह बाहर लगे हुए बड़े-बड़े पोस्टरों को देखता रहा। एक ओर जलसेना में भरती के लिये युवकों की माँग का पोस्टर टँगा हुआ था। दूसरा बड़ा विज्ञापन आर० ए० एफ० का था। कई तरह के हवाई जहाज थे।

तीसरी घंटी बजी। वह भीतर नहीं गया। सफर से बहुत थक गया था। सारी फिल्म नीरस लगी। युद्ध ने तो जीवन को बिलकुल बदल डाला है। पग-पग- पर मुसीबतें हैं। चीजों के दाम बहुत बढ़ गए हैं। वह इस परिवर्तन का अनुभव आज तक नहीं कर सका था। आज दिन भर में उसने ये बातें समझी थीं। जमाना बहुत आगे बढ़ गया है। वह इस परिवर्तन का अनुमान कब कर पाता था। वह कुछ देर तक हॉल के बाहर टहलता रहा। सामने बड़े-बड़े अमेरिकन ट्रक खड़े थे। पास ही 'बार' से गोरे सिपाहियों की हँसी के फ़व्वारे छूट रहे थे। चारों ओर सैनिक ही सैनिक दीख पड़े। सुबह के समाचार-पत्रों में उसने पढ़ा था कि जापानी भारत की भूमि पर लड़ रहे हैं। फिर वह चुपचाप बड़े-बड़े पोस्टरों को देखने लगा, जिसमें आनेवाली फिल्मों का जिक्र था।

अब उदय भीतर नहीं गया। बाहर की ओर बढ़ गया। हजरतगंज वाली सड़क पकड़ कर चौराहा पार किया और अब मिल वाली सड़क पर चल

रहा था। उसने सावधानी से बँगले के बाहर टँगी तख्तियाँ पढ़नी आरम्भ कीं। वह एक बँगले के फाटक पर रुक पड़ा। वही मिस्टर नवल का बँगला है, जहाँ विद्या रहती है। विद्या ने उसे आमन्त्रित किया है। वह उसे साधारण-सा पहचानता है। फिर नवल ! वह भीतर पहुँच गया। सामने सुन्दर बँगला था और चारों ओर बाग। वह बँगले के बाहर खड़ा हुआ। चारों ओर सन्नाटा था! वह बरामदे की ओर बढ़ा। एक छोटी मेज पर टेलीफोन रखा हुआ था। भारी हिचक के साथ उसने घंटी का बटन दबाया। भीतर घंटी बजने की आवाज कान में पड़ी। अब निश्चित होकर उसने अपने ऊपर दृष्टि डाली। मैली पायजामानुमा पतलून, खादी की कमीज और एक भद्दा बेडौल पेशावरी......। वह नौकर के आने पर तपाक से बोला, "विद्याजी घर पर हैं?"

"मेम साहिब!"

"शायद वही!"

"आप कहाँ से आए हैं?"

"तुम जाकर कह दो कि उदय आया है।"

नौकर एक बार उसे घूर कर भीतर चला गया। कुछ देर के बाद गोल कमरे का दरवाजा खोला और बोला, "आप बैठें। वे आ रही हैं।"

वह सावधानी से भीतर बैठ गया। असाधारण सजावट थी। फर्श पर मोटी पर्शियन कार्पेट, सोफा......वह अपने में ही कुछ सोचता रह गया। यही कि इस जगह युद्ध के झोंकों का खास असर नहीं है। विद्या यहीं रहती है और इस घर की मेम साहिब है। मिस्टर नवल शायद स्वामी......। इन चन्द महीनों में ही उसने परिवार की बागडोर सँभाल ली है। उस रातवाली विद्या और आज वह जिसके घर पर आया है। दोनों एक होने पर भी भिन्न ही हैं। वह न तो उस पिछली विद्या को पहचानता था और आज वाली से तो बिलकुल अपरिचित है। दीवाल पर (Mona Lisa) का एक बड़ा चित्र टँगा हुआ था। उस युवती के बैकग्राउंड में प्राकृतिक पहाड़ियाँ थीं। (Leonard da vinci) ने इसे संभवतः १५ वीं शताब्दी में बनाया। वह इतिहास,

विज्ञान का विद्वान और कला का पारखी था। कई साल तक वह इस तसवीर के आस पास मँडराता रहा। आज भी यह विवाद का विषय है कि क्या यह युवती चित्र में हँस रही है ? क्या जीवन इस प्रकार चित्रों में सीमित किया जा सकता है ? वह इस समस्या को नहीं सुलझा सका। यह जीवन की ओर झाँकने का संभव सरल उपाय तो है, जिससे मन में स्वस्थता आती है। लेकिन यह कला तो अभिव्यंजनावाद, भविष्यवाद, घन वाद आदि-आदि प्रणालियों की ओर बँट गई है। जिनमें कि उसे आनन्द नहीं मिलता है। इसे कितने लोग समझ और प्यार कर सकते हैं। इसका आधार और भावनाएँ तो एक छोटे वर्ग के विचार, इच्छा और आकाक्षाएँ ही हैं। कला को इतना संकुचित नहीं होना चाहिये। वह व्यक्तिगत सम्पत्ति के रूप में एक व्यक्ति तथा वर्ग के अधीन नहीं रहनी चाहिए। उसकी व्यापकता, उसकी सार्वजनिकता पर निर्भर रहना ठीक होगा। उधर आतशखाने पर बेडौल शंख तथा सीपियाँ धरी हुई थीं। नारी की एक काली-काली नग्न मूर्ति भी वहीं खड़ी थी। उसकी दोनों हथलियों पर ग्लोब था।

विद्या आकर बोली, "जल्दी चले आए।"

"हाँ, कुछ तबीयत ठीक नहीं है।"

"तबीयत ?" विद्या ने उदय को देखा : पीला पड़ा चेहरा। आँखों के नीचे काली-काली झाइयाँ। सूखे बढ़े से बाल......फटी कमीज। यह इन चंद महीनों में ही बिलकुल बदल गया है। कभी तो शक होता है कि क्या वह उदय ही है ?

तो उदय उस तरह चला गया था। वह उस दिन, रात भर सो नहीं सकी थी। ट्रंकों की आवाज, वही मिलिट्रीवालों की गश्त......। उसने सोचा था कि यदि वह चाहती तो उसे रोक लेती। आधी रात को उस तरह भाग जाने नहीं देती। वह उसका परिचय भी नहीं पूछ सकी थी। समय नहीं मिला। दोनों तो गिनती के कुछ मिनट साथ रहे। सोचा था विद्या ने कि वह बड़ी सुन्दर है। क्या उदय को उसके रूप के प्रति आकर्षण नहीं हुआ होगा। उसने तो कातर आँखों से रुक जाने का अनुरोध किया था, पर वह रुका

नहीं, वह उसे पकड़ कर अपने हृदय के घोंसले में जगह नहीं दे सकी। नारी का बलवान अस्त्र अचूक चला गया।

उदय सोफा पर लधरा हुआ उसे देख रहा था। सोच रहा था कि आज विद्या घर की स्वामिनी है, वह उसके परिवार में आया है। आज तो वह उसे चोरी से कमरे में छुपाने के लिए बाध्य नहीं है। वह मेहमान की हैसियत से आया है। विद्या ने उसके लिए किसी से आज्ञा नहीं ली है। वह स्वयं ही अपने परिवार का संचालन करती है।

वातावरण की निस्तब्धता तथा उलझन हटाई विद्या ने, "वे क्लब गए हैं। अभी लौट कर आ जायँगे। हाँ, मैंने शादी कर ली। कोई और उपाय नहीं था। उनकी अवस्था कुछ बड़ी है। मैं दूसरी पत्नी हूँ।"

"दूसरी पत्नी!"

"पहली बहुत फूहड़ और देहाती है। आपस में नहीं पटी, फिर उसके बच्चा नहीं हुआ। इस परिवार की रानी बनकर आई हूँ।"

"तू रानी बनकर आई है विद्या!"

"सहेलियों ने मजाक बनाया था। घरवाले इस रिश्ते से खुश नहीं थे। प्रोफेसरों की धारणा थी कि मैं रिसर्च करके शिक्षा की ओर अपना भविष्य समर्पित कर दूँगी; लेकिन मेरे मन में बाल हठ फैल गया। मैंने अपने इस कर्तव्य पर बहुत विचार किया—अर्थ कुछ नहीं निकला। मिस्टर नवल की अवस्था बयालिस-तेतालिस की होगी। जबकि मेरी बाईस। इस भाँति हमारी अवस्था में बीस-इक्कीस साल का अन्तर है। वे अपनी दलीलों में जिन बातों की चर्चा करते हैं, वे विचार मेरी दृष्टि में बहुत पुराने हो गये हैं। फिर हमारा आपस में कोई झगड़ा नहीं होता। अपने इतने वर्षों के अन्तर का समझौता हम दोनों आसानी से कर लेते हैं। तुमको आश्चर्य क्यों हो रहा है!"

उदय ने कोई उत्तर नहीं दिया। यह तो अपनी-अपनी रुचि की बात है। वह चुपचाप आँखें मूँदे लेटा हुआ था, तो बोली विद्या, "नहाओगे क्या?"

"हाँ, यदि हो सके तो गुनगुना पानी करवा लो।"

विद्या उठकर भीतर चली गई। नौकर को सब बात समझा कर लौट आई। पास खड़ी होकर बोली, "पन्द्रह मिनट में सब ठीक हो जाता है। मैं तुम्हारे लिये कपड़े ले आऊँ ?"

"कपड़े ?"

"ढूँढ़-ढाँढ़ कर शायद कोई पाजामा मिल जाय। कमीज आवेगी नहीं, बनिआयन मिलेगी। ऊनी चादर ओढ़ लेना। ठीक, तो खाना क्या खाओगे ?"

"किसी चीज का परहेज नहीं है।"

"लेकिन स्वास्थ्य के लिए परहेज चाहिए। लापरवा रहने से लाभ नहीं होता।"

इस पर भी वह खाने के सम्बन्ध में कोई आदेश नहीं दे सका। सोचा कि विद्या उससे अधिक समझदार है। चुपचाप आँखें मूँदकर लेटा ही रहा। बड़ी देर तक उसी अवस्था में पड़ा रह गया। विद्या के बाहर जाने की आहट कानों में पड़ी। वह रसोईघर में महराज को कुछ समझा रही थी। वह तो सुबह पढ़े समाचारों पर विचार कर रहा था—इम्फाल घेरे में। क्या यह विद्या आज भी शोगान रेडियो चाव से सुनती होगी। उसने अभी तक राजनीति पर कोई चर्चा नहीं उठाई थी। इम्फाल के समीप जापानी सैनिक हैं। जापानी लुटेरे......एशिया के रक्षक होने का दावा रखते हैं......उनकी काली करतूतें......बहुत साधारण अपराध के लिए हारबिन नगर में तीन चीनियों को खुले आम फाँसी पर लटका दिया......अब वे भारत के पूर्वी दरवाजे की चटखनी खोलकर भीतर प्रवेश करना चाहते हैं।

"साहब!" नौकरानी ने आकर कहा।

उदय ने आँखें मल लीं। नौकरानी बोली, "गुसलखाने में पानी रख दिया है।"

उदय ने उस काली सी औरत को देखा। भद्दा चेहरा था। अब वह उठ खड़ा हुआ। गुसलखाने पहुँचा। चटखनी लगाई। सामने टूथ पेस्ट धरा

हुआ था और दो ब्रश। तीन-चार साबुन, शैम्पू आदि-आदि चीजें थीं। कई तेल, क्रीम आदि भी थे। वह टब पर बैठ गया। फिर अपने ऊपर पानी छोड़ा। बदन पर साबुन मला। शरीर से पसीने की बदबू चल रही थी। वह नहाने लगा। इस समय सारी चिन्ताओं से मुक्त हो गया था। वह बड़ी देर तक नहाता ही रहा। अब उसने तौलिया से बदन पोंछ डाला। धुली बनिआयन और धोती पहनी। गरम चादर ओढ़ ली। अपने फटे पुराने कपड़ों पर नजर फेरी। वे कितने गंदे थे। बैठक के दरवाजे पर पहुँचा था कि देखा वहाँ कोई अधेड़ बैठा हुआ है। विद्या उसके समीप, उससे लगी हुई बैठी बातचीत कर रही थी। वह कुछ देर वहीं खड़ा का खड़ा रह गया। तभी विद्या की नजर उस पर पड़ी। वह उठकर बोली, "आओ उदय, तुम हमारा फैसला कर दो। मैं कहती हूँ, इम्फल जापानियों ने ले लिया है। इनका कहना है कि झूठी बात है। देखो, फ्री इंडिया कभी झूठ बोलता है!"

'फ्री इंडिया!' जैसे कि इस शब्द ने उसके हृदय पर एक पैना डंक मारा हो। उसका हृदय काँप उठा। उसे चुप देखकर बोली विद्या, "अब जाकर हमें स्वतंत्रता मिलेगी।"

उदय चुप रहा। वह खड़ा ही था। नवल और विद्या हिन्दुस्तान का नकशा फैलाए हुए थे। आसाम पर नवल की उंगली थी।

उदय बैठ गया। अब विद्या को अपनी भूल ज्ञात हुई कि उसने दोनों का आपस में परिचय नहीं कराया है। भूल सुधारते हुए कहा, "शायद शिष्टाचार वाले परिचय की आवश्यकता नहीं!" चुप हो गई।

नौकरानी की आहट पाकर बोली, "चलो खाना खाने।" उठकर भीतर चली गई।

उदय मिस्टर नवल के साथ भीतर डाइनिंग रूम की ओर गया। अंगरेजी ढंग का खाना था। सावधानी से विद्या ने खाना लगाया। नौकरानी से पूछा, "पॉपी कहाँ है?"

"मोटरखाने में बन्द।"

"उसे खोल दे।"

नौकरानी चली गई। कुछ देर के बाद एक सुन्दर काले-काले बालों वाला कुत्ते का पिल्ला दौड़ता हुआ भीतर आया। विद्या के पास आकर 'ऊँ-ऊँ ऊँ' करने लगा। फिर मिस्टर नवल के पाँवों पर खड़े होने की चेष्टा की। आखिर चुपचाप मेज के नीचे बैठ गया। सब चुपचाप खाना खाते रहे। चम्मच, प्लेटों की आवाज के अतिरिक्त और कोई आवाज नहीं थी। कमरे में एक अजीब-सा वातावरण छा गया था। एकाएक नवल ने पूछा, "अब आपका क्या विचार है?"

"मेरा! अभी कुछ ठीक नहीं है। सोचता हूँ कि स्थिति बड़ी नाजुक है। आसाम को आखिर जापानी पार करना चाहते हैं। नेता जेलों में बन्द हैं। हिन्दू मुसलमान अलग-अलग अपना-अपना राग अलाप रहे हैं। भारत का भविष्य......। हिन्दू-मुसलमानों की संगठित एकता, नेताओं को छुड़ाने की चेष्टा। राष्ट्रीय हुकूमत और जापानी फासिस्तों से देश की रक्षा! हमारे सामने आज यही चंद बातें हैं।"

"उदय! उदय!!" एकाएक विद्या के हाथ से भरा डोंगा छूट गया। फर्श पर भारी आवाज हुई। वह चकनाचूर हो गया। विद्या अवाक्-सी खड़ी थी। उसका शरीर किसी अज्ञात भय से काँप रहा था। अब वह फूट-फूट कर रोने लगी। उसकी गहरी-गहरी सिसकियाँ सुन पड़ीं। विद्या फर्श पर गिर पड़ी थी। उसकी मुट्ठियाँ बँधने लगीं। फिर वह बन्द मुट्ठियों से सिर पीटने लगी। सिर के बाल नोच लेने की चेष्टा की। नौकरानी ने आकर उसे संभाल लेना चाहा। मिस्टर नवल उसके पास बैठ गए। चपरासी ने आकर नौकरानी की सहायता से विद्या को उठाया और भीतर ले जाकर पलंग पर लिटा दिया।

अब उदय अकेला बैठा रह गया। वह असमंजस में पड़ गया कि बात क्या है? यह विद्या का कैसा रूप है? क्या विद्या पागल हो गई है? सारा खाने का सामान मेज पर बिछा हुआ था। नीचे कुत्ता हड्डियाँ चूस कर उनको तोड़ रहा था। एक अजीब कड़कड़ाहट हो रही थी। नौकर आया।

उसने फर्श साफ की। मेज पर की खाली प्लेटें एक ट्रे में उठाई। बाकी सामान ठीक उसी तरह लगा रहने दिया। नौकर चला गया। वह इस सारी घटना से अप्रतिभ हुआ। वह विद्या बीमार रहती है। इसी तरह परिवार का धन्धा चलता होगा।

नवल आ गए थे। बोले, "खाना खाइए, यह साधारण-सी बात है। अक्सर उसे दौरा हो जाता है।"

"फिट आते हैं।"

"आज उसे बहुत धक्का लगा है।

"क्यों मिस्टर नवल?"

"आपकी हिन्दू-मुसलिम एकता, नेताओं की रिहाई और राष्ट्रीय सरकार की बात सुनकर।"

"क्या कहा आपने?"

"एक लड़का मुझे लोकयुद्ध दे जाया करता था। विद्या उसे बिना पढे ही जला डालती थी। एक दिन उसने उस लड़के से यह बात हँसी-हँसी में कह भी दी थी। अंत में उसके अनुरोध पर मुझे वह अखबार बन्द कर देना पड़ा।"

उदय तो खिलखिला कर हँस पड़ा। बोला, "उसके मन में आज भी विश्वास रहा होगा कि मैं उसकी फासिस्त-समर्थक भावनाओं को बल दूँगा। उसके विपरीत मुझे फासिस्त-विरोधी पाकर उसे स्वाभाविक ही धक्का लगा है।"

"आप खाना खावें मिस्टर उदय। विद्या आज तक कम्यूनिस्तों को क्षमा नहीं कर सकी है। वह उनको देश-द्रोही कहती है। उसकी धारणा है कि यदि उन लोगों ने साथ दिया होता तो आज भारत की दूसरी तसवीर होती। वह महीनों से जापानी आक्रमण की आशा लगाए हुए थी। आजकल उसकी खुशी की बात न पूछिए। रोज वह नक्शा देखती है; लेकिन यह जो आप लोग रूस की दुहाई देते हैं, वह बात समझ में नहीं आती है। मैं स्वयं समाजवाद का विद्यार्थी हूँ। जानता हूँ कि संसार की आम जनता की शक्ति

का दुरुपयोग हो रहा है। पूँजीवाद ? हाँ, ठीक बात है। वह एक डाकुओं का गिरोह है, जो कि दुनियाँ को लूट लेने के लिए आया था। आज जीवन, क्रांति और गुलामी के बीच चल रहा है। आर्थिक-दासता से अतृप्त लालसाएँ समाज में फैल गई हैं। मैं अन्ध-विश्वास पर विश्वास नहीं करता हूँ। पर कभी-कभी वे स्वयं सिद्धि बन आती हैं।"

उदय उनकी बात सुनता रहा। चुपचाप सुनता ही रहा। वह दलीलें झूठ थीं। फिर भी सुन रहा था। नवल कह रहे थे, "हमें इस समय भारत में एक फासिस्त सरकार की जरूरत है, जिसके आगे वकील, सम्पादक, डाइरेक्टर, प्रेस, साधारण नेता—यानी समाज के सब मुखिये सिर झुकाएँ। राष्ट्र के अफसर, पुलीस, कानून सब उसी व्यक्ति के हाथ में होना चाहिए। क्या रूस में आज यही बात नहीं है। यहाँ कम्यूनिस्त पार्टी क्या सारी जनता को कठपुतली की तरह नहीं नचा रही है?"

अब उदय बोला, "इस युद्ध का कारण क्या था मिस्टर नवल? साम्राज्यवाद ने उपनिवेशों का बँटवारा ऐसा किया था कि कुछ राष्ट्र उसमें हिस्सा नहीं ले सके। वारसाई की सन्धि ने एक नये युद्ध की नींव डाल दी थी। सोवियट शासन ने तो समाज की पुरानी बुनियाद को खतम कर दिया है। न वहाँ खेती के मालिक जमींदार या महन्त हैं और न कारखानों पर पूँजीपतियों का अधिकार है। उत्पादन के सारे साधन समाज की सम्पत्ति हैं। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के श्रम को खरीद कर फायदा नहीं उठा सकता है। आज वे जो युद्ध लड़ रहे हैं उसी से उनके देश प्रेम का अनुमान लग जाता है। दूसरी ओर फ्रांस को ले लो। चंद दिनों में टुकड़े-टुकड़े हो गया था। लेकिन हमारे सामने तो मुख्य प्रश्न है अपने देश की रक्षा का। हमारी पूर्वी सरहद खतरे में है।"

उदय चुप हो गया। नवल खाना खा रहा था। सोच रहा था मन ही मन उदय—सिंगापुर, मलाया ब्रह्मा......! उधर स्तालिनग्राद के भीतर जर्मन सेना। दो साल पुरानी धुँधली तसवीर और आज इम्फाल घेरे में। लाल सेना ओडेसा पहुँच गई। जेल के भीतर अक्सर युद्ध की चर्चा होती

थी। यह परिवार क्या है ? इनके और विद्या के विचार......।

नवल खाना खा रहा था। बीच-बीच में वह उदय की ओर देख लेता। उदय ने खाना खा लिया था। अब बैठा-बैठा न जाने क्या सोचता रहा। दिमाग में कई बातें तेजी से चक्कर काट रही थीं। नवल की फासिस्त भावनाएँ। सभी चीजों, यहाँ तक कि जनता के विचारों, पर भी स्टेट का निरीक्षण।

पूछा नवल ने "आपने तो फल खाये ही नहीं ?"

"फल ?" उसने चम्मच से पपीता उठा लिया। दो-तीन टुकड़े खा डाले। चुपचाप न जाने क्या-क्या सोचता रहा।

उदय हाथ धोकर बैठक में चला गया। वहाँ बैठकर अखबार उठा लिया और पढ़ने लगा। विद्या पर सोचा। याद आया कि ६ अगस्त को विद्या बहुत उत्तेजित हुई थी। उसका यह अपने मन का विवाह ! वह दूसरी पत्नी है। समाज के प्रति यह कैसा विद्रोह है। उसे विवशता नहीं थी। उसने इसे स्वयं ही अपनाया है। मिस्टर नवल अच्छे ओहदे पर हैं। व्यावहारिक सभी सुख वर्तमान हैं। जनता को आराम, सुख, सुविधा, आत्मसम्मान आदि दिलाने के लिये ही हरएक राष्ट्र युद्ध कर रहा है। विज्ञान आज निर्माण की बात न सोचकर नष्ट करने वाली वस्तुओं का प्रयोग कर रहा है। आज पैसा कला, साहित्य, विचार, समाज और नारी आदि को क्रय कर लेने की क्षमता रखता है।

नवल आया था, मुँह में सिगार सुलग रहा था, पूछा, "आप स्मोक तो नहीं करते हैं ?"

"नहीं।"

नवल बैठ गया। सोच रहा था उदय कि शतरंज के खेल की भी अपनी सीमाएँ हैं, पर जीवन की नहीं। फिर भारी थकान के कारण नींद-सी आने लगी। वह बहुत थक गया था।

अब नवल बोला, "आप सो जायँ।"

उदय सोने के कमरे में पहुँच कर साफ सुथरे बिस्तर पर लेट गया।

सुबह मे अब तक कई घटनाएँ बड़ी तेजी के साथ उसके जीवन से आ लगी थीं। वह स्वयं उनको अपनाने के लिए तैयार नहीं था। जेल के वातावरण ने उसे निराशावादी बना दिया। इसका असर उसकी सेहत पर पड़ा। वहाँ जेल में उसने अपने को सबसे अलग पाया। वहाँ राजनीति की चर्चा होती थी। स्वराज्य का ढाँचा बनता था। काउन्सिल, असेम्बली, म्यूनिसिपेलटी डिस्ट्रिक्टबोर्ड के चुनाव को लड़ने वाली योजनाएँ सम्मुख आती थीं। बड़े नेता चुपचाप गंभीर बने रहते थे। मानो भाग्यविधान होने के कारण उनके मुँह पर ताला लग गया है। गान्धी जी का अनशन उम्मेद की एक लहर लाया था, पर फिर वह भी बीती घटना बन गया। भविष्य में युद्ध के बाद का निर्माण......।

लेकिन उदय अपने मन की ईमानदारी के कारण उन सबसे अलग-अलग हट गया। अपने विचारों की इतनी दूरी पर पहुँच गया कि उन लोगों की सहानुभूति नहीं पा सका। उसका एकाकीपन, उस वातावरण से भाग जाने की चेष्टा मात्र थी। सेहत खराब हो गई। वह खिन्न रहने लगा। वहीं उसने 'लोकयुद्ध' को देखना आरम्भ किया। धीरे-धीरे मन में एक आशा की चमक उठी। उसे विश्वास हो गया कि एक जागरूक संस्था देश में है। जो अपना कार्य-क्रम बनाकर चुपचाप कठिनाइयों के बीच उसे पूरा करने में संलग्न है। वह उसकी प्रगति को समझने लगा। साधारण मतभेद के अतिरिक्त अन्य संदेह हट गये। वह अपने में स्वस्थ होने लगा। पस्तहिम्मती हट गई। मन की पीड़ा मिट रही थी। उसके निर्जीव जीवन में उस पत्र की कई विचारशील पंक्तियाँ प्राण उड़ेलने लगीं। वह भारी विश्वास के साथ अपने को स्वस्थ पाता रहा। आज सुबह जेल से छूटने पर उसने सोचा था कि वह प्रान्तीय कार्यालय में जावेगा। यदि सिनेमा हाल के बाहर विद्या न मिलती तो वह लौटकर वहीं चला जाता। वह निराश्रय नहीं था। उसे शहर में बहुत काम करने को पड़ा हुआ है।

लेकिन उदय तो सो गया। नींद ने उस दुबले-पतले पीले चेहरे वाले युवक को, जिसकी हड्डियाँ-हड्डियाँ दीख रही थीं, जो बार-बार खुट-खुट-खुट

खाँसता था, कुछ देर के लिए अपनी गोदी में अपना लिया। वहाँ शान्ति थी। वह लेट गया था।

विद्या स्वस्थ हुई। आधी रात गुजर चुकी थी। चारों ओर सन्नाटा था। वह उठी और कमरे से बाहर निकली। वहाँ बड़ी देर तक खड़ी रही। फिर कुछ सोचकर उदय के कमरे की ओर बढ़ गई। दरवाजा खुला था। अब वह बहुत लज्जित सी थी कि यह सब क्या हो गया है? उदय ने उसकी कल्पना की सुन्दर तसवीर नष्ट कर दी थी। क्या आज वह पथ-भ्रष्ट हो गया है। क्या आज वह देशद्रोही है? उसमें यह कैसा परिवर्तन था? देश में तो भीतर-भीतर एक विद्रोह सुलग रहा है। क्रान्तिकारी पर्चों में स्वतंत्रता की पुकार है। एक बहुत बड़ी भारतीय सेना लेकर बोस भारत में घुस आने की ताक लगाए हैं। एक सुनहला अवसर सम्मुख है। उसने एक कल्पना की थी, जिसे उदय ने चूर-चूर कर दिया है। आज संध्या को जब उसे उदय मिला था तो वह खुशी में फूल उठी थी। उदय ने उस भावना को मुरझा दिया है। सोचा था कि उससे कहेगी—उदय, आज मेरे पास धन की कमी नहीं है। तू जितना पैसा चाहे ले ले। अपना काम कर। वह यह नहीं जानती थी कि उदय आज उसे धोखा देगा। फिर इस उदय की सेहत भली नहीं है। जेल का जीवन उसकी सारी शक्ति को छीनकर ले गया है। निर्जीव चेहरा, मुर्दा-सा शरीर, रूखे-सूखे बाल, धँसी आँखें……! कहीं प्राण नहीं हैं। सूखी खाँसी……। टी० बी० का मरीज……। आज और तब का उदय पहचान लेना आसान बात नहीं है। वह बहुत बूढ़ा लगता है। अवस्था से दस-पन्द्रह साल अधिक……। जो थोड़ी सी बातें उसने की हैं, उनपर तर्क का प्रश्न नहीं उठा। वह तो सुझा रहा था कि उसकी बातें सही हैं। उसका ही एक सच्चा रास्ता है।

उदय खाँस रहा था—खुट, खुट, खुट……! डॉक्टर ने कहा था कि उसे टी० बी० का शक है। उदय ने आसानी से वह बात सुना दी। वह अपनी परवा कभी नहीं करेगा। टी० बी० का रोग आसानी से ठीक नहीं होता। रोग बढ़ेगा। फेफड़े गल जावेंगे। वह एक दिन जल्दी ही नष्ट हो जावेगा।

तो उदय को नष्ट हो जाना ही है! यह बात असह्य लगी। उसे जीवित रहना चाहिए। उस दिन का सुन्दर, स्वस्थ शरीर, विशाल माथा, पैनी आँखें! वह उदय का कितना प्रभावशाली व्यक्तित्व था! विद्या के मन में बात उठी थी कि वह ऐसे व्यक्ति को पाना चाहती है। उसने उसे 'काँटे' के रूप में अपने हृदय में छुपा लिया था। वह कई बार टीस पैदा कर चुका है। तब विद्या ने सोचा था कि वह रात भर उसे रोककर, एक जीवन पा सकती थी। उसकी—एक मात्र उसकी ही हो जाती। फिर चाहे वह कहीं चला जाता। वह मर जाता तो भी एक सन्तोष रहता। उदय के उस तरह चले जाने पर उसे बहुत दुःख हुआ था। आज वह काँटा तो पक गया है। वहाँ से मवाद निकल रहा है। वह घृणा से सिहर उठी। विद्या की दृष्टि में उदय के शारीरिक, सामाजिक और राजनीतिक तीनों व्यक्तित्व नष्ट हो गए थे। वह तो अब बहुत साधारण व्यक्ति था। करोड़ों की आबादी में एक व्यक्ति जो कि आज उसका अपमान उसी के घर पर करने की क्षमता रखता है। जिसने कि उसकी भावना की कोई परवा नहीं की। वह एक अवसरवादी है। गिरगिट की भाँति मौसमों के साथ-साथ रंग बदलता है। वह इस उदय पर कितना नहीं सोचा करती थी। उस रात्रि में यदि उदय कुछ कहता, तो वह उसी की हो जाती। उसका आदेश मान लेती। आज उसके प्रति श्रद्धा का वह भाव मिट गया था। आज तो वह उसका मेहमान है। कल वह चला जावेगा। उससे वह अविश्वास करने लगी है, भविष्य में वह उसका मुँह नहीं देखना चाहती है।

उदय ने करवट बदली। विद्या ने आहट पाई। फिर कमरे का सूना-सूना वातावरण! निस्तब्ध शान्ति!! वह गोली से मरे युवक की लाश। उदय का कहना—आज तो एक का बलिदान हुआ है। यह क्रान्ति है! हमारे नेताओं का आदेश······। सबको तैयार रहना चाहिए। संसार की क्रान्ति में विद्यार्थियों को पूरा-पूरा भाग लेना चाहिए। चीन के विद्यार्थियों का त्याग!

विद्यार्थियों ने जोश के साथ तालियाँ पीटी थीं। स्वयं विद्या का भावुक मन हिल उठा था। लाखों की कुरबानियाँ! उनके साथी विद्यार्थी की लाश!!

उसकी मुँदी आँखें। हृदय के पास गोली का घाव। आज यह गिरा हुआ उदय! शायद माफी माँग कर छूट आया है।

विद्या चुपचाप बाहर जाने को थी कि पुकारा उदय ने, "विद्या!"

विद्या रुक गई। चुपचाप दरवाजे की देहली पर खड़ी हुई। उदय तो जाग रहा है। अब वह क्या करे?

"विद्या!" फिर पुकारा उदय ने। खुट-खुट-खुट, खाँसी उठी।

विद्या उलझन में खड़ी रही कि क्या करे? वह क्यों चोर की भाँति आई है। अब लौट नहीं सकती है। लेकिन वह उदय से दूर रहना चाहती है। उसकी बातें सुनने की इच्छा नहीं है, फिर भी खड़ी ही थी।

विद्या ने देखा कि उदय चारपाई पर बैठ गया है। उसने अँधेरे में प्रेत की भाँति काली-सी छाया देखी। वह लौट आई और उस देशद्रोही के पास आकर खड़ी हो गई।

"तुम कब से बीमार रहने लगी हो विद्या!"

"मैं बीमार, नहीं तो!"

"और आज जो तुम्हारी बनाई तसवीर चकनाचूर हो गई है, उसका बहुत दुःख है न!"

"उदय!"

"अपनी असफलता को स्वीकार कर लेना अपमान नहीं है। वह 'क्रान्ति' सफल नहीं हुई। जनता जापानी दलालों के बहकावे में आ गई थी। और आज जो सामने तसवीर है—सड़कों के किनारे ताजी लाशें...... गीदड़ और कुत्तों का साधारण भोजन बनी हैं......गीदड़ स्त्री का पेट साफ कर गए......कुत्ते उसके पास आकर झगड़ने लगे......बच्चे, युवक, बालक, युवतियाँ—माँ, बाप, नाना-नानी, दादी-दादा......हिन्दू-मुसलमान, जुलाहे, किसान-मजदूर की लाशें...धान के खेतों वाले नर-कंकाल......। यह कल्पना नहीं है। न ये खयाली धार्मिक-तसवीरें हैं, जिनको दिखलाकर एक वर्ग दूसरे के विचारों पर शासन करता था। यह बंगाल का हाल है। जिसकी सीमा पर दुश्मन चढ़ आए हैं। फिर भी आज हमारी शक्ति बिखरी पड़ी है। जिस धर्म

और जाति भेद के कारण हम गुलाम बने, आज भी मुसीबत के समय हम उन संस्कारों को भुला नहीं रहे हैं। तुम शायद यह सोचती होगी कि साम्राज्यवादी गुट इस युद्ध में विजयी होकर अंत में दुनिया का बँटवारा करेगा। जो बेड़ियाँ सदियों से पड़ी हैं वे फिर मजबूत हो जावेंगी। लेकिन साम्राज्यवादी पुराना सड़ा-गला ढाँचा लड़खड़ा रहा है। पूँजीवाद की सबसे सबल सैनिक-शक्ति फासिस्तवाद का अंत, उसे निर्बल बना देगा। बना भी तो रहा है। फिर उसमें कोई बल नहीं रह जायगा।

"यह झूठ है, झूठ है उदय!"

"झूठ है न! इसी लिए कि आज हमारे नेता जेल में हैं। यह हम मान लेते हैं कि वे जल्दी हमारे समीप नहीं आवेंगे। हम स्वयं हाथ पर हाथ धरे बैठे हुए हैं। यह तो अनुचित बात है। आखिर हमने उनको बाहर निकालने की क्या चेष्टा की है?"

विद्या उसी भाँति चुपचाप खड़ी रही। आधी रात। चारों ओर निपट सन्नाटा! घना अँधेरा......। वह उसी भाँति खड़ी-खड़ी सब कुछ सुन रही थी। आज उदय सरलता से अपनी बातें समझा रहा है। उत्तेजना नहीं है। एक-एक वाक्य तुला हुआ है। फिर भी उसे विश्वास नहीं हुआ। हरएक अपने पक्ष का समर्थन करने के लिए दलील किया करता है, उसी भाँति उदय सब कुछ कह रहा था। वह उसे छोटे बच्चे की तरह बहकाना चाहता है। आज उसकी किसी भी बात को वह स्वीकार नहीं करती है। सोचा फिर कि वह वहाँ उस तरह खड़ी क्यों है? उसके उदय से सब बन्धन टूट चुके हैं; अन्यथा वह डोंगा हाथ से छूटकर चूर-चूर नहीं होता। एक बड़े आइने के टूट जाने पर जिस प्रकार परछाईं छितर जाती है। उसी रूप में वह उस उदय की परछाईं अब पा रही है। आज तक वह यह बात नहीं जानती थी।

मिस्टर नवल से उसका कोई सैद्धान्तिक मतभेद नहीं है। वे उसकी बातों को मान लेते हैं। उनके प्रति यह बड़ा आकर्षण था। पर क्या वह उदय को भूल सकी है?

अब उदय बोला, "तुम बैठ जाओ विद्या।" खुट-खुट-खुट, खाँसी।

वह चुप हो गया।

वह बैठी नहीं, उसी भाँति खड़ी ही रही। उदय बहुत बीमार है। पूछा उससे, "उदय, तुमको क्या हो गया है? इस तरह बीमार रहे हो तुम। मुझे कुछ ज्ञात नहीं था।"

लेकिन उदय तो बैठ गया था। उसने विद्या की वाणी में एक गहरी उदासी भाँपी, सोचा कि आज सारी जाति भावुकता के एक तेज प्रवाह में बह रही है, फिर दुनिया में कोरा आदर्श भी एक असफलता ही है। वह जल्दी-जल्दी बोला, "अच्छा विद्या, मुझे तो जाना है। अचानक तुम मिल गई। इस बीच मैं सोचने का अवसर पा गया। तुम्हारी यह गृहस्थी मुझे बहुत पसन्द है। तुम यहाँ की रानी हो। मिस्टर नवल सहृदय व्यक्ति लगते हैं। मुझे खुशी है कि तुम्हारा पारिवारिक जीवन भली-भाँति चल रहा है। मैं तो आज बहुत थक गया था। अब स्वस्थ हो गया हूँ। कभी मौका मिलेगा तो जरूर आऊँगा।"

"तुम जा रहे हो उदय?"

"क्यों तुम क्या चाहती हो? यही कि मैं इस परिवार में रह जाऊँ। तुम मेरी परिचर्या करो। मैं पड़ा ही रहूँ। तुम लोग तीमारदारी में फँस जाओ। वह व्यर्थ बात होगी। मैं अपना ठिकाना जानता हूँ। वहीं अब चला जाऊँगा। तुम्हारे परिवार को देखने का लोभ चुपके से मन में उठा था। वह पहचान लिया है। उस रात की बात भूल जाना। शायद सुनना चाहोगी कि क्या हुआ था। अठारह महीने बात-की-बात में कट गए। आज और तब की दुनिया में बड़ा अन्तर पा रहा हूँ। तुम संभवतः उस परिवर्तन को नहीं भाँप पाई होगी। दुनिया का नक्शा कितना बदल गया है? घटनाएँ! घटनाएँ!! घटनाएँ!!! प्रति दिन घटनाओं की ढेरियाँ गिनने में ही बड़ा वक्त कट जाता है।"

"मैं तो जो बात तुम कह गये थे......।"

"तुम बड़ी बावली हो विद्या। युद्ध के जमाने में भावुकता का तूफान स्थिर नहीं रहता है। युद्ध तो कई अजनबी बातें ले आता है, जो कि साधारण

सी लगने लगती है। युद्धकाल में मानव के जीवन की गति तीव्र हो जाती है। तुम युद्ध को मोरचेबन्दी, सिपाहियों की भगदड़, टैंकों का जमाव, हवाई हमले, जहाजों का डूब जाना आदि-आदि इन समाचारों तक ही सीमित समझती हो। लेकिन इसके साथ-साथ जो इनसान के विचारों तथा विभिन्न वर्गों का संघर्ष हो रहा है? समाज और राजनीति की धारणाएँ स्वयंसिद्ध नहीं हैं। वहाँ इतिहास की घटनाएँ तब्दीलियाँ लाई हैं। युद्ध तो उन तब्दीलियों को लाने का एक सबल साधन भर है।"

विद्या सुन सी नहीं रही थी। मन में तो यह उठा था कि आज भी यह उदय जा रहा है। क्या वह उसे नहीं रोक सकती है? वह बीमार है। कहाँ जावेगा? उसका अपना सगा कौन है? वह किसका स्नेह पाना चाहता होगा? क्या वह अपने परिवार में चला जावेगा? क्या उसकी पत्नी होगी, जो कि उसकी प्रतीक्षा में होगी? वह उससे इन बातों का निराकरण चाहती है। या आखिर वह कब तक भटकता रहेगा? वह उसे बीमारी की हालत में नहीं जाने देगी। क्या उसे मौत का डर नहीं लगता है? कुछ हो, उसे रोक लेना चाहिए। वह बोली, "उदय तुम मत जाओ, यहीं रहो। व्यर्थ ही......।"

बात समझ कर बोला उदय, "तुम्हारी इस मेहरबानी के लिए ऋणी रहूँगा। मैं अपनों से भाग नहीं रहा हूँ। सुबह डॉक्टर ने कहा था कि मैं बीमार हूँ। अब तो मैं स्वस्थ हो गया हूँ। आज के पत्रों के समाचारों ने मुझे चंगा कर दिया है। मैं पार्टी के दफ्तर में जा रहा हूँ। वहाँ मेरे लिये कोई न कोई काम निकल आवेगा। देश पर खतरे के बादल छा रहे हैं। मैं उससे अलग नहीं हूं......!"

"नहीं उदय!" बात काटी विद्या ने, "मैं अब तुमको नहीं जाने दूँगी।" वह पास सरक गई। उसका गला भर आया। वह अधिक नहीं बोल सकी।

कुछ देर के बाद सँभल कर कहा, "मेरा सपना तुमने चकनाचूर कर दिया है। मेरी उम्मीदों को मिटा डाला है। अब मुझे असहाय छोड़कर तुम

भाग रहे हो। उदय मैं तुमको नहीं जाने दूँगी। यदि तुमको इसी भाँति चला जाना था तो तुम यहाँ क्यों आए थे। तुमको मुझसे मेरा विश्वास छीन लेने का अधिकार किसने सौंपा है ?"

"अधिकार! मैंने सदा तुम्हारे मन की रक्षा की है विद्या। उस स्वप्न की टूटी कल्पनाओं पर तुम नव निर्माण की चेष्टा करना। इम्फाल घेरे में है। तुम शोगान पर कान लगाये रहती हो। लेकिन ५० लाख का रोटी-रोटी के लिए मर जाना क्या अद्भुत बात है ? तुम मुझे रोकना चाहती हो विद्या। तुम्हारा हठ ठीक नहीं है। तुम एक अफसर की पत्नी हो। अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा की बात क्यों भूल जाती हो ?"

"सामाजिक प्रतिष्ठा की बात······।"

"यह पिता का घर नहीं है कि तुम लड़कपन करो। यह पति-गृह है। तुम्हारा एक अपना वर्ग है। अपने समाज में मान······।"

कहकर उदय चुप हो गया। उस सन्नाटे को चीरता हुआ आगे बढ़ा। उसकी बातें सरल, पर भारी थीं। वह चुटकी नहीं ले रहा था। उसने सच-सच बात कही थी। इससे पहिले कि वह सँभल जाय, उदय चला गया था। विद्या अपने दोनों हाथों को फैलाए के फैलाए रह गई। अब उसे ज्ञात हुआ कि वह तो चला गया है। वह तेजी से दरवाजे की ओर बढ़ गई। बाहर सन्नाटा था। वह कुछ देर तक स्तब्ध-सी बरांडे में खड़ी रही ; पर उदय की आहट नहीं मिली। आज फिर विद्या हार गई थी। वह उससे कहना तो भूल गई थी कि वह इस परिवार की रानी ही नहीं, शीघ्र ही माँ बनने वाली है।

बड़ी देर खड़ी रहकर वह थकी-सी भीतर गोल कमरे में चली आई। रेडियो बजाने की चेष्टा की। यह भूल गई कि मध्य रात्रि थी।

आज शोगान रेडियो और उसके बीच बलवान उदय खड़ा था। जो कि आज भी उस पिछली रात्रि की तरह शक्तिशाली लगा।

लेकिन रेडियो घर्-घर् घर्-घर् करने लगा। वह मध्य रात्रि ·····। इम्फाल घेरे में······उदय······!

वह खिलखिलाकर हँस पड़ी।

युग युग द्वारा शक्ति की पूजा

[मानव जाति का बहुत सा समय जंगली अवस्था में व्यतीत हुआ। पहिले की जातियों की भाँति इसे भी पत्थर के अनगढ़ हथियारों द्वारा मारे गये शिकार और सूखे ताजे-फलों पर गुजारा करना पड़ा। मछली-मांस का भोजन वह पहिले ही से जानता था। आदि समाज में स्त्री का बोलबाला था। माँ परिवार की स्वामिनी होती थी। हर एक माँ किसी भी समय परिवार की स्वामिनी बनने की आशा रखती थी। मातृसत्ता का परिवार पुरुष और नारी, दो वर्गों का परिवार था। एक वर्ग दूसरे वर्ग से स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध रखते थे।

वैसा ही एक परिवार। माँ अपने परिवार के साथ शिकार पर जाने की तैयारी कर रही है। आज वे भेड़ियों के गिरोह पर धावा बोलेंगे। सारा परिवार अपनी पत्थर की छुरियों तथा अन्य पत्थर के हथियारों से सजकर चला जा रहा है। माँ नायक के रूप में सब से आगे हैं।]

माँ—चुप हो जाओ। वह देखो। कुछ दाएँ-कुछ बाएँ ......। घेर लो......सब ठीक हो गया है न——मैं हमला करती हूँ—सावधान!
[एक अजीब संघर्ष......भेड़ियों का भयानक स्वर......इनसान के बेटों की चीत्कार .....बड़ी देर तक खूंख्वार जंगली जानवर और आदि मानव परिवार का युद्ध......माँ दो भेड़ियों के ऊपर बैठी है। वे उसके शिकार हैं। माँ ने पत्थर की तेज छुरी से खाल काटकर भेड़ियों के कलेजे को निकाला...... फिर एक-एक ताजा टुकड़ा हर एक को दिया ......]

माँ—गिनती कर लो......चार कम......। वे चार ले गए। [माँ का चेहरा क्षण भर मलीन हो गया......एक निर्जीव चुप्पी छा गई। अब माँ उठी।]

माँ—चलो——परिवार को इसकी चिन्ता नहीं होनी चाहिए।

सब—माँ——माँ——माँ......!

[परिवार की उस सीमा की खुशी-गमी में भावुकता का उफान भी आता था। परिवार की युवतियाँ युवकों से हँस-खेल लेती थीं, और धीरे-

धीरे सबसे शक्तिशाली युवती अधिक युवकों को अपने वश में कर लेती थी। माँ देखती थी कि वह अधेड़ हो गयी है। उसका आकर्षण मिट रहा है। माँ भय से काँप उठी। क्या उसकी बेटी उसका अधिकार छीन लेना चाहती है ?]

माँ—[गुस्से में] तू परिवार की मर्यादा का ध्यान नहीं रखती है बेटी। देख रही हूँ मतवाली बनी-बनी डोला करती है। कई बार समझा चुकी हूँ कि यह सब अनुचित है। तू चुप क्यों हो गई। भविष्य के लिए समझाए देती हूँ कि......।

बेटी—क्या समझाए देती हैं माँ ! मैं भी तो सुन लूँ। मैं आज इसका फैसला करवा लूँगी। परिवार के सब युवक मेरे साथ हैं......

माँ—[घबराहट से] तेरे साथ ! क्या कहा तूने ? तेरे साथ......।

बेटी—हाँ, तुम व्यर्थ झगड़ा मोल लेकर हमारी जिन्दगी में रोड़ा लटका रही हो। बोल ! बोल माँ, तुझे क्या कहना है ?

माँ—जा, चली जा......

[माँ आधी रात को चुपचाप उठी। घनी अँधियारी रात्रि थी। पत्थर की तेज छुरी निकाली, बेटी के पास पहुँची और उसकी हत्या कर डाली। परिवार ऐसी हत्याओं का आदी हो गया था।

किन्तु परिवार की माँ बूढ़ी हो गई और एक दिन उसकी दूसरी बेटी ने माँ की हत्या करके वह स्थान ले लिया।

उस युग में फल संचय और शिकार में स्त्री पुरुष से पीछे नहीं थी। सारा परिवार एक साथ मिलकर जीविकार्जन करता तथा शत्रुओं से परिवार की रक्षा करता था।

धीरे-धीरे परिवार के कार्य की सीमाएँ बढ़ने लगीं और पुरुष बाहर का स्वामी तथा स्त्री घर की स्वामिनी बन गई।

—घंटियों की तेज आवाज—सीटियाँ बजा रही हैं......अजीब से ढोल का स्वर......। एक कबीला भारतवर्ष की ओर आ रहा है। भारतवर्ष में आने के बाद भी आर्यों का खानाबदोश जीवन का अंत नहीं हुआ। वे

शिकार खेल कर तथा फल संचय कर अपना जीवन चलाने लगे। कुछ चैतन्य थे, अतएव जानवरों की खालों को टांक कर शरीर ढक लेते थे। नदी और झरनों के पास घनी झाड़ियों के झुरमुट या पहाड़ी खोहों में डेरा डालते थे। इन लोगों को प्रकृति से भय रहता था। वे जानते थे कि कोई शक्ति, दैविक शक्ति है जो उनको पैदा करती है, मार भी डालती है। उनके हृदय में इसका डर सदैव बना रहता था। वे भूत-प्रेत तथा शैतानों से डरते थे। धीरे-धीरे इन लोगों ने पशु पालन भी आरंभ कर दिया था पर वह प्रारंभिक स्थिति थी......

उसी युग की एक सुन्दर चाँदनी रात। आकाश में चाँदनी खिली हुई है। तारे टिमटिमाते हँस रहे हैं। चारों ओर नीरव शान्ति है। पास नदी बह रही थी। उसकी ध्वनि कानों को छू लेती है। बीच-बीच में कंगारे टूट-टूट कर भारी स्वर पैदा कर दिल को दहला देते हैं। एक कबीले की औरतें आग के चारों ओर बैठी हुई बातें कर रही हैं।]

पहली—आज अभी तक लौटकर नहीं आए! क्या बात होगी?

[तेज सीटी की आवाज]

बच्चा—माँ! माँ!!

दूसरी—उस अभागे युवक की आत्मा भूत बन कर दुनिया का चक्कर लगा रही है।

पहली—कौन?

दूसरी—वही जो जंगल से अकेला लौट रहा था। रास्ते में उस पर सुअर के गिरोह ने धावा किया। वह मर गया था।

[तेज सीटी—सिसकार—सिसकार की ध्वनि......।]

बच्चा—माँ! माँ!!

पहली—वह तो रो रहा है। क्या बात होगी?

दूसरी—वह सरदार की लड़की से प्रेम करता था। वह उस लड़की के लिए हड्डियों का एक सुन्दर हार लाया था। लेकिन...

पहली—ठीक! ठीक!! याद आया। सरदार की लड़की को उसने

शेर की खाल लाने की प्रतीज्ञा की थी। वह उससे...

दूसरी—[धीरे-धीरे] उस रात्रि में घना अँधियारा था। वह अपनी प्रेमिका को भेंट देने जा रहा था...

[सिसकार ! सिसकार !! सिसकार !!!]

वह मर गया पर भूत बनकर भी किसी को दुःख नहीं देता है...

[हाँ ! हाँ !! हाँ !!!]

बच्चा—माँ ! माँ !!

दूसरी—[डर कर] उफ, यह क्या है—क्या है वह !

[हाँ-हाँ-हाँ—वीभत्स हँसी]

पहली—यह दुष्ट फिर आ गया। इसने अपने जीवन भर लोगों को दुःख ही दिया है। आज मर कर भी किसी को चैन नहीं लेने देता है।

[आँधी—तूफान......आसमान घिर गया है...]

दूसरी—ओ ! ओ !! ओ !!!

पहली—क्या हुआ ?

[आँधी—तूफान—हा ! हा ! हा !!!]

दूसरी—कोई मेरा गला घोंट रहा है। मैं—मैं मैं [कै करती है]

पहली—क्या हुआ ? बोलती क्यों नहीं है...

बच्चा—माँ, माँ !

[तूफान, आँधी—वीभत्स हँसी—हा ! हा !! हा !!!]

दूसरी—मर गई। दुष्ट हमारे पीछे पड़ा हुआ है। हमारे बच्चों को खा जाता है। हमारे ऊपर जुल्म ढा रहा है।

[दूर से घोड़ों की टापों की ध्वनि—वीभत्स हँसी—हाँ-हाँ-हाँ—क्षीण सी बनी निपट जाती है......]

एक जान लेकर भाग गया। भाग गया............ । वह भाग गया है......

[फूट-फूट कर रोने लगती है]

[घोड़ों की टापों की ध्वनि समीप होने लगती है।......घुड़ सवार

और पास आते हैं......वे घोड़ों को चमड़े के फीतों से पेड़ से बाँध कर 'परिवार के नजदीक पहुँचते हैं। औरतें रो रही हैं......]

कई व्यक्ति—हैं, क्या हुआ—फिर वही-वही मौत ! मौत.. मौत !! दो दिन में आठ मौतें ! चलो उठो साथियों। उठो इस शैतान को दूर भगा दें......वह प्रेत नाखुश हो गया है।

[ढोल की आवाज...शोर-गुल...अजीब स्वर...]

[यह किसी अज्ञात का भय केवल मन का भ्रम था। साधारण घटनाएँ अन्धविश्वास' बन गईं। पिछले दिनों फिरके वालों ने सड़ा गोश्त खाया था। उससे रोग फैल गया। तब वे विज्ञान की जानकारी से अपरिचित थे। उनका अन्धविश्वास था कि कोई ऐसी शक्ति है जो जीवन देती है तथा मार भी डालती है। भूत, प्रेत उसके दूत हैं।]

[कोरस]

प्रथम प्रभात उदय तव गगने
प्रथम सोमरस तव तपोवने
प्रथम प्रचारित तव वन-विपने

एक व्यक्ति—हे माता ! तुम्हारे ही आकाश में सर्व प्रथम प्रभात का दर्शन हुआ है। हे माता ! तुम्हारे ही तपोवन प्रदेश में सर्व प्रथम सोम रस का पान किया गया था और तुम्हारे ही जंगलों में आर्यों ने सर्व प्रथम वेदों की अलौकिक ज्ञान राशि का प्रचार किया था।

[आर्य धीरे-धीरे पंजाब में बस गए। वहाँ उन्हें पाँच नदियों की उपजाऊ भूमि मिली, जिसमें घास की खेती, शिकार, पशु पालन के अतिरिक्त अब खेती भी होने लगी। धातु शिल्प—तांबा, लोहा आदि का प्रचलन भी बढ़ गया। अब वे अच्छी-अच्छी फसलें तैयार करने लगे। धीरे-धीरे छोटी-छोटी बस्तियां बनीं। आर्य संस्कृति बढ़ती चली गई। आर्यों ने द्राविणों के साथ युद्ध भी किया। एक नए समाज का निर्माण हुआ जो आदिम साम्यवाद तथा कबीलों के छोटे-छोटे समाज से भिन्न था। आर्य कपास तथा ऊन के सुन्दर कपड़े पहनते थे। उनकी औरतें गहने पहनती थीं। उस युग

की गाथा ऋगवेद में गाई गई है। अब वे बीमारों की परवा करते थे। प्राकृतिक शक्तियों-बिजली, बादल, आग, सूर्य, बहती धारा आदि का भय मानव के मन में आदिम युग से ही हुआ था। अँधेरी रात का काल्पनिक भय, चाँदनी रात का भावुकता पूर्ण सुख। इन सबके आगे वे झुक गए। मौसमों का बदलना एक अनोखा व्यापार था। इसीलिए उनके हृदय में चतुर व्यक्तियों ने धर्म का बीजारोपण कर दिया।]

[शंख की ध्वनि—ओ३म,स्वाहा! ओ३म,स्वाहा !! ओ३म,स्वाहा !!!

मुखिया—ऋषि महाराज, आधी बरसात बीत गई। आकाश में बादल नहीं दीख पड़ते हैं। क्या इस वर्ष फिर अकाल पड़ेगा।

ऋषि—वत्स, धैर्य्य धारण करो। हम वरुण देवता की आराधना करेंगे। वे न जाने क्यों हमसे अप्रसन्न हो गए हैं। उनकी पूजा की जानी चाहिए। तभी वे हमारी खेती के लिए पानी बरसावेंगे।

[इसी भाँति आर्यों ने सर्दी-गरमी का देवता अग्नि, पानी का वरुण, आकाश, इन्द्र, वायु आदि देवताओं की पूजा आरंभ कर दी। जिस किसी बात का भय होता, उसके लिए एक देवता मान लिया जाता था। यम, कुबेर आदि देवता भी आए। और समस्त भारत में एक स्वर गूँज उठा]

ओ३म भूर्भुवः स्वः

तत्सवितुर्वरेण्यं, भर्गोदेवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात्

[इस मूल मंत्र का प्रचार हुआ। यह सब कष्टों का निवारण कर सकता था। यह गायत्री मंत्र शक्ति का प्रतीक बन गया। वेदों में उस सभ्यता का वर्णन है। वे फ़स्ल काटने का उत्सव मनाया करते थे।]

[लड़कियों का हँसना-खेलना तथा नृत्य...ढोलक बज रहा है...]

[काम देवता मदन की कल्पना इस तरह हुई। वे हमारे हृदय में बस गए। इसी भाँति देवताओं की संख्या करोड़ों तक पहुँच गई। शक्ति का रूप भी बदलता गया वह सबसे श्रेष्ठ ही रही]

[घनघोर, बरसात, बिजुली का कड़कना]

वरुण देवता !

[तूफान......]

वायु देवता !

[ये देवता भी स्थिर ही रहे तथा प्रमुख ।]

[अब नारी परिवार की स्वामिनी नहीं थी । पिता स्वामी था । नारी को धर्म की लड़ियों से बाँध कर घर की व्यवस्था सौंप दी गई । बच्चे रो रहे हैं]

पहला बच्चा—माँ भूख !

लड़की—माँ लोती !

दूसरा लड़का—हमारा खिलोना दे ।

नारी—पुरुष क्या हम इसी भाँति गृहस्थी के जंजाल में फंसी रहेंगी। एक, दो, तीन......मैं पाँच बच्चों की माँ हूँ। आखिर बेटियाँ जन्म लेते ही क्यों नहीं मार डाली जाती हैं ?

बच्चे—भूख, लोती—खिलोना !

नारी—मैं इन सारे झंझटों से परेशान हूँ । पुरुष तुम सदा बाहर रह कर क्या जानो कि हम पर कैसी बीतती है । हम तुमारी सेविका हैं—दासी हैं। हमारा अस्तित्व तुम्हारे बच्चे जनना भर है ।]

[तसवीर का दूसरा पहलू है ।]

पहला पुरुष—सुना तुमने......

दूसरा—क्या ! क्या !!

पहला—नारियों ने पुरुष के विरुद्ध बगावत करने का निश्चय कर लिया है । अब वे अधिक अत्याचार नहीं सह सकती हैं । वे दासता की जंजीर तोड़ डालेंगी ।

तीसरा—हमने तो उनको आधे अधिकार दे दिए हैं । उनके दुःख-सुख में साथ देते हैं ।

पहला—वे समझती हैं कि यह सब धोखा है ।

दूसरा—तो क्या किया जाय ?

तीसरा—मनु महाराज शायद इसका कोई ठीक सा उपाय बता

सकेंगे।

[और मनु ने सुझाया]

मनु—नारी तू दासी नहीं है। तू पुरुष की अर्द्धांगिनी है। तू कोमल है, अतएव बाहरी आक्रमण से तेरी रक्षा करने के लिए तुझे परिवार का कार्य सौंपा गया है। तू वहाँ की व्यवस्था और शासन करने के लिए स्वतंत्र है। तू देवी है, शक्ति है। पुरुष तो······

[नारी अपनी पारिवारिक उपयोगिता के कारण पूजी जाने लगी। उसे देवी का आसन मिला। कुछ और देवियाँ भी पूजी जाने लगीं। नारी ने सन्तोष की सांस लेकर उस दासता को स्वीकार कर लिया।

इसी भाँति हजारों साल गुजर गए। इन देवी-देवताओं से काम नहीं चला]

एक—साथियो बाढ़ आ गई है। बरुण देवता की पूजा की, इन्द्र की पूजा की, फिर भी यह मुसीबत नहीं कटी।

दूसरा—ये देवता हमारी रक्षा नहीं कर पाते हैं। इनके ऊपर कोई शक्ति काम कर रही है।

तीसरा—शक्ति······!

एक—हाँ, पिछले साल चिक का रोग फैला था। शीतला माता की पूजा की, फिर भी हमारे शहर में सैकड़ों बच्चे मर गए थे।

तीसरा—तो क्या होगा?

दूसरा—मैंने सुना है कि सब के ऊपर भगवान है। वह जो कुछ चाहता है, वही होता है।

तीसरा—भगवान! भगवान!!

पहला—चलो उसी की पूजा करें।

सब—चलो पुजारी जी के पास।

[मन्दिर में······]

सब लोग—पुजारी जी भगवान का प्रसाद दीजिए।

पुजारी—लो बेटा, यह तुमको सब मुसीबतों से छुटकारा दे देगा।

सब लोग—लेकिन महाराज, रोज एक न एक मुसीबत पड़ती है। वता हमारी रक्षा नहीं कर सकते। काली, दुर्गा आदि देवियाँ हमें नहीं बचा पाती हैं······।

पुजारी—बेटा ऐसा न कहो। यह तो भाग्य की बात है। भाग्य पुराने जन्म के पाप-पुण्य पर निर्भर रहता है। हमारे माथे पर विधाता ने भाग्य की रेखाएँ जन्म से ही रच दी हैं। उसी के अनुसार सब होता है। जो इस जन्म में पुण्य करता है, वह मरने पर स्वर्ग को जाता है और पापी नरक को।

एक—नरक—नरक !

दूसरा—जहाँ यमराज उसे दण्ड देते हैं। वहाँ भयानक यातनाएँ सहनी पड़ती हैं।······

सब—भाग्य ! भाग्य !!

पुजारी—भाग्य पर किसी का वश नहीं चलता है। उस पर सन्तोष कर लेना चाहिए······।

सब—चलो, भाग्य हमारे हाथ में नहीं है।

[आदि मानव ने कई मंजिलें लांघी। पहिले कल्पना और भय की दुनिया में रहा फिर सूर्य, नदी, आग, आदि प्राकृतिक शक्तियों से संघर्ष किया। प्रकृति के गीत गाए। फिर कबीले बने। पशु पालन हुआ। खेती हुई। कबीलों का आपसी संघर्ष हुआ। वीरों की उत्पत्ति हुई। देवता आए। बुद्धिमान लोगों ने मंत्र रचे। समाज को सुझाया कि वे सब देवताओं से सीखे गए हैं। पशुपालन, युद्ध, कृषि, शिल्प, विनिमय, धनागम के साथ-साथ दास बने। मनुष्य परिवारों से वर्गों में बंट गया······। दासता और शोषण के स्थापित हो जाने के साथ शोषक और शोषित वर्ग स्थापित हो गए······। शासन के अन्तर्गत मुख्य कर्तव्य दासों का नियंत्रण था।

धीरे-धीरे सेनाएँ आईं। उनका संगठन हुआ। हथियारों की सामूहिक शक्ति आई। राजा बने······। बड़े-बड़े किले बने······]

एक दास—अच्छा लोहा और पत्थर, बस हम सब काम कर सकते हैं।

दूसरा—इमारतें······मन्दिर हम सब कुछ बनाते हैं।

तीसरा—यह घर या मन्दिर नहीं है। यह किला है। इसका राजभवन काले-सुफेद संगमरमर और काले मूसा का बनेगा······। वहाँ राजपरिवार के लोग रहेंगे।—भीतर रानियों का अंतरंग महल, एक ओर नौकर-चाकर, आखिर में सैना। हजारों मनुष्य इसके भीतर रहेंगे······।

पहला—चुप—चुप!

[राजा आता है]

राजा—यह कितनी अच्छी कारीगरी है। दासों तुम्हारी शक्ति का यह महा प्रसाद सदा अमर रहेगा। आगे आने वाला युग जानेगा कि तुम में कितनी शक्ति थी।

[राजा जाता है]

पहला—महाराज चले गए। इस किले में अठारह हजार आदमी काम कर रहे हैं। इस पर राजा का नाम खुदा हुआ है। यह इस प्रतापी राजा का किला कहा जायगा।

राजा—मैं तुम्हारी बातें सुन रहा था। मेरा नाम इसमें रहेगा। लेकिन मेरे हाथ-पाँव तो तुम ही हो। तुम्हारी कारीगरी अमर रहेगी। मुझे जीने के लिए नाम चाहिए। तुम्हारी शक्ति का तो यह नमूना है। तुम्हारे बिना यह नहीं बनाया जा सकता था।

[राजा जाता है]

एक दास—शाबास दोस्तों, हम न हों तो यह किल्ला कैसे बन सकता था। आज राजा स्वामी है,कल वह मर जायगा। हमारा नाम तो......। दासों की शक्ति का परिचय......।

[लेकिन उत्पादन के नए साधन—और समाज के परिवर्तनों का मुख्य कारण उनका विकास ही था। इससे समाज की आर्थिक नीव बदल गई। श्रमिकों और मालिकों के बीच का सम्बन्ध उत्पादन पर रह गया। राजनीति बनी पर वह अर्थ के स्वार्थों की रक्षा के लिए ही थी। पूंजी द्वारा उत्पादक साधनों, मशीन और मजदूरों पर अधिकार करने के लिए चीजों का उत्पादन और वितरण आरंभ हुआ......]

नौक्स—पाँच लाख रुपया बेकार पड़ा था मिस्टर विक्टर

विक्टर—आपने क्या सोचा......

नौक्स—मैंने विशेषज्ञों से पूछा था। उनका कहना है कि चीनी के कारखाने में काफी लाभ होगा ......।

विक्टर—तो......

नौक्स—मैंने जमीन लेकर फैक्ट्री शुरू कर दी। पिछले साल एक लाख का फायदा हुआ...

विक्टर—एक लाख!

नौक्स—आशा डेढ़ लाख की थी, लेकिन कई फैक्ट्रियाँ खुल गई हैं। मैंने दस हजार रुपया तो सिर्फ विज्ञापन पर ही खर्च किया है। चीनी ज्यादा खाने से हड्डियाँ मजबूत होती हैं। चीनी के खिलौने बनाए हैं। मिठाइयाँ...! और आशा है कि अगले साल तीन लाख तक मिल जायगा।

विक्टर—तीन लाख!

नौक्स—विज्ञापन और तिकड़म चाहिए। मैंने मजदूरों को सूचना दे दी है कि कई फैक्टरी बन जाने के कारण मुनाफा नहीं है। आधों को नोटिस दे दिया है। फिर सस्ते दामों पर मजदूर रखूँगा और......

विक्टर—बात तो अच्छी है लेकिन इसके बाद...

नौक्स—साथ ही साथ मैं एक साहब से बातें कर रहा हूँ। वे इसे खरीद लेने के लिए तैयार हैं और उसके बाद मैं हैट फैक्ट्री खोलूँगा।

[पूँजीवाद की लहर आई। उपनिवेश बने। व्यापारिक कम्पनियाँ संगठित हुईं। व्यापार वाद पूर्णतया पूंजीवाद में डूब गया। मसीनों का प्रचार बढ़ा। चीजों के दाम गिरने लगे। एक वर्ग मोटर, महल का मालिक था और दूसरा पेट के लिए ठोकरें खाने लगा। विज्ञान की तरक्की के साथ साथ अन्धविश्वास मिटने लगे। रेल जहाज, वायुयान का आविष्कार हुआ। विज्ञान ने एक नई शक्ति का परिचय दिया—]

[नदी का किनारा—नदी बह रही है।]

एक मनुष्य—दोस्तों एक दिन वायु, नदी आदि प्रकृति की शक्तियों

से हम भय करते थे। आज हमने पानी की धारा की तेजी से विद्युत की शक्ति को अपने अधिकार में कर लिया है।

कुछ लोग—क्या कहा ?

मनुष्य—भाप की रेल गाड़ियाँ, तार, ग्रामोफोन, रेडियो...

कुछ लोग—आज हम प्रकृति पर भी विजय पाने की क्षमता रखते हैं ! प्राकृतिक शक्तियों पर विजय पाकर...!

[जिस प्रकार छोटी-छोटी मछलियों को बड़ी-बड़ी मछलियाँ निगल लेती हैं, उसी प्रकार छोटी-छोटी पूँजी के मालिकों को बड़ी-बड़ी पूँजी वालों ने हड़प लिया। खास-खास प्रदेशों के कच्चे और पक्के सब मालों का क्रय-विक्रय सारा अधिकार अपने हाथ में रखना ही तो साम्राज्यवाद की विशेषता है। शक्ति का नया रूप बैंक, स्टाक इक्सचेंज, आदि में दीख पड़ा... और पृथ्वी के पुनर्विभाजन के लिए एक एक भारी युद्ध हुआ...१९१४-१९१८ के वे दिन...

[ट्रक टैंक आदि का शोर...सिपाहियों का मार्च]

[मशीनगनों से गोलियाँ चल रही हैं ......। चारों ओर से गोलियों की बौछार आती है। सैनिक सावधानी से खाई से निकले......तोप का एक बड़ा गोला उनके पास आकर गिरता है। उसके बाद तुरंत ही दो और गोले......। अब तो मानों गोलों की वर्षा ही होने लगी है . ...मशीनगनों की खड़खड़ाहट......

घन्टे पर घन्टे और दिन पर दिन बीतते चले गए। कभी इधर से आक्रमण होता है और कभी उसका उत्तर दिया जाता है। खाइयों के आस-पास जो बड़े गड्ढे बन गए हैं, उनमें धीरे-धीरे लाशों के ढेर लग रहे हैं।

गरमी के दिन ! और मुरदे सामने मैदान में योंही पड़े हुए हैं। बहुतों के पेट फूल कर कुप्पे हो गए थे।

रात को शान्ति है। सिपाही मैदानों में तरह-तरह की चीजें ढूढ़ रहे हैं। कुछ मरे हुए सैनिकों की वस्तुओं पर अधिकार जमा लेते हैं।]

हई—लियर, छातों के रेशमी कपड़े मैं अपनी प्रेमिका के पास

भेजूँगा। इनकी अच्छी जनानी कुरतियाँ बनेंगी। भला वह क्या जानेगी कि जान जोखिम में डाल कर मैंने इसे पाया है।

लियर—गोलेबारी, आग, सुरङ्ग, गैस, टैंक, मशीनगनें, हाथ से फेंके जाने वाले गोले.........ये सब उनके लिए कुछ लिखे तथा सुने अक्षर मात्र हैं।

[हवाई जहाज की गड़गड़ाहट]

हेई—फिर हवाई जहाज आ पहुँचे......छुप जाओ दोस्तों। दिन निकलता है, संध्या होती है, रात आती है और फिर दिन निकलता है। लगातार युद्ध ......। सैकड़ों लाशों के बाद हम दो सौ गज जमीन जीत पाए हैं। जिसके चप्पे-चप्पे पर लाशें पड़ी हुई हैं। दूसरी, अठारहवीं, तेरहवीं......सब समाप्त हो गई हैं।

[१९१८ की ग्रीष्म ऋतु बहुत भीषण सिद्ध हुई। लेकिन चारों ओर चारागाहों में अनेक प्रकार के फूल फूले हुए थे। घास पर तितलियाँ उड़ती फिरती थीं। आकाश में सुन्दर तारे निकलते थे......। वर्षा होने लगी। आकाश में काले-काले बादल छाए......फिर शरद की चाँदनी भी खिली]

[टैंक, मशीनगन आदि का शब्द]

१६१४-१८ के वे दिन भी बीत गए। संसार में कुछ नए परिवर्तन हुए। सोवियत् रूस एक नए आश्चर्य के रूप में संसार के लोगों के सम्मुख चमका। कुछ लोगों ने अविश्वास तथा अन्य लोगो ने विश्वास के साथ कम्यूनिस्त रूस की ओर शंका से देखना आरंभ किया। वहाँ की पंचवर्षीय योजनाओं ने एक नया युग प्रारंभ कर दिया।

दुनिया में छोटी-बड़ी क्रान्तियाँ आईं। उपनिवेशों में यह लहर बही। टर्की, मेक्सिको, चीन आदि देशों पर भी प्रभाव पड़ा। भारत ने असहयोग आन्दोलन के रूप में शक्ति को अपनाया।

विज्ञान ने संसार में नए-नए आश्चर्यजनक आविष्कार किए। लोग उस पर विचार करने लगे।

[हवाई जहाज की गड़गड़ाहट......]

एक व्यक्ति—क्या सोच रहे हो वैज्ञानिक !

वैज्ञानिक—यही कि भारतवर्ष में मानसून के दिनों में मेंह बहुत बरसता है। यदि हम उस पानी को एकत्रित करके राजपूताना के रेगिस्तान में बहा सकते······।

व्यक्ति—असंभव ! असंभव !!

वैज्ञानिक—काश कि हमारे पास लाखों हवाई जहाजों का बेड़ा होता। उनकी छतों पर बड़ी-बड़ी टंकियाँ बनवा कर, हम इस मेंह के पानी को जमा करके रेगिस्तान में अच्छी फसलें तैयार कर सकते ·· ··।

[हवाई जहाजों की गड़गड़ाहट······गड़गड़ाहट······]

[आज के मध्यवर्गीय परिवार में·········]

माँ—बेटा, बहू पर भूत लग गया है। ओझा जी ने कहा है कि मुरगी मारनी पड़ेगी।

बेटा—नहीं माँ, यह सब तो झूठ है। मैं डाक्टर को बुलवा लाता हूँ। वह रोग ठीक कर देगा। जिसकी कोई व्याख्या और परिभाषा नहीं है, उसे विज्ञान नहीं मानता है।

माँ—तुम आज के सब लड़के तो नास्तिक हो······। भगवान की पूजा नहीं करोगे। ओझा जी ने तुझे कई बार मंत्रों से बचाया है। कई जप किए। कालीमठ के पुजारी जी को इसीलिए माहवारी रुपया भेजा जाता है।

[टेलीफोन की घंटी बजती है]

बेटा—माँ, डाक्टर साहब आने वाले हैं। उन्होंने फोन किया है।

माँ—डॉक्टर को दिखला ले; पर बेटा ओझा जी को बुलाने भी आदमी भेज दें।

[डॉक्टर आता है। मरीज को देखता है]

डॉक्टर—यह तो हिस्टीरिया का दौरा है। सेहत भली नहीं, बहुत कमजोर हैं। ठीक हो जावेंगी। यह सब पूजा, झाड़-पोंछ आप कुछ समय के लिए बन्द कर दीजिए। मरीज को खुली हवा में रहना चाहिए।

[आधुनिक विज्ञान के अनुसार तो मनुष्य स्वयं एक शक्ति है।

प्रत्येक व्यक्ति अपने में एक बड़ी शक्ति है। हमारी विचारधारा उसकी आधार है। विभिन्न विचार वाले व्यक्ति अलग-अलग वर्गों में बंट गए। ब्राह्मण, राजपूत, वैश्य और शूद्र का बँटवारा या ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, बानप्रस्थ, और सन्यास का विभाजन वेदों द्वारा भले ही किया गया हो, आज समाज की रूपरेखा बहुत बदल गई है। आर्य जिस शक्ति की पूजा करते थे, वह शक्ति आज वर्ग शक्ति में परिणित हो चली है।

बिगुल, बैंड, सिपाहियों के चलने की हलचल, टैंक, मशीनगन छूटने का शब्द...

[विज्ञान द्वारा मनुष्य ने सुन्दर-सुन्दर आविष्कार किए, किन्तु पूँजीवाद की बाढ़ ने 'मशीनी-पूँजीवाद' की प्रतिक्रिया में 'फासिस्तवाद' को जन्म दिया। और आज दो अलग-अलग शक्तियाँ, दो अलग-अलग विचारधाराओं का महायुद्ध हो रहा है।]

साम्यवादी—कम्यूनिस्त अपने विचारों और उद्देश्यों के छिपाने को बुरा समझते हैं। वह साफ तौर से घोषित करते हैं कि हमारा उद्देश्य सभी वर्तमान सामाजिक अवस्थाओं को बल पूर्वक उठा फेंकने से ही पूरा हो सकता है। शासक वर्ग को साम्यवादी क्रान्ति से काँपते रहने दो। सिवाय अपनी बेड़ियों के, जाँगरियों के पास खोने के लिए है ही क्या? और उसके पाने के लिए एक संसार है।

[आज हिटलर जनता की एक बड़ी शक्ति के आगे जर्मन के बहकाए तरुणों का संहार करवा रहा है।

इसी भाँति शक्ति इतिहास की कई पगडंडियाँ लांघ कर आज जन-शक्ति के रूप में पहुँची है।]

जंजाल

सुबह उठ कर रजनी बोली, "यह गृहस्थी क्या है? पींजरे में बन्द हूँ। खाना खा लेती हूँ और इस चहर दीवारी के भीतर पड़ी रहती हूँ।"

लालता छत में चारपाई पर लेटा हुआ सिगरेट फूंकता-फूंकता अखबार पढ़ रहा था; बात सुनकर भी बोगा बना रहा। रजनी का इस प्रकार झुंझलना, यह तो रोज की ही आदत है।

"सुनते हो......।"

लालता ने अखबार का पन्ना पलट डाला। मई ५, नई दिल्ली; क्या समझौते की संभावना है ? सरकारी विज्ञप्ति थी; स्वास्थ के कारण गांधी जी बिना किसी शर्त के छोड़ दिए गए हैं।

उस 'संभावना' वाले समाचार के साथ दूसरे कॉलम में लिखा था; कोहिमा घेरे में......

लालता ने सिगरेट की कश खींची। अखबार रख दिया। चुपचाप कुछ सोचता रह गया।

फिर बोली रजनी, "सुनते हो, मेहरी की तनखा, दूधवाले के दाम, मकान का किराया !"

लालता को सरकार का नया बजट याद आया। सिगरेट पर नया टैक्स, आमदनी पर सुपर टैक्स, चाय-काफी पर भी टैक्स। अर्थ सदस्य ने ऐसेम्बली में जो अनुमान पत्र पेश किया उसमें १० करोड़ चाय, काफी २ करोड़ और सुपारी पर २ करोड़ कर लगाया गया था। वह युद्ध का बजट था। एक यह रजनी है, जिसके बजट में सदा कमी रहती है। यदि सरकार ज्यादा बोलने और औरतों के आँसुओं पर टैक्स लगा देती, तो भले आदमियों की परेशानी कम हो जाती।

रजनी का कहना जारी था, "चीनी नहीं है, लकड़ी चार दिन और चलेगी। गेहूँ हफ्ते भर के लिए होगा और मिट्टी का तेल......।"

चीनी तो अब पुड़िया-पुड़िया बिकती है। खुशामद करने पर कहीं कोई एक सेर दे देता है। मिट्टी का तेल ! सर पकड़े खड़े रहो। सैकड़ों आदमी दूकान पर धावा किए रहते हैं। मारपीट और सिर फुड़ौवल के बाद एकन्नी का तेल पा गए तो गनीमत समझिए।

रजनी यह सब सुना सीढ़ियाँ उतर कर नीचे चली गई। लालता

जी अपनी अखबारी दुनिया का दौरा करने लगे। जबसे अखबार दुअन्नी का हो गया है। वह आवश्यकता, विवाह के विज्ञापन, साधारण विज्ञापन, समन आदि से लेकर प्रिन्टर और पब्लिशर तक का नाम पढ़ना नहीं छोड़ता है।

उसने अखबार उठाया। ओ' ब्लेडों पर भी कन्ट्रोल! सेवन ओ क्लाक सवा रुपए में दस का पैकट। वह अपनी दाढ़ी खुजलाने लगा। छै महीने से टूटे हुए ब्लेड को घिसते-घिसते परेशान हो उठा था। चोर बाजार में आठ आने को एक मिलता है। सोचा उसने कि लो बच्चू अब माला माल बनो। नहीं दोगे तो जेल की हवा खाओगे। अब तो लालता साहब महीने में दो ब्लेड बदलेंगे। कंजूसी नहीं करेंगे।

उधर रजनी चौके में पहुँची। आग सुलगाने को दियालाई ढूंढ़ी तो नहीं मिली। नीचे से पुकारा, "सुनते हो, कल कहा था कि माचिस चूक गई है।"

इस बात को सुनकर लालता चटपट उठा। पतलून पहनी, ऊपर कमीज डाली। चप्पल पहिन कर नीचे उतर गया। पान वाले की दूकान पर से चार पैसे की एक डिब्बी ले आया। सोचा कि दाम तो तीन ही पैसे होते हैं, पर यह लड़ाई का जमाना है। एक पैसा नाजायज फायदा पान वाला उठाने में नहीं चूका। रजनी को दियासलाई देकर वह छत पर पहुँच गया।

रजनी ने आग सुलगाई। वह आजकल अनमनी सी रहती है। अपने मन को डराती है, धमकाती है, फिर भी सुलझ नहीं पाती। मन खाली-खाली होता जा रहा है। अज्ञात ही यह पीड़ा है। सोचती है कि मायके जाकर शायद कुछ शान्ति मिल जाय। लेकिन उसका मन वहाँ नहीं लगता है। वहाँ उसे एक अपेक्षित उदासी घेर लेती है। और यहाँ वे हैं, जो उसकी कोई परवा नहीं करते हैं। मानो कि नौकरी करके अपना कर्त्तव्य निभा लेते हों। यह छोटा मकान, इसके तीन-चार कमरे ही उसकी अपनी दुनिया है और इसमें भरा सामान उसकी गृहस्थी। वह जानती है कि उसकी सरासर अवहेलना की जाती है! वे कभी-कभी तो जरा सी बात पर गुस्सा हो जाते हैं। उनक किसी से मतलब नहीं है। ऑफिस है, यार हैं, दोस्त......। कभी चार सीध

बातें तक नहीं करते हैं। क्या उसे इसी भांति सारी जिन्दगी काटनी है? उनका यह व्यवहार सही नहीं लगता है। दिन भर खाली बैठे-बैठे दिल ऊब जाता है। किताब पढ़ने को उठाती है और कुछ पन्ने टटोलकर रख देती है। मशीन खोलकर कपड़े सिलने को निकालती है और कुछ देर चलाकर आलमारी में बन्द कर देती है। वक्त फिर भी नहीं कटता है तो धूल भरे ग्रामोफोन को झाड़-पोंछ कर, उस पर रिकार्ड चढ़ाती है। सुइयाँ पुरानी हैं। स्वर मीठा नहीं निकलता है। वह रिकार्ड बज कर बंद हो जाता है। उसके मन का रोग बढ़ता ही जा रहा है। वह उपचार नहीं कर पाती है। पति से यदि वह सरलता से कोई सवाल पूछती है, तो वे ऐसा जवाब देते हैं कि वह मुरझा जाती है। अपनी बात किसे सुनावे समझ में नहीं आता है। शहर में नई फिल्म चल रही है। वह रोज देखती है कि उसका विज्ञापन बैंड बजाकर किया जाता है। वह उसे देखना चाहती है, पर……। उनको फिल्म देखने का शौक नहीं है। मोहल्ले की औरतें तारीफ करती हैं, तो वह मन मसोस कर रह जाती है। उसके मन में विद्रोह उठता है। निश्चय करती है कि उनसे झगड़ेगी। लेकिन उनके आगे चुप रह जाती है।

लालता इस सारे धन्धे को समझता है। पत्नी को पहचान कर चाहता है कि हर तरह उसे सुख दे। वह अपने को सामर्थवान नहीं पाता है। नौकरी है, चार पैसा मिल जाता है। नौकरी के भीतर उत्साह नहीं है। इस युद्ध ने उसकी सारी जिन्दादिली छीन ली है। चीजों के दाम चौगुने, पँचगुने और अठगुने हो गए हैं। अब वह नौकरी के श्रम के मूल्य से परिवार की सही गुजर नहीं चला पाता है। वह लाचार है। युद्ध के दिन बीतते नहीं नजर आते हैं। रजनी के मन में तो पिता के घर का बड़प्पन है। वह उसे ससुराल में आकर नहीं बिसार पाती है। घर की आमदनी के मुताबिक वह जैसा चाहे शौक करे। वह कब मना करता है! लेकिन रजनी जरा-जरा बात पर दुःख मोल ले लेती है। जिसका कि उसके पास कोई उपाय नहीं है। वह उसे समझाता है, तो वह रोने लगती है। वह इसी लिए अधिक बात नहीं करता है। रजनी मायके जाना पसन्द नहीं करती है। इस घर की गरीबी का हाल

वहाँ सबको ज्ञात है। उसकी बड़ी बहिनें अपनी घर-गृहस्थी का हाल सुनाती हैं। उसके पति की छोटी तनखा का हाल सुनकर आश्चर्य चकित रह जाती हैं। आजकल तो गधे भी मिलटिरी की नौकरी में बड़ी-बड़ी तनखा पा रहे हैं। पर लालता इस सबके लिए कसूरवार नहीं है। उसे रजनी की तुनक मिजाजी का अनुमान है। वह परिवार की सबसे छोटी और लाडली बेटी रही है। वह स्वयं उसे सब सुख देना चाहता है, पर स्थिति दिन-प्रति-दिन नाजुक होती जा रही है। यह युद्ध हिमालय पहाड़ की भाँति परिवार के आगे खड़ा हो गया है, जिसे पार कर लेना आसान नहीं। नहीं तो भला लालता रजनी को राजरानी की भाँति न रखता। नौकरी है और उसका झूठा मान! बाजार का भाव बढ़ता चला गया, लेकिन उसके श्रम का मूल्य स्थिर सा है। उस पर कोई असर नहीं पड़ा। रुपए का मूल्य चार आने, दो आने भर रह गया है, पर तनखा में वह पूरे सोलह आने का माना जाता है। वह रजनी को अधिक नहीं समझाता है। उसे असन्तोष है और इसका एकमात्र कारण यह युद्ध है। जिससे वह स्वयं लड़ रहा है। रजनी रो देगी। लालता को परिस्थितियों से युद्ध ही करना है। उसने जो माँ का दुलार पाया, वह पति दुलार से अधिक भावुक था। लेकिन वह दुलार युद्ध से पहिले का है, आज उस पर जमाने की मँहगाई का असर जरूर पड़ गया होगा। मनुष्य की भावनाएँ तथा विचार परिस्थिति के अनुसार ही परिवर्तन शील हैं।

गेहूँ सवा दो सेर, कभी डेढ़ की ओर झुक जाता है। अच्छे चाँवल देखने को नहीं मिलते हैं। लाल भुँजिया चाँवल सवा सेर हैं। कपड़ों पर मुहर तो लगी है, पर दो रुपए वाली साड़ी पर ७॥=)॥ छपा देखकर, बैरंग ही लौट आना पड़ता है। घी बन्द है, 'दालदा' ठाठ से इस्तेमाल हो रहा है।

"सुनते हो, चाय बन गई।"

लेकिन मिस्टर लालता उठे नहीं। उसी भाँति लेटे रहे, तो कुछ देर के बाद देवी जी खीजती हुईं ऊपर आईं और चाय का प्याला मेज पर रख कर चली गईं। जाते हुए सीढ़ियों में चलने का धमाका कुछ भारी था, मानो कि गुस्से में गई हों। वह तो 'प्लेट' पर चाय उडेल कर पीने लगा। चुपचाप

पीता ही रहा। चाय पीकर खाली प्याला और प्लेट मेज पर रख दीं। अब अखबारी दुनिया से दूर अपनी दुनिया में लौट आया। खिड़की से बाहर उसकी दृष्टि ऊँची-ऊँची छतों पर पड़ी। बाहर खुले आकाश पर उसकी निगाह हवाई जहाजों के उड़ते हुए बेड़े पर पड़ी। उनका भर, भर, भर……। सोचा कि वे फाइटर हैं या बम्बर ! यह युद्ध का जमाना है, सड़कों पर अजीब शक्ल के ट्रैक, टैंक, मशीनगन आदि दिखलाई देते हैं। किसी जमाने में एक महायुद्ध दस हजार लाशों की नीव पर खड़ा होता था। आज तो महायुद्ध के एक अंश में लाखों सिपाही मारे जाते तथा कैद होते हैं। हजारों हवाई जहाज, टैंक, मशीनगनें और बन्दूकें नष्ट होती हैं या कब्जे में आती हैं। आज का युद्ध 'पूँजी' के बल पर खड़ा होता है, पहिले का युद्ध इन्सानी शक्ति पर निर्भर था आज 'पूँजी' विज्ञान को क्रय कर लेती है……।

रजनी तो गिलास पर चाय ले आई। प्याले पर उडेल कर बोली, "क्या सोच रहे हो ?"

"कुछ नहीं। हाँ, चीनी और गेहूँ तो आज आजावेंगे साँझ तक…।" झुंझलाकर रजनी ने बात काटी, "लाओगे तो खाओगे। मैं तो अब मुँह बन्द कर लेती हूँ।"

सावधानी से कहा लालता ने, "मेहरी कल रात नहीं आई थी क्या ? ओ' बरतन माँजने पड़े हैं, शाबास !"

उबल पड़ी रजनी, "मेहरी तो हूँ ही। माँ-बाप ने पाल-पोस कर इसीलिए तो इस घर में दिया था।"

"वाह दोस्त, तुम नाखुश हो गई……।"

रजनी ने घड़ी देखी, बोली, "आठ बज गए हैं। एक घंटा दिन क्या बढ़ गया कि आफत आ गई है। अभी दाल भी नहीं चढ़ाई है।" वह चुपचाप चली गई।

और यह जो मुसीबत भरा जमाना लालता पार कर रहा है। सरकारी एलानों में पढ़ता है कि १४६ शहरों में 'राशन-योजना' चल रही है, जिससे २ करोड़ ५० लाख की आबादी को खाना खिलाने की व्यवस्था

हैं। यानि ३७ करोड़ जनता को मुनाफाखोरों का आश्रित रहना पड़ेगा। वें मुनाफे खोरों की जाति, जिसने ४० लाख जनता को बंगाल में भूखों मर जाने दिया है। इन राशनकार्डों पर वर्तमान की एक कच्ची नीव है, जिसे बड़े-बड़े व्यापारी किसी भी समय नष्ट कर सकते हैं। राशन की दूकानें हैं, जहाँ कूड़ा करकट मिली राशन दिए जाने की व्यवस्था है और उसके मुकाबले पर हैं, खुली मंडियाँ। न मंडी पर सरकार की व्यवस्था लागू है, न जनता का विश्वास वहाँ है। सारी व्यवस्था के भीतर जनता की पस्त हिम्मती चुपके-चुपके फैल गई है। तरकारी अधिक बोओ के विज्ञापनों का उपयोग अपढ़ जनता नहीं कर पाती है। उसके आफिस की लाल फीते वाली फाइलें, जिनके बल पर कि हुकूमत चल रही है। आइ० सी एस० की एक जाति, जो शासन करने के लिए तैयार की गई है। यह शासन करना एक मानवीय कला है। जिससे कि एक जाति अन्य जातियों के विचारों तथा धर्म पर अपना अधिकार जमा लेती है। लेकिन उन फाइलों के लाल फीते सड़ गए हैं। वे आवश्यक, जरूरी, तुरंत आदि की स्लिपें मैली पड़ गई हैं। वहाँ युद्ध पर बातें होती हैं। जापानियों की विजय की चर्चा होती है। भारत में पञ्चायती राज्य स्थापित होगा। वहाँ के लोगों की भावना नौकरशाही-विरोधी ही नहीं है, वे जापान पर आशा लगाए हैं कि उनको इन संपेरों से छुटकारा दे देगा। वे ब्रह्मा, मलाया, सींगापुर की आजादी की कहानियाँ सुनाते हैं। कहाँ से ये कहानियाँ चली आती हैं, कोई नहीं जानता है।

अब लालता उठ बैठा। सीढ़ियों से नीचे उतरा। रजनी तरकारी छौंक रही थी। वह चुपचाप रसोई के पास खड़ा होकर बोला, "दोस्त क्या हो रहा है?"

रजनी ने भारी उत्तर दिया, "आज अभी नहाए तक नहीं हो। क्या ऑफिस नहीं जाओगे?"

"नहाना! लो यह पाँच मिनट का काम है।" कह कर वह भीतर गया और बनिआयन-तौलिया ले आया। फिर रसोई के पास खड़ा होकर बोला "मिठाई खिलाओ, तो एक बात सुनाऊँ।"

रजनी चुप रही।

तो बोला लालता, "नहीं सुनोगी।"

और कह ही बैठी रजनी, "यही न कि अब गेहूँ ढ़ाई सेर हो गया है। या फिर बंगाल में इतने मर गए। कहती हूँ अखबार बन्द कर दो। चार रुपए की खुराक खाओ...।"

"अखबार बन्द कर दूँ रजनी। सारे मुहल्ले में तो एक लालता बाबू के घर अखबार आता है। रोज सुबह आँख खुलते ही लंदन, बर्लिन, टोकियो, न्यूयार्क की खबरें कहाँ से सुनने को मिलेंगी।"

"फजूल खर्च करने को तो...।"

"ठीक है रजनी। तेरी फरमाइश अगले महीने पूरी होगी। एक चौकोर बूटों वाली बम्बई डिजाइन की साड़ी न! यही बारह-तेरह में आ जावेगी। तय रहा। पहली तारीख को जो बजट बनेगा, उसमें...।"

"चुप रहो।" बात काटी रजनी ने, "हर महीने यही कहते हो। मुझे तो शौक है नहीं। शादी को चार साल हो गए। आज तक एक कपड़े का टुकड़ा लाकर दिया है। मायके वाले यदि...।"

"लो यह कहाँ की बात कहाँ पहुँच गई। गाँधी जी छूट गए हैं रजनी। यही तुझे सुनाना चाहता था।"

"तो मैं क्या करूँ?"

"तू कहती है क्या करूँ। कितना नाजुक वक्त है। यह हमारे पूर्वी दरवाजे पर जापानी आ पहुँचे हैं। जनता शक्ति हीन है। बंगाल भुखमरी के भारी दौरान से निर्बल पड़ा हुआ करवटें ले रहा है। ऐसी स्थिति में गाँधी जी, आजाद और नेहरू ही जापानी फासिस्तों से देश की रक्षा कर सकते हैं।"

रजनी तेजी से पतेली में कड़छी चलाती रही। लालता कुछ देर खड़ा का खड़ा उसे देखता रहा, फिर गोसलखाने की ओर बढ़ गया। रजनी उसी भाँति कड़छुली चलाती रही। फिर उसने पतेली में पानी डाला और कटोरी रख दी। आलमारी में से कन्सटर नीचे उतारा। एक गिलास आटा सान लिया। गाँधी जी के छूट जाने से उसे कुछ सहारा नहीं

मिला है। चौका बरतन तो आज भी करना पड़ेगा। गाँधी जी बीमार थे। वह बात जरूर उसके मन को छू लेती थी। लेकिन पड़ोस का लड़का जेल गया था। उसकी बहू रजनी के पास आकर घंटों रोती है। सुना कि उस लड़के को प्लूरसी हो गई है। क्या वह लड़का छूट जावेगा? उस बहू का पक्ष लेकर कई बार रजनी ने गाँधी जी को कोसा है। लालता ने सारी बात सुनी है। वह इस पर कभी दलील नहीं करता है। रजनी उठी, उसने अपने पिछले कमरे की खिड़की खोली। वहीं से पुकारा, "रमेश की बहू गाँधी जी छूट गए हैं। अब रमेश भी जल्दी छूट जावेगा।"

वह रमेश की बहू को यह बात सुना कर लौट आई। चुपचाप रसोई के पटड़े पर बैठ कर रोटियाँ सेंकने लगी।

लालता नहा कर लौटा। रसोई में बैठ गया। रजनी ने खाना लगा, थाली आगे सरका कर पूछा, "अब तो रमेश छूट जावेगा।"

"रमेश! किसने कहा?"

"गाँधी जी छूट गए हैं न।"

"अच्छा, अब तो तुम राजनीति भी समझने लगी हो। फूहड़ नहीं हो। हाँ, समझौते की संभावना तो है ही।"

कह कर लालता चुपचाप खाना खाता रहा। यह गाँधी जी का छूट जाना नई उम्मीदें और आकांक्षाएं ले आया था। कई बातें एकाएक उसके मन में उठीं। क्या हिन्दू-मुस्लिम एकता हो जायगी! राष्ट्रीय सरकार आ जाने पर देश रक्षा का प्रश्न तो स्वयं हल हो जावेगा। मानवता तथा राष्ट्रीय-कसोटी के नाते उस भूखे बंगाल की आँखें तो गाँधी पर लगी होंगी, जो एक तूफान में अपने लाखों पुत्र-पुत्रियों को खो चुका है। जहाँ नारी ने कलंक पोंछ दिया, मान-मर्यादा लुटा दी, जहाँ पाँचवा दस्ता प्रचार करता फिरता है कि गाँधी जीके नाम पर जापानियों को मदद दो। शायद अब गाँधी के शब्द उनके कानों में गूंज उठेंगे—'मुझे जापान की सहायता, चाहे वह भारत को स्वतंत्रता दिलाने के लिए ही क्यों न हो, नहीं चाहिए।'

रजनी का मन अनायास उमड़ आया। रमेश छूट आवेगा। वह

अधिक नहीं सोचती है। उसकी बहू से जो सुना है, उससे उतनी ही परिचित है। वह बहू इतना ही जानती है कि जेल में रमेश बीमार है। वहाँ उसकी ठीक परिचर्या नहीं होती है। लालता ने एक बार कहा था कि रमेश की सेहत खराब है। वह शायद ही भला हो। तो क्या रमेश बहुत बीमार होगा? वह क्यों जेल गया है, यह उसकी बहू भली भाँति नहीं जानती है। गाँधी जी पकड़े गए थे। शहर में एक अजीब सी हलचल हुई। रमेश घर से गया था और लौटा नहीं। सुना उसे जेल हो गई थी।

लालता खा पीकर ऑफिस चला गया। रजनी ठीक तरह खा भी नहीं पाई थी कि उसने दरवाजे पर खटका सुना। दरवाजा खोलकर देखा कि रमेश की बहू खड़ी थी। वह बात का समाधान करने आई थी। रजनी छत पर से अखबार उठा लाई। अपनी सातवीं तक पढ़ी अँग्रेजी के बल उसने थोड़ा बहुत मतलब निकाला, लेकिन अधिक कुछ नहीं जान सकी; पर उसने रमेश की बहू को दिलासा दिया कि पहिले ऐसा ही हुआ था। भारी उत्साह में उस बहू ने रजनी की सहायता की। उसका मन उमड़ रहा था। यह समाचार एकाएक सुनाई पड़ा। अन्यथा वह तो निराश हो चुकी थी। हर एक तो यही कहता था कि लड़ाई तक कोई छूट कर नहीं आता। एक श्रेय नाउम्मेदी के बाद वह अधिक नहीं सोचती थी। आज उसने रजनी से विनती की कि नए डिजाइन के चौकोर खाने वाली 'स्लिप ओवर' बुनने के लिए सीकों पर घर डाल दे। बीस महीने के बाद आज उसने फिर उसे बुनने का निश्चय किया है। एक बार तो कुछ बुन कर उधेड़ चुकी थी।

दिन कट गया। जैसे कि आज का दिन बहुत छोटा रहा हो। साढ़े-चार बज गए! लालता घर लौट आया, आते ही रजनी से बोला, "आज ट्यूब-टायर दोनों फट गए। ग्यारह रुपये की चपत पड़ी। लड़ाई के जमाने में चौगुना पैसा खर्च करने पर अच्छा माल नहीं मिलता है। यहाँ एक साइकिल रखना हाथी पालना सा हो रहा है।"

सहानुभूति प्रकट की रजनी ने, "तो साड़ी की खरीददारी एक महीने और टालनी पड़ेगी।"

"नहीं-नहीं, आठ महीने तो टालते-टालते हो गए हैं। रोज कोई न कोई नया खर्च आ जाता है। साइकिल वाले को फिर...।"

"उधार लेना ठीक नहीं होता है।"

लेकिन लालता ने जेब से एक लिफाफा निकाल कर रजनी के हाथ पर दे दिया। उस पर सुन्दर अक्षरों में रजनी का पता लिखा हुआ था। रजनी पुलक उठी। खुश होकर बोली, "कौशल्या जीजी की चिट्ठी है।" जल्दी-जल्दी पढ़ने लगी।

कुछ देर बाद पूरी पढ़ कर बोली, "आज अठारह, कल उन्नीस, परसों बास तारीख है। जीजाजी और जीजी दो बजे मेल से आवेंगे।

लालता चुपचाप सुनता रहा। बोली फिर रजनी, "वे कलकत्ता एक बड़े ठेके के सिलसिले में जा रहे हैं। तीन-चार दिन यहीं ठहरेंगे। यह मकान क्या है, पिटारा है। कई बार कहा कि कोई ठीक सा मकान ले लो, पर कौन सुनता है। मेहरी रांड को इन दिनों ही बीमार पड़ना था। और महाराज, घर में रासन-पानी भर लो। बार-बार नून, तेल और लकड़ी के लिए कहाँ बाजार दौड़ते फिरोगे।

इस लेक्चर को सुनकर चुपके पूछा लालता ने, "कुछ रुपए तो नहीं पड़े होंगे।"

"रुपये! तुम तो कभी देते ही नहीं हो। कहाँ से होंगे फिर?"

"शायद कुछ निकल आवें, सन्दूक पर ढूंढ़ तो ले।"

"मेरे पास तो एक पैसा नहीं है। यही दो-चार आने पैसे पड़े होंगे। पिछली बार तुमको पन्द्रह तो दिए थे।"

"यह महीने का आखरी हफ्ता है किसी से उधार भी तो नहीं मिलेंगे।" कह कर लालता अपने कमरे में पहुँचा और चुपचाप कपड़े उतारने लग गया। उसे आज एक नया अनुभव हुआ। साहब ने उसे बुलाकर सुनाया था कि मिस्टर अरविन्द आ रहे हैं। उनको यह जानकर आश्चर्य हुआ था कि लालता उनका रिश्तेदार है। उन्होंने अरविन्द की टाइपवाली चिट्ठी लालता को देते हुए सुनाया था कि सब इन्तजाम ठीक हो गया है।

एम० ई० एस० का डाक बंगला खाली है। वह गोरा साहब बात-बात में उनकी तारीफ करता था। साथ ही दिलासा दिया था कि कोई जरूरत हो तो उनसे कहा जाय। अरविन्द को वहाँ कोई तकलीफ नहीं होनी चाहिए। उस अरविन्द ने उसे चिट्ठी नहीं लिखी। कौशल्या ने अपनी बहिन को सूचना भर दी थी कि वह आ रही है। इस व्यवहार पर वह खिन्न हुआ। सोचा फिर कि यह गोरा साहब जो बात-बात में हिन्दुस्तानियों को गाली देता है। जिसका कहना है कि वे ही शासन करना जानते हैं। उस जिद्दी और घमंडी व्यक्ति ने आज लालता से हाथ मिलाया। उससे कई बातें पूछीं। अरविन्द यह सांप और संपेरे का खेल पैसे के बल पर खेलता है।

तभी रजनी के कमरे से आवाज आई, "सुनते हो......!"

लालता ने पतलून किलड़ी पर टांग दी। पायजामा पहन लिया। कुछ देर चुपचाप खड़ा रहा। अब उसने रजनी के कमरे में जाकर देखा कि वह अपने दोनों संदूक खोल कर, चारों ओर कपड़े फैलाए हुए, उनके बीच बैठी हुई है। लालता से बोली "लो नाक तो मेरी कटती......। सुनो, सब सामान ले आना। पापड़, मुरब्बा, अचार......। कुछ फल भी......। जीजी भिंडी अच्छा मानती है। करेला और कटहल भी ले आना। और देहरादून की बासमती......। यह घर थोड़ी है। धर्मशाला है। चार-चार आने का सौदा रोज आता है। सोचा था कि अबके नुमायश में कुछ कपड़े खरीदूँगी......।"

लालता ने देखा कि दस-दस के दो नोट थे। रजनी साड़ियाँ, ब्लाउज देखने में लीन थी। इन दो-तीन दिनों में वह क्या-क्या पहनेगी। छांट-छांट कर वह कपड़े निकालने लगी। फिर बरतनों का संदूक खोला। वहाँ से बरतन बाहर निकाले, सोचा कि कल रमेश की बहू के साथ वह मकान की सफाई करेगी। ठीक कुरसियाँ तक नहीं हैं। सारी जमा-पूँजी चार बेत की कुरसी और एक मेज है, जो तीन साल बाद अब टूट गए हैं। बैठक की दरी पर मनों धूल जम रही है। आज रात को उसे नल के नीचे डाल देना चाहिए। और पलंग बुनवाना है। वह लालता से बोली, "दो दिन के लिए कहार को

रखलो हम जैसे रहें, बाहर वालों के आगे तो......।"

लालता कुछ कहे कि वह कहती रही "सुनते हो, तीन-चार कुरसियाँ भी कहीं से......।" बस चुप हो गई।

लालता ने सुना और कुछ नहीं बोला। वह रजनी से नहीं कहना चाहता था कि अरविन्द यहाँ नहीं टिकेगा। व्यर्थ में उसका उत्साह क्यों कम करे। आज वह मुरझाई हुई रजनी में एक नूतन जीवन भांप रहा था। वह कौशल्या का पत्र फिर रजनी के हाथ पर था। वह उसे पढ़ रही थी। उन चंद लाइनों का अर्थ साफ था। लेकिन रजनी तीन-चार बार उसे पढ़ चुकी है। लालता बाहर चला आया। साँझ को वह अपने दोस्तों की जमात में ब्रिज खेलने नहीं गया। चुपचाप शहर से बाहर एक सूनी सड़क पर घूमने निकला था। बड़ी दूर तक बढ़ गया। एक बात स्पष्ट हुई कि रजनी और कौशल्या दो अलग-अलग व्यक्तित्व हैं। जिनका सम्बन्ध लालता और अरविन्द की आर्थिक-कसौटी पर निर्भर है। जिनका समाज एक वर्ग के दो अलग-अलग टुकड़े हैं। वे अपना-अपना दायरा बना कर समाज में नई शाखाओं का निर्माण कर रहे हैं। आदिम इन्सान इसी प्रकार वर्गों में टूटता-टूटता हुआ, आज की इन विचित्र विचार-धाराओं तक पहुँच गया है। कई-कई वर्ग आपस में जुड़ कर टूट जाते हैं। इन वर्गों की गिनती करना संभव बात नहीं है। इन्सान ने कभी एक दिन अपने को अजीब सी टुकड़ियों में बांटा था। सिर ब्राह्मण, हाथ राजपूत, वैश्य और शूद्र! ये अपनी सीमा से बाहर बढ़े। इन सारे वर्गों के भीतर आज जो एक धुंधली तसवीर का ढाँचा बन रहा है—एक वर्ग हीन समाज का......। ग्रीस की सभ्यता ७३ बी० सी०! दासों का विद्रोह! ६००० दास कत्ल कर दिए गए थे। रोम का साम्राज्य जहाँ आरामी के लिए लाखों मुहरों का अपव्यय होता था; वहीं आज फासिस्त मुसोलिनी के पाँव लड़खड़ा रहे हैं......।

उस सूनी सड़क पर एकाएक ट्रकों की आवाज सुनाई पड़ी। बीच-बीच में हार्न बजते थे। धीरे-धीरे ऊँची-ऊँची अमरीकन लारियाँ बढ़ने लगीं। अजीब बेडोल से ट्रक! सिपाही!! किसी के पास व्यर्थ का समय नहीं है। चीन

अमरीका और ब्रिटेन ! क्या गांधी जी के छुटकारे के साथ कोई सुलझन आवेगी ? क्या भारत को वह दरजा मिलेगा, जो चीन को दिया जा रहा है। या वह पीछे भी एक उपनिवेश रहेगा। यह सन्देह उठता है। पोलैंण्ड, फिनलैंड, अपनी माँगे रख सकते हैं। फिर भारत का दरजा......। अमरीकन और ब्रिटिश साम्राज्यवादी राजनीतिज्ञ, जिनका आज तक का लेखा-जोखा उपनिवेशों को हथियाना भर रहा है, आज भी साफ-साफ कुछ नहीं कहते हैं। उनकी जनता की आवाज अभी उनकी आवाज नहीं बन पाई है।

उस युद्ध के वातावरण से वह समझ रहा है कि कोहीमा पर जापानी अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा रहे हैं। यह उनका एक भारी दाँव है। आज तक टोजो जापानी जनता को धोखे में डालता रहा है कि हिन्दुस्तान, जो सोने की चिड़िया है, वे उस पर शीघ्र ही विजय प्राप्त करने वाले हैं। आज जनता के उठते अविश्वास के सन्तोष के लिए······

लालता घर लौट आया। रजनी से अधिक बातें नहीं हुई। रजनी अपने में न जाने क्या-क्या सोच रही थी। वह रात भर सोचती रही कि कौशल्या जीजी आ रही है। बचपन में वे साथ-साथ सोती थीं। आज मायके की दुनिया से दोनों बड़ी-बड़ी दूर हैं। आज आपस का फासला समीप का नहीं है। विज्ञान के इस युग मे भी वे बड़ी दूरी पर रहती हैं। वह भूगोलिक दूरी अनजाने सी बढ़ गई है।

अगले दिन भर रजनी व्यस्त रही। रमेश की बहू ने हाथ बँटाया। लगभग चार बजे थक कर लेटी आराम कर रही थी कि किसी ने बाहर की सांकल खटखटाई। वह उठी। दरवाजे के पास खड़े होकर पूछा, "कौन है ?" उसके स्वर में आलस्य का भाव था। आँखों में नींद भरी की भरी थी।

"मैं हूँ रजनी !" कौशल्या का स्वर था। जीजी आज ही आ गई है। रजनी अपने मन में घबरा उठी। आज सांझ को सौदा लाने की बात थी। कहार का छोकरा कल सुबह से लगाया गया है। इस समय तो घर में कुछ नहीं है। वह संभल गई। लाचारी दरवाजा खोला। भले ही स्वागत करने तैयार न थी, पर मजबूरी में क्या करती ?

कौशल्या भीतर आई। नौकरानी साथ थी। उसकी गोदी में गुड्डा सा बच्चा था। रजनी ने जीजी के पाँव छू लिए। अवाक खड़ी रह गई। दरी तक कमरे में नहीं बिछी है। अभी तो वह कमरे की सफाई करके निपटी है। उलझन में कमरे में पहुँची। कौशल्या कुरसी पर बैठ गई। रजनी चुपचाप खड़ी थी। बोली कौशल्या, "बैठ जा रजनी। तू तो बड़ी दुबली हो गई है। क्यों क्या बात हो गई है?"

रजनी ने कोई उत्तर नहीं दिया। बात का समाधान करते हुए कहा कौशल्या ने, "मेल में सीट रिजर्व नहीं हुई। तेरे जीजा जी को जरूरी काम था। 'कार' से हम लोग आए हैं। आज कल तो सफर करना बड़ी मुश्किल बात हो गया है। यह लड़ाई न जाने कब तक चलेगी। तेरे जीजाजी कहते हैं, सात साल तो और चलेगी ही।"

अब साहस कर पूछा रजनी ने, "जीजाजी कहाँ हैं?"

"वे तो डाक बंगले में ही हैं। लालता वहीं है। मैं तो तुझे लेने आई हूँ।"

"डाक बंगले में......, यहाँ तो......।"

लेकिन बोली कौशल्या, "तू जल्दी तैयार हो जा रजनी, चार बज गए हैं। वे चाय पर हमारा इन्तजार कर रहे होंगे।"

दाई की गोद में छोटा बच्चा था। रजनी उसे लेने को बढ़ी थी कि वह रोने लगा। कौशल्या हँसी। बोली, "वह मेरे पास ही नहीं आता है। मैं भी बरी हूँ। नहीं, कहाँ-कहाँ बच्चे को साथ ले जाऊँ।"

रजनी बहुत बातें करना चाहती थी; पर जीजाजी तो उसका घर पराया सा समझ कर, डाक बंगले में टिक गए हैं। वह उनसे चुटकी लेगी। यह जीजी बहुत बदल गई हैं। पहिले कितनी दुबली-पतली थी। साँवला सा रंग था। अब देखने में उससे सुन्दर लगती है। उसने कान के हीरे के टाप्स भांपे। गले में नए डिजाइन का हार है। वह चुपचाप जीजी को देख रही थी। आज दोनों सगी बहिनों में कितना अन्तर है। क्या यह भाग्य की बात होगी?

कहा ही कौशल्या ने, "रजनी, तू तो खड़ी ही है। जल्दी तैयार हो जा न।"

इस आदेश का खयाल करके वह भीतर गई। उसने सुन्दर साड़ी ब्लाउज पहिना। कानों में बड़े-बड़े इयररिंग लटकाए। मुँह पर क्रीम मला। एक बड़ी सी टिकुली माथे पर लगाई। कुछ देर आइने के आगे खड़ी होकर अपना रूप निहारती रही। मन को विश्वास दिलाया कि वह आज भी बहुत सुन्दर है। गरीब घर में है तो क्या हुआ ?

अब वह बाहर चली आई। सीढ़ियों से नीचे उतरी। दरवाजा बन्द किया। जीजी के साथ 'कार' पर बैठी। कुतूहल से आसपास के 'फ्लेटों' पर दृष्टि डाली। देखा कि वहाँ से औरतें झाँक-झाँक कर उनको देख रही थीं। उसे अपार खुशी हुई। वे डाक बँगले पहुँच गईं। रजनी ने देखा कि बाहर बरांडे पर कई लोग बैठे हुए थे। वह कौशल्या के साथ चुपके भीतर चली गई। कमरे में रंगीन सोफा सेट बिछा था और फर्स पर पर्शियन कार्पेट था। इधर-उधर सुन्दर चमड़े के सूटकेश, हालडौल आदि थे। सारा सामान सँवार कर धरा हुआ था।

लालता भीतर आया। रजनी से बोला, "ये लोग तो सुबह ही आ गए थे। मुझे तीन बजे मालूम हुआ।"

रजनी चुप रही। तभी बेहरा ने आकर पूछा, "चाय का सामान लगाया जाय ?"

"साहब से पूछ ले।"

बेहरा चला गया। कुछ देर के बाद चाय का सामान आया। मिठाई, नमकीन, फल, अखरोट, काजू, बिस्कुट......। बड़ी मेज पर सारा सामान लगा कर बेहरा साहब को बुलाने चला गया। कुछ देर बाद अरविन्द आए। रजनी ने झुक कर प्रणाम किया। बोले वे, "रजनी तुझे क्या हो गया है। शायद यहाँ सेहत भली नहीं रहती है। अच्छा अब के हमारे साथ मसूरी चलना।"

कौशल्या चाय बना-बना कर प्यालियाँ बढ़ाने लगी। सब चाय पीने

लग गए। आज रजनी को चाय पीने में अपार आनन्द आया। चार साल में वह इस प्रकार की चाय पी रही थी।

अरविन्द लालता से बातें कर रहे थे, "आजकल का रोजगार...! मिनटों में लाखों का वारा-न्यारा हो जाता है। इस समय मेरे पास सत्तर लाख के ठेके हैं। सालों के गले लड़ाई मढ़ दी गई। अब तो चंद महीनों में जापानी ठेके लेकर चैन से पड़े रहेंगे।"

"जापानी ठेके?" लालता ने सरलता से प्रश्न किया।

"हाँ जनाब, आसाम चंद दिनों की बात समझिए। जरा वे बढ़ तो आवें, क्रान्ति हो जावेगी। आज अब आप नहीं देखते हैं, सब लोग यही मना रहे हैं कि...।"

"और मैं ब्रह्मा में पगोडा देखने जावूंगी, मांडले की सैर करने। यह इनका वादा है।" कौशल्या मुस्कराकर बोली।

"शायद आप समझते हैं कि जापानी यहाँ स्वराज्य देने आ रहे हैं। लेकिन आप भ्रम में हैं। वे चीन की रक्षा करने का दावा भी तो करते हैं। मैडम चियांग का भाषण तो आपने पढ़ा होगा।"

"मैं भाषण-वाषण नहीं जानता मिस्टर लालता। मेरा रोजगार ऐसा है कि लाखों आदमियों से मिलना-जुलना होता है। आई० सी० एस० अफसर, आई० एम० एस०, लेफ्टनेन्ट, केप्टिन, मेजर...आज एक भी हिन्दुस्तानी बृतानिया की विजय नहीं चाहता है। १६०० ई० में ये आए थे। ३०० साल राज्य किया। हमारे सोने के देश को मिट्टी में मिलाने में नहीं चूके। हमारे पास एक मौका है। मैं तो, सब का विश्वास पात्र हूँ, सब बातें सुनता हूँ, फौजों में तो खबर फैली है कि रूस-जर्मनी और जापान-चीन दोनों की सन्धि होने वाली है। फिर चर्चिल साहब अपना 'रूल ब्रतानियां' अकेले ही गावेंगे। अमेरिका वाले रूजवेल्ट से पूछते हैं कि आखिर इस उधार-पट्टा का क्या होगा। हमें तो जर्मनी और जापान की जीत चाहिए। तभी छुटकारा मिलेगा।"

रजनी चुपचाप सारी बातें सुन रही थी। कभी कभी अवाक अरविन्द

की ओर देख लेती थी। लड़ाई और उसकी हार-जीत से उसका कोई संबंध नहीं है। हाँ, कौशल्या रोज ये ही बातें सुनती आई है। कभी-कभी उस पर दलील करने में नहीं चूकती। लालता ने चाय की प्याली खाली करके मेज पर रख दी। सिगरेट के टिन से एक सिगरेट निकाल कर सुलगाई। कौशल्या ने प्याली में चाय उड़ेल दी। लालता ने सिगरेट ऐशट्रे पर रखी और बोला, "आपकी फासिस्त भावनाएँ! यह देश का दुर्भाग्य है। जापान और जर्मनी दुनिया को युद्ध के दलदल में फंसाने के लिए जिम्मेवार हैं। जर्मनी ने रूस पर हमला किया। मजदूर और किसानों की सोवियतों ने उसपर तमाचा मारा। जापान चीन की जनता के ऊपर विजय प्राप्त नहीं कर सकता है। भारत का दुर्भाग्य! हमारा छोटा पूँजीपति आज चाहता है कि इस देश का व्यापार उसी के हाथ में रहे। वही यहाँ फले-फूले। वह वर्ग चाहता है कि जापान विजयी हो जाय। आज इंगलैण्ड युद्ध कर रहा है, वहां के पूँजीपति रूस और चीन के राष्ट्रों को देखकर घबड़ा उठते हैं, लेकिन लाचार हैं; अन्यथा चर्चिल और स्तालिन, तेहरान में न मिलते। वह साम्राज्यवादी ब्रिटेन की भारी हार थी। और महात्मा गाँधी का इस प्रकार बिना किसी शर्त के छूट जाना, यह चर्चिल एमरी की दूसरी हार है। कांग्रेस फासिस्त विरोधी है। आज राष्ट्र की रक्षा के लिए सब दलों की एकता जरूरी है। गांधी की संरक्षकता में, जवाहर-जिन्ना के नेतृत्व में, भारत की जनता का बच्चा-बच्चा फासिस्तों को मुँह तोड़ जवाब देगा।"

"आपकी चाय ठंडी हो गई है।" कहा कौशल्या ने, बोली फिर "मुझे आल्पस न जाने कब देखने को मिलेंगे। जिनेवा की झील का नौका बहार! इस लड़ाई ने सारा मजा किरकिरा कर दिया। हम बम्बई पहुँच भी नहीं पाए थे कि सुना पोलेण्ड पर हमला हो गया। सारे मनसूबों को लेकर लौट आए। फिर चुटकियों में देश के देश मिट गए। युरोप का नक्सा आज पहचानने में ही नहीं आता है। इधर जापान ने अपना कदम उठाया, सींगापुर, मलाया, ब्रह्मा...!"

लालता चाय की चुस्कियाँ ले रहा था। रजनी चुपचाप बिस्कुट

दाँत से तोड़ रही थी। बार-बार वह उन तीनों की ओर देखती थी। वह जानती है कि दुनिया लड़खड़ा रही है। ज्यों वक्त गुजरता जाता है, नई-नई बातें कान में पड़ती हैं। १६१४-१६१८ का युद्ध एक बीती हुई घटना भर रह गया है। अब दुनिया बहुत बदल गई है। कांग्रेस कई प्रान्तों में राज्य कर चुकी है, फिर एकाएक एक भारी तूफान आया। नेता जेल चले गए। कुछ आश्चर्य जनक घटनाएँ घटीं। हजारों आदमी पकड़े गए। पर यह गांधी जी की लड़ाई पिछली लड़ाई सी नहीं थी, न प्रभातफेरी में औरतें गईं, न बड़े-बड़े जलूसों में वे निकलीं। वह आँधी सी उठी और चुपके दब भी गई। वह सुन तो सारी बातें लेती है, पर उस सब पर अधिक विचार नहीं करती है।

"रजनी, तू क्या सोच रही है।" पूछा अरविन्द ने।

"मैं···!" वह बिस्कुट का टुकड़ा चबाती बोली। फिर चुप हो गयी।

"हाँ, इस लड़ाई में कौन जीतेगा?"

"मैं क्या जानूं?"

कौशल्या ने उबार लिया, कहा, "चर्चिल साहब जीतेंगे तो तुम राय बहादुर बन जाओगे। अस्सी हजार रुपया वायसराय फंड में देकर क्या इतना भी नहीं मिलेगा। यदि जापानी जीत गए तो सूली पर चढ़ोगे।"

"सूली पर?" रजनी ने आश्चर्य से पूछा।

"सुनते हैं कि वे 'अंधेर नगरी' के राजा की भाँति टके सेर भाजी, टके सेर खाजा वाला व्यापार करते हैं।" कहा कौशल्या ने।

दाद दी लालता ने, "खूब कहा आपने।"

कौशल्या कहती ही रही, "जापानी सिपाही औरतों की इज्जत नहीं करते। बच्चों को माँ के सामने संगीनों का शिकार बनाते हैं, और खुले-आम औरतों पर बलात्कार करते हैं। जब दिल्ली में मैडम चाँगकाईशेक आई थीं, तो मैंने उनका व्याख्यान सुना था। जापानी मनुष्य की संस्कृति के दुश्मन हैं। उनके काले कारनामे सुनाते-सुनाते मैडम की वाणी गद्गद् हो उठी थी। आखों में आँसू छलछलाए थे।"

रजनी अपनी जीजी के इस व्यवहार से दंग रह गई। सोचा कि

जीजाजी इस बात से अप्रतिभ हो जावेंगे। लेकिन वे मोटा सिगार मुँह से लगा कर उसका धुँआ उड़ा रहे थे। कुछ देर बिल्कुल सन्नाटा रहा। अन्त में बोला अरविन्द, "आज क्या प्रोग्राम है कौशल्या ?. चाहो तो कुछ शॉपिंग कर लिया जाय। सिनेमा चलते, पर सफर से थक गए हैं। कल चलेंगे। छै बज रहा है। मुझे तो साढ़े नौ बजे हर्बर्ट के यहाँ 'डिनर' पर जाना है। साला भी ताजिन्दी याद करता रहेगा मुझे ! उसे खूब उल्लू बनाया था। मनमानी चीजें पास करवा कर साठ हजार बात की बात में कमाया था। डेढ़ हजार में एक सेकिंड-हैंएड 'कार' खरीद कर 'पॉलिस-वालिस' करवा कर दे दी। हाँ, सोच रहा हूँ कल उसे 'लंच' पर बुलवालूँ। यही सौ-डेढ़ सौ का खर्चा है। कहता था कि उसे यह मालूम नहीं था कि लालता मेरे इतने नजदीक का रिश्तेदार है। नहीं तो अब तक दो-ढ़ाई सौ के आस पास पहुँचा देता। आजकल तो एक बूंद रोशनाई में क्या का क्या हो जाता है ? कोई देखने सुनने वाला थोड़े ही है।"

और वह उठ खड़ा हुआ। कहा, "जल्दी तैयार हो जाओ।" बाहर चला गया। वे तीनों उसी भाँति बैठे रहे। अब साहस करके बोली रजनी, "अच्छा जीजी तो कल सुबह आऊँगी।"

"क्या रजनी ?"

"छै बज गया है।"

"तो क्या हो गया। चल 'शापिंग' कर आवें। दो दिन के लिए तो मैं यहाँ आई हूँ। यहीं रह जा।"

रजनी ने लालता की ओर देखा। जैसे कि वही इस बात का निर्णय कर सकता हो। लालता ने कहा, "तू रह जा रजनी। ठीक बात है। मैं तो घर जाऊँगा। ताली कहाँ है ?"

रजनी ने रुमाल की गाँठ खोलकर ताली दे दी। लालता उठ रहा था कि बोली कौसल्या, "खाना खाने आइएगा। हम यही आठ बजे तक लौट आवेंगी।"

लालता चला गया। रजनी ने साइकिल उठाने की आवाज सुनी। वह उसी तरह बैठी रही। नौकरानी सब सामान उठाकर ले गई। वह अकेली-

अकेली बैठी थी कि आ पहुँचा अरविन्द, पूछा, "वह कहाँ चली गई हैं।"

"कपड़े बदल कर आ रही है जीजी। जीजा जी आप हमारे यहाँ क्यों नहीं आए, यह तो झगड़े की बात है।"

कब तक झगड़ोगी रजनी! मुझे यह मालूम नहीं था कि लालता यहाँ रहता है। एकाएक इधर चला आना पड़ा। मैंने 'फोन' से बात चीत करके डाक बँगला ठीक करवाया। तब कौशल्या बोली कि तुम लोग यहाँ हो। उसने शायद चिट्ठी भेजी थी। ऐसा कहती थी वह।"

"हाँ, जीजी की चिट्ठी आई थी।"

"अच्छा यहाँ कैसा लगता है? शहर तो बुरा नहीं है। किस मोहल्ले में रहती हो। आजकल मकान तो अच्छे मिलते नहीं हैं।"

तभी कौसल्या आ पहुँची। रजनी अपनी जीजी की सजावट देख कर दंग रह गई। वह तो मेमों की तरह लिप-स्टिक, मुँह पर गुलाबी-गुलाबी रंग और ऊँचे एड़ी के सैंडिल पहिने हुए थी। वह सारा पहनावा बहुत सुन्दर लग रहा था। अरविन्द टकटकी लगा कर रजनी को देख रहा था। अब वह उठा। तीनों बाहर निकले। कौसल्या और अरविन्द अगली सीट पर बैठे। कौसल्या 'कार' चला रही थी। रजनी अवाक् पिछली सीट पर बैठी थी।

बाजार पहुँच कर उन लोगों ने कई चीजें खरीदीं। कई तरह की दवाइयाँ, बिस्कुट, टाफी, मेवे, फल, आदि। कौसल्या ने बच्चे के लिए कपड़े लिए, अपने लिए साड़ियाँ लीं। रजनी सब कुछ अवाक् सी देखती रह गई। अरविन्द ने हरे रंग की एक साड़ी उठा कर कहा, "यह रजनी पर ठीक रहेगी।" रजनी के ना-ना करने पर भी उसके लिए दो साड़ियाँ और चार ब्लाउज ले लिए गए। अब वे 'बाटा' की दूकान पर पहुँचे। कौसल्या ने नए डिजाइन की 'डच सैंडिल' लीं। रजनी को उसके जीजाजी वैसी ही सैंडिल पहनाए बिना नहीं माने। कौसल्या ने क्रीम, पाउडर, रूमाल, नेल पेन्ट आदि कई चीजें लीं। सब चीजें कार पर रखकर वे लौट आए। रजनी ने अनुमान लगाया कि सारा सामान चारसौ से कम का नहीं था। जो कीमती दवाएँ खरीदी गई थीं, सो अलग।

बंगले पर पहुँच कर मिस्टर अरविन्द तो 'डिनर' पर चले गए। रजनी और कौसल्या ड्राइङ्ग रूम में बैठ कर दुनिया भर की बातें करती रहीं। लालता कुछ देर से आया था। कौसल्या अपने नए कुत्ते के जोड़े का हाल सुना रही थी। उसे पिछले साल उन लोगों ने दार्जलिंग में खरीदा था। उस जोड़े की कीमत आठ सौ रुपये थी। उसे अब तक तेईस इनाम मिल चुके हैं। मिस्टर अरविन्द को कुत्तों का बड़ा शौक है। कुछ कुत्ते के जोड़े तो गरमियों में मसूरी भेज दिए जाते हैं। कभी कौसल्या अपने शिमला वाले बंगले का हाल सुनाती। बात-बात में उसने यह भी कहा कि उसे रानीखेत सबसे पसन्द हैं, लेकिन वे मसूरी पर फिदा हैं। एक बार उसने अपनी अंगुली की हीरे वाली अंगूठी की चर्चा कर डाली कि उसे सात हजार रुपए में उसने बम्बई में खरीदा था। अरविन्द ने पूना घुड़दौड़ में दस हजार रुपए जीते थे। बहुत लड़-झगड़ कर उसने उनको इस अंगूठी खरीद लेने के लिए मजबूर किया था। आजकल कपड़े का तो रोना ही है। अच्छा कपड़ा किसी भाव नहीं मिलता है। मनमान कर पुराने डिजाइन की साड़ियाँ पहनती हैं। अन्यथा आज तक नए फैसन की साड़ियाँ बाजार में आते ही उसे मिल जाती थीं। अब तो लाचारी ही है।

लालता को उन बातों से कोई उत्साह नहीं था, लेकिन रजनी की तो आँखें खुल गईं। वह कितना सुन्दर जीवन था। उस स्वर्गलोक की कल्पना तक उसने आज तक नहीं की थी। उसकी जीजी कितनी भाग्यवान है। आखिर लालता खा-पीकर चला गया। रजनी और कौसल्या सो गईं। आधी रात को रजनी ने कार के हार्न की आवाज सुनी। जीजाजी लौट आए थे। वह खड़ी हुई। तभी उसने खिड़की से बाहर देखा कि उनके साथ सलवार में कोई स्त्री भी उतरी है। वह चुपचाप खड़ी की खड़ी रह गई। वे दोनों भीतर चले गए थे। शॉफर कार लेकर लौट गया था।

रजनी उलझन में पड़ गई कि बात क्या है। क्या वह जीजी को जगा दे! उसके सिरहाने पहुँची। कौसल्या मीठी नींद सो रही थी। उसे जगाने का साहस नहीं हुआ। वह अपने पलंग पर आकर लेट गई। बड़ी देर

तक नींद नहीं आई। उसको यह तमाशा अजनवी सा लग रहा था। वह सारा खेल उसकी बुद्धि की पहुँच के बाहर था। जब पास किसी घंटे ने दो बजाए, तो उसने सोचा कि अब नींद आवश्यक है और वह सो गई।

बड़ी सुबह उसकी नींद टूटी। वह बाहर बरांडे में पड़ी कुरसी पर बैठ कर, सामने वाले 'पाम' के पेड़ों को देखती रही। एकाएक किसी ने उसकी आँखें मूँद ली। वह जान कर लाज से भर गई। हल्के बोली, "छोड़ दीजिए। कोई क्या कहेगा!"

अरविन्द ने हाथ हटा लिए। पास पड़ी कुरसी सरकायी। उस पर बैठ गया। अब उसकी झोंटी पकड़ ली। रजनी इस सबसे घबरा सी गई। जल्दी-जल्दी उठ कर भीतर चली गई। अरविन्द ने पुकारा, "रजनी!"

रजनी भीतर पहुँच कर पलंग पर लेट गई। उसने आँखें मूँद लीं। बड़ी देर तक आँखें मूँदे पड़ी रही। कुछ देर के बाद उसने अरविन्द का स्वर सुना, "कौसल्या आज कब तक पड़ी रहोगी। साढ़े सात बज गए हैं।"

कौसल्या आँखें मल कर उठ बैठी। पूछा, "कल कै बजे लौट कर आए थे।"

"एक बजे......।"

"मुझे तो गहरी नींद आ गई थी। बहुत थकी हुई थी।"

अब रजनी उठी। एक बार अरविन्द की ओर देखा, उसकी आँखें उसी पर लगी हुई थीं। रजनी ने आँखें झुकाली, चारपाई पर बैठी-बैठी पावों को झुलाती रही! अब कुछ,सोचकर उठी और बाहर चली गई। हाथ-मुँह धो लिया और बेबी के पास पहुँच गई। दाई उसे कपड़े पहना रही थी, वह झूठ मूठ रो रहा था। रजनी ने उसे गोदी में ले लिया। पहिले तो वह और रोने लगा, पर कुछ देर बाद चुप हो गया। वह उसे घुमाती-फिराती रही, तभी उसने सुना, "रजनी अच्छा यह काम भी जानती हो। पहिले मालूम होता तो सासजी की मिन्नतें करके तुझे मांग लेता।"

इस चुटकी पर बोली वह, मैं अपने माँ बाप की फालतू थोड़े ही थी,

जीजा जी के साथ शादी ! ओ' मैं कभी नहीं होने देती ।"

अरविन्द पास आकर बोला, "तेरे बाल तो बहुत सुन्दर हैं रजनी, काले-काले—भौंरे से भी काले ।"

"तुम बड़े लोभी हो जीजाजी, जीजी के बाल तो मुझसे बहुत बड़े हैं। समझी, हँसी उड़ा रहे हो तुम !"

"मैं सच बात कह रहा हूँ ।"

"ऊँ हूँ जीजाजी सच ही कह रहे हैं मेरे । तो जब नाई आपकी दाढ़ी बना चुके, उसे मेरे पास भेज दीजिएगा । मैं कैंची से कटवा कर आपको प्रेजेन्ट कर दूँगी, भला वैसे ये क्या काम आवेंगे ?"

"रजनी ! रजनी !!"

"लीजिए संभालिए अपनी अमानत को । बेचारे को न माँ का मुंह देखना बदा है, न बाप का । ऐसा क्या नया फैशन आ गया है । कभी-कभी तो अपने शाहजादे की गुलामी किया कीजिए ।"

इससे पहले कि अरविन्द कुछ कहे, वह बेबी को उनको सौंप कर भीतर चली गई। अरविन्द कुछ देर तो अवाक् खड़ा रहा। फिर उसने बच्चे का मुंह चूमा, उलझन में उसे लिए हुए भीतर पहुँचा। कौसल्या बाल काढ़ रही थी। उसने बच्चे को मेज पर रख कर कहा, "रजनी का हुक्म है कि हम लोगों को बारी-बारी से बच्चे की देखभाल करनी चाहिए। मैं अपने हिस्से का काम पूरा कर चुका हूँ । अब तेरी बारी है ।

दाई आ पहुँची । कौसल्या उससे बोली, "आज अभी तक इसे घुमाने नहीं ले गई । देखती हूँ कि अब तू काम चोर होती जा रही है ।"

दाई के चले जाने पर बोली, "सुसरी से अबके पहिले पहल पाला पड़ा है । रजनी, ओ रजनी ? कहाँ है री तू ।"

जीजी का पुकारना सुन कर रजनी भीतर आई तो कहा कौसल्या ने, "बैरा से कह दे कि चाय छोटे साहब के आने पर बनेगी—यही आठ बजे ।"

रजनी चली गई । कुछ देर के बाद लालता आ पहुँचा, रजनी बाहर

पहुँची। कहा, "आज तो कम-से-कम सुबह उठना पड़ा। रोज चैन से लेटे-लेटे चाय का इन्तजार करते थे।"

"बड़े आदमियों से तो आज ही पाला पड़ा है।"

"क्या कहा? बड़े आदमी?"

"हाँ, यह झूठ नहीं है।"

"लालता! लालता!! जीजी तो बड़ी नहीं है।" रजनी मुरझा गई।

"ओ' बुरा मान गई तुम, जरा-जरा मजाक तुझे डस लेती है; रजनी। यह कोई भली बात थोड़े ही है।"

तभी आ पहुँची कौसल्या, बोली, "यह चुपके-चुपके क्या षड़यंत्र हो रहा है।"

"सोच रहे हैं कि कुत्ते का जोड़ा चोरी करके ले जावें।" कह ही दिया लालता ने।

"चलो चाय पीने, बेबी के 'जन्म दिवस' पर आप दोनों को एक जोड़ा कुत्ता जरूर प्रेजेन्ट कर दूँगी।"

तीनों भीतर पहुँच गए। टोस्ट, मक्खन, आमलेट, पेस्ट्री, केले, अनन्नास के टुकड़े......! कौसल्या चाय उड़ेलते बोली, "क्रीम के बिस्कुट उठा लाना रजनी।"

रजनी उठी, कई तरह के बिस्कुट धरे हुए थे। एक पैकट उठा कर ले आई और मेज पर रख दिया।

कौसल्या बिसकुट का डिब्बा देख खिल खिला कर हँस पड़ी। लालता झेंप गया। अरविन्द ने कहा, "भई, खूब लाई हो।"

रजनी असमञ्जस में पड़ गई थी कि कौसल्या ने उबारा, "इसमें तो कुत्ता बना हुआ है। यह कुत्तों के लिए है।" खुद उठी और उसे भीतर रख कर दूसरा कागज का डिब्बा उठा कर ले आई।

चाय पीते-पीते पूछा अरविन्द ने, "आज नई खबर क्या है?"

"ऐमरी साहब की विदाई की बात लिखी है।"

"कौन आवेगा ?"

"सैमुअल होर ।"

"सब चोर-चोर मौसेरे भाई हैं। और तुम्हारे गांधी जी का क्या हाल है ?"

"गांधी जी का ?"

"वह भी तो साहुकारों का पुरोहित है। बिड़ला उनके बड़े सलाहकार हैं। बिड़ला कई अखबारों के स्वामी हैं न ! यही बात मेरी समझ में नहीं आती है। साहुकारों की पूँजी से कांग्रेस पनप रही है।"

"आपकी बात कुछ हद तक शायद ठीक हो। उन स्वामियों के बाद भी कांग्रेस जनता की एक मात्र राष्ट्रीय संस्था है। १८५७ की गदर क्या थी ? कुछ सामन्तों ने फिर एक बार अपने राज्यों की स्थापना करने की निरर्थक चेष्टा की, उन पतित सामन्तों के पीछे जनता की कोई शक्ति नहीं थी। ८० साल गुजर चुके हैं। कांग्रेस आज जनता का एक मात्र प्रतिनिधि दल है। वह चाहे तो मुस्लिम जनता को आत्मनिर्णय का आश्वासन देकर, ब्रिटिश साम्राज्यवाद को भारी धक्का पहुँचा सकता है। आज जनता गांधी जी के नाम से परिचित है। कांग्रेस कितनी प्रगतिशील संस्था है, यह तो दूसरा सवाल होगा।"

"मैं तो एक ही बात पर विश्वास करता हूँ लालता बाबू ! वह यही कि धन सब कुछ क्रय कर लेने की क्षमता रखता है। साहित्य, कला, न्याय, स्त्री……। बिड़ला की 'क्लोथ मिल' के मजदूरों ने कुछ माँगे की थीं। वे पूरी न हुईं तो उन्होंने हड़ताल की धमकी दी। गांधी जी ने उस धमकी को अनैतिक घोषित कर दिया था। इस कठपुतली के तमाशे की बात समझ में नहीं आती है। मैं तो कांग्रेस को अराष्ट्रीय संस्था कहता हूँ। वे अवसरवादी हैं। अगस्त '४२ फासिस्त जापान के लिए रास्ता साफ करने का एक उपाय मात्र था। वे असफल रहे हैं। राजनीति के दाँव-पेंच ऐसे ही तो होते हैं। आज जापानी हौआ दिखलाकर ये हमें धोखा दे रहे हैं…………।"

बात काटी लालता ने, "कांग्रेस की जो परम्परा है, आप उसे क्यों भूल जाते हैं। नेताओं ने महान त्याग किया है। आज क्षणिक आवेश में हम वह

सब भूल जाते हैं। हमारे नेताओं की फासिस्त-विरोधी भावनाओं को अकर्मण्य मध्यवर्ग के व्यापारी नहीं सह सकते हैं। उनकी खुशी तो इसी बात में है कि जिच कायम रहे। पाँचवा दस्ता अन्यथा कैसे फूलेगा-फलेगा? वे तो हाथ पर हाथ धरे बैठे हैं कि जापान आकर फिर एक बार सत्युग ले आवेगा। यह सत्युग की कैसी भयानक मृगतृष्णा है?"

"आप इसे मृगतृष्णा कहते हैं? पूरब में, भारत के पूर्व में एक आशा की ज्योति जगमगाई है।"

"शायद, जापानी दियासलाई बाल-बाल कर स्वतंत्रता की राह दिखला रहे हैं। अन्यथा आपकी उस ज्योति की चमक तो बिलकुल धुँधली ही है। मैं मानता हूँ कि धन मनुष्य की भावनाओं का आदान-प्रदान करता है, पर उसकी भी अपनी एक सीमा है। आज विभीषण और जयचन्द बनना हितकर नहीं है। भारत की स्वतंत्रता की माँग अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्न होता जा रहा है। उसे चर्चिल और रूजवेल्ट का सहारा नहीं ताकना पड़ेगा। इस युद्ध में संसार की जनता को सबसे बड़ा हिस्सा मिलेगा। भारतीय जनता उससे अलग नहीं है।"

रजनी को इस सबसे उत्साह नहीं था। उसके मन में रह-रह कर बात उठ रही थी कि कल जीजा जी के साथ वह रमणी कौन थी? यह जीजी का जीवन······। उससे ईर्षा क्यों होती है। वह है ·····, उसका परिवार······। इन दोनों परिवारों में कितना बड़ा अन्तर है। वहाँ पैसे-पैसे पर तकरार होती है। यहाँ सैकड़ों रुपयों का कोई मूल्य नहीं है। पैसा खर्च करना है, इसीलिए खुले हाथों लुटाया जाता है। किसी को जमा करने की परवा नहीं है। वह दोनों की दलील सुन कर उसे समझ लेना नहीं चाहती है। एक दिन में ही वह स्वस्थ हो गई है। रोज काम करते-करते उसकी कमर दुःखने लगती थी। एक मिनट आराम करने को नहीं मिलता है। वह अकेली रहते-रहते घबरा जाती है।

कौसल्या उस सब चर्चा को चाव से सुन रही थी। लेकिन यह सारी चाय चौपट्ट हो रही है। वह तुनक कर सी बोली, "आप लोगों की दलीलें तो

ऐसी हैं कि ऐमरी की जगह लालता जी के नाम की सिफारिश करनी थी । सुभाष बाबू के कर्नल साहब को 'कोहीमा' भेज दिया जाना चाहिए था । इन दलीलों से क्या फायदा है । सारी चाय ठंडी हो गई है । यह दूसरी केतली तो कम से कम खराब न करो ।" कह कर चाय उड़ेलने लगी ।

अरविन्द ने क्रीम-बिस्कुट का पैकट खोल कर रजनी की ओर बढ़ा कर कहा, "देखना कैसे हैं । कहता तो था कि बिलकुल ताजी पेटी खोली है । लेकिन आजकल इसका अर्थ होता है कम से कम दो साल पुरानी ।"

रजनी ने एक बिस्कुट ले लिया और खाने लगी । कुछ नहीं बोली । दूसरा निकाला । बचपन में उसे आइस-क्रीम बहुत भाता था । एकाएक उसे ख्याल आया कि एक दिन इन लोगों को अपने घर तो खिलाना चाहिए । भारी संकोच के साथ बोली, "जीजी आज शाम को हमारे यहाँ खाना-खाना होगा ।"

कौसल्या ने मुसकरा कर उत्तर दिया, अब बात समझ में आई कि सुबह चुपके-चुपके क्या सलाह हो रही थी । मैं तो आ जाऊँगी, पर अपने जीजाजी से तो पूछ लो !"

कुछ और न कह कर रजनी ने अरविन्द की ओर निगाह फेरी, और बोला अरविन्द, "आज तो सिनेमा का प्रोग्राम है । शकुन्तला फिल्म चल रही है ।"

बात सुलझाई कौसल्या ने, "रजनी फिर सच ही आज संभव नहीं है । साढ़े सात बजे तो शो शुरू होता है ।"

रजनी चुप हो गई । यह तो एक साधारण शिष्टाचार है । भला उसके घर का खाना इन लोगों को क्यों भाने लगा ! इन लोगों के लिए वह खाना कोई महत्व नहीं रखता है । वह अब नहीं बोली । अरविन्द उस मूकता का कारण समझ कर बोला, "रजनी तो रूठ गई है । क्यों क्या बात हो गई है ? अबके गरमियों में तो मसूरी चलेगी ही । वहाँ सारी रसोई का इन्तजाम तुझे ही करना होगा । तब अपने पकवानों की बानगी दिखलाना ।"

क्या रजनी मसूरी जावेगी ? यह बात उसके मन में उठी । गरमियों में

ये लोग पहाड़ चले जाते हैं कितने भाग्यवान हैं। रजनी तो अब गरमियों में देश में रहने की आदी हो गई हैं। जब लू चलती है, तो वह झुलस जाती है। फिर लालता के खाने-पीने का ठीक नहीं रहता है। कहाँ होटल का खाना और कहाँ घर का! वह शायद न जा सकेगी। उसका जाना अनुचित होगा। इतने सब लोग तो गरमियों में देश ही रहते हैं। गिनती के चंद अमीर पहाड़ हवाखोरी को चले जाते हैं। वह न जा सकेगी, नहीं जा सकेगी। जाना असंभव बात है। इसी लिए इस प्रश्न का उत्तर नहीं दिया।

किन्तु बात समझकर कौसल्या ने लालता से पूछा, "आपको तो छुट्टी मिल जावेगी। कभी-कभी पहाड़ जाना सेहत के लिए लाभदायक होता है।"

सारी स्थिति सुलझाई अरविन्द ने, "मैं हर्वर्ट से कहूँगा कि लालता को दो महीने की छुट्टी दे दी जाय। कल रात उसने वादा तो कर लिया है कि चार-छै दिन में एक सौ पचास रुपये वाली पोस्ट दे देगा। साला अभी तक स्वप्न देख रहा है कि उनकी यह सल्तनत बनी रहेगी। ये मजे में बड़ी-बड़ी तनखा ले लेकर, खाते-पीते मौज उड़ावेंगे। इम्फाल का डिपुटी कमिश्नर तो जापानी गुरुओं की बानगी देख चुका है। सींगापुर, रंगून के गोरों को जापानी सबक पढ़ा चुके हैं कि राजा गुलाम किस तरह बनते हैं। बड़ी जीवट जाति है इन जापानियों की! दुनिया में अंग्रेजों को नीचा दिखलाना कोई आसान काम थोड़े ही है। जौगरफी में पढ़ाते थे कि ब्रतानिया के साम्राज्य में कभी सूर्य नहीं डूबता है। अब सूर्य डूबा तो ऐसा डूब रहा है कि सदियों तक रात ही रहेगी।" •

यह कह कर अरविन्द उठा और सिगार पीता-पीता बाहर चला गया। अब लालता ने कौसल्या से कहा, "इनका यह क्या हाल है?"

उत्तर दिया कौसल्या ने, "इनका देवता तो है पैसा। जानते हैं कि आने वाले जमाने में इतनी मौज करने को थोड़े ही मिलेगी। इसी लिए एक मात्र आशा जापान पर लगाए हुए हैं। अगस्त ४२ में विद्यार्थियों का आन्दोलन चला था। उन दिनों तो खुले हाथों विद्यार्थियों में रुपया लुटाते

रहे। रात को आकर बड़ी-बड़ी गप्पें हाँकते थे कि अब उनकी बरसों की हवस पूरी हुई। सी० आई० डी० वाले ने एक बार धमकी दी तो अगली सुबह ही गवर्नर के युद्ध-दान वाले फंड में आठ हजार की थैली झुका कर कलेक्टर को खुश कर लिया। आगे जब कोई विद्यार्थी आते, तो उनको दूर से ही नमस्कार करके कहते कि उनसे अधिक त्याग की आशा करनी व्यर्थ बात होगी।"

"यही अधिकतर लोगों का हाल है। देश के भीतर घबड़ाहट और बौखलाहट इतनी फैली हुई है कि सब की उम्मीदें जापान पर है। अब गांधी जी के छूट जाने पर देश की आँखें उस ओर उठ गई हैं। अब गाँधी जी एक सही रास्ता जनता को दिखलावेंगे।"

नौकर आया था। उसने कौसल्या से कहा, "साहब पूछ रहे हैं कि कहीं घूमने जाने का इरादा तो नहीं है?"

"वे क्या कर रहे हैं?"

"कपड़े पहन रहे हैं।"

यह सुनकर कौसल्या उठी और उस ओर चली गई। लालता और रजनी अकेले-अकेले छूट गए। रजनी कुछ सोच सी रही थी, तभी कहा लालता ने, "सुनती हो, घर रासन-पानी सब रखवा दिया है। लकड़ी, गेहूँ, चीनी, तेल......।"

इस बात पर रजनी हँस पड़ी। अभी वह हँस ही रही थी कि कौसल्या आयी, "रजनी चल घूम आवें। सुना पास ही कोई कस्बा है, वहाँ पुराने जमाने की मूर्तियाँ हैं। अभी तक वहाँ ढूढ़ने पर पुराने सिक्के मिल जाते हैं।"

रजनी ने कहा लालता से, "तुम भी चले चलो।"

"आज एक जरूरी 'स्टेटमेन्ट' जायगा। नहीं छुट्टी ले लेता।"

"तुमारा काम तो कभी खतम थोड़े ही होगा। काम! काम!! काम!!! रोज ही कोई न कोई जरूरी काम रहता है। यह भी कोई नौकरी है। हर समय पराधीन रहना। अपने लोगों के साथ घंटे दो घंटे ठीक तरह बैठने तक की फुरसत नहीं है।" इस परवशता के लिए उसका झुंझलाना

सही नहीं था। कोई और समय होता, वह चुप रहती। पर इसे वह अपनी जीवन की सबसे बड़ी हार मानती है।

बैरा ने आकर कौसल्या से पूछा कि खाना क्या-क्या रखा जायगा। वह उसे सारी बातें समझाती रही। चंद मिनटों में ही सारी तैयारी हो गई। रजनी ने पिछले दिन की खरीदी नई साड़ी पहनी। नए चप्पल भी पावों में डाल लिये। शृंगारदान के पास खड़ी हुई। वहाँ वह सब चीजों की जाँच करके अपने को सजाती रही। आज वह अपने मन का शौक कर सकी थी। बार-बार सोचती कि वह किसी ऐसे ही घर के योग्य थी, जहाँ वह जीवन काट रही है। वहाँ तो रसोई, चौका-बर्तन आदि में ही उसका जीवन कट रहा है। उनकी वह गरीबी……! एम्० ए० पास होने से क्या होता है? उसके जीजा जी तो मैट्रिक फेल हैं। वह अपनी जीजी के साथ 'कार' पर बैठ गई। कार तेजी से कस्बे की ओर बढ़ गई।

लालता कुछ देर खड़ा-खड़ा उनको जाते हुये देखता रहा। सोचा कि जब किसी व्यक्ति के पास व्यर्थ खर्च करने के लिये बहुत रुपया रहता है तो वह स्वभावतः स्वयं ही उदार बन जाता है। मनुष्य की भावनाओं का आदान प्रदान ही उस धन से नहीं होता, वह उनको मोल ले लेने की क्षमता रखता है। उस उदारता की तह में एक छुपा स्वार्थ रहता है। जिससे कि वह व्यक्ति किसी भी समय भेड़िए की भाँति आँखों में धूल झोंकता है। अरविन्द उसी वर्ग का एक साधारण व्यक्ति है। समय के प्रवाह के साथ बहता है। वक्त को भली भांति पहचानता है। दुनिया के भूखों, बीमारों, पतितों के प्रति सहानुभूति रख कर उनको दान दे देकर जिलाये रखता है, ताकि समय पर वह उनका उपयोग कर सके।

वह लालता अपने ऑफिस की ओर रवाना हो गया……।

रजनी, कौसल्या और अरविन्द कस्बे पहुँचे। धूल भरी देहाती सी सड़क को पार करना आसान काम नहीं था। कौसल्या ऐसे कच्चे रास्ते पर चलने की आदी नहीं थी। उसे मिचली आई। उसका जी बहुत घबरा गया था। वह 'कार' पर बैठकर आराम करती रही। अरविन्द ने तो कहा, "कौसल्या का

यही हाल है। जहाँ कहीं 'पिकनिक' पर गए, इसकी तबीयत जरूर खराब हो जावेगी। सारा मजा ही किरकिरा हो जाता है।"

रजनी बोली, "तो लौट चलें जीजा जी, जीजी बहुत सुस्त पड़ गई है।"

यह सुनकर सरलता से कहा कौसल्या ने, "तू देख आ। तब तक मैं थोड़ा आराम कर लूँगी।" वह चुप हो गई।

रजनी ने देखा कि एक बड़ा सा बड़ का पेड़ है। उस पर चारों ओर एक चौकोर चबूतरा बना हुआ है। कार उस विशाल पेड़ की छाँह में खड़ी थी। कस्बे के लड़के शोरगुल मचा रहे थे। अरविन्द ने अपना हैंडबेग खोला। एक दवा की सीसी पर से चार गोलियाँ निकाल कर कौसल्या को दे दीं। अब थरमस से गिलास में पानी भरा। दवा खाकर कौसल्या ने पानी पिया। कुछ देर आँखें मूँदे लेटी रही। बोला अरविंद, "अब तो तबीयत ठीक होगी। चलो न चल। वह पास ही तो है। मुश्किल से तीन मिनट का रास्ता।"

कौसल्या ने असमर्थता प्रकट की। अरविन्द ने रजनी से कहा, "चलो देख आवें।"

रजनी ने जीजी की ओर देखा। वह आँखें मूँदे पड़ी हुई थी। वह पास बैठी ही रही। अरविन्द चबूतरे से एक दस-ग्यारह साल की लड़की को बुला लाया। वह लड़की इनाम के लोभ में पंखा झलने लगी। अब रजनी और अरविन्द पास टीले पर पहुँचे। फाटक पर उनको गाइड मिला। बाहर एक नोटिस बोर्ड टँगा हुआ था, जिस पर सुफेद अक्षरों में पुरातत्व विभाग वालों ने सारा इतिहास सारांश में लिखा था। आसपास के छोटे-छोटे उजड़े हुए टीलों पर दृष्टि पड़ी। अब वे एक संकरी गली सी पार करने लगे। अकसर अरविन्द रजनी को छू लेता था। रजनी बार बार भयभीत हो उठती थी। एक ऊँचे टीले पर चढ़ते हुए उसकी सैन्डिल निकल गई। उसको पहन रही थी कि अरविन्द बैठ गया और पहनाने लगा। रजनी उसकी इस करतूत पर चुप रह गई। वहाँ एकान्त था, अतएव कोई झिझक नहीं उठी। अब वे

टीले की चोटी पर पहुँच गये थे। सामने घास का एक सुन्दर मैदान था। दूसरी ओर एक उजड़ा हुआ किल्ला। पूछा अरविन्द ने, "तुझे कौन सा पसन्द आया रजनी।"

मूक रजनी ने उजड़े किल्ले की ओर उङ्गली उठा दी।

"उजड़ा किल्ला!"

"हाँ जीजाजी।" रजनी की आँखों में आँसू छलछलाए।

अवाक् अरविन्द उन आँसुओं को पोंछने लग गया। उसकी समझ में नहीं आया कि आखिर बात क्या है? बोली रजनी "पानी होगा। गला सूख रहा है।"

अरविन्द ने थरमस से पानी निकाल कर उसे पिलाया। देखा कि उसका चेहरा पीला पड़ गया था। बोला वह, "तेरी तबीयत ठीक नहीं है न!"

"हाँ जीजाजी, चलो वापिस चलें।" कहकर वह तेजी से नीचे उतरी। आगे-आगे बढ़ गई। अरविन्द कुछ नहीं समझ सका। रजनी ने कार के पास आकर देखा कि कौसल्या जीजी को नींद आ गई थी। अब अरविंद पास आकर बोला "खाना नहीं खाओगी?"

"नहीं घर लौट चलें, वहीं खावेंगे।"

मनमार कर अरविन्द ने घर की ओर कार बढ़ाई। रजनी पिछली सीट पर बैठी हुई थी। उसकी गोदी पर सिर धरे कौसल्या सो रही थी। रजनी की आँखें गीली थीं। उसका मन भारी था। बंगले पर पहुँच कर कौसल्या ने आँखें खोलीं। वह चुपचाप भीतर लेट गई। रजनी कुछ देर तक पंखा झलती रही। उसे भूख नहीं थी। वह अपनी जीजी के साथ ही सो गई। वे दोनों बड़ी देर तक सोई रहीं। जब नींद टूटी तो छै बज गए थे। लालता खड़ा पूछ रहा था कि सिनेमा चलोगी।

कौसल्या राजी हो गई। रजनी का सवाल नहीं उठा। चाय पर उसने थोड़ा नाश्ता किया। कौसल्या ने तो पाँच-छै सन्तरे छील कर खाए। अब वह स्वस्थ हो गई थी।

वे सब सिनेमा पहुँचे और भीतर अपनी-अपनी सीटों पर बैठ गए।

फिल्म शुरू हुआ । रजनी को बहुत भला नहीं लगा। हाँ, तो सहेलियाँ झुर-मुटों से देख रही थीं। राजा शकुन्तला को अंगूठी पहना रहा था। एकाएक उसका सारा शरीर सिहर उठा। उसकी उंगलिया अरविन्द के हाथ पर थीं। उसने भी उसकी उंगली पर एक अंगूठी पहना दी थी। रजनी काँप उठी। जीजी और लालता तो फिल्म देखने में तल्लीन थे। एक बार बहुत समीप उसके कान के पास मुँह लाकर पूछा अरविन्द ने, "फिल्म कैसा लग रहा है।"

अजीब सा नाच हो रहा था। रंगीन-रंगीन सी तसवीरे, रजनी को वह पसन्द नहीं आया। जीजाजी शराब पिए हुए थे जान कर वह चैतन्य हुई। यह सब क्या है ? उसकी हथेली अभी तक उनकी मुट्ठी पर थी। वह खींचना चाहती तो वह जोर से दबा देते थे। उसे यह मजाक भला नहीं लग रहा था, पर वह लाचार थी, तभी इन्टरबल हो गया। वह उस बन्धन से छुटकारा पा गई।

कौसल्या लालता से बातें कर रही थी। लालता कह रहा था कि इन चित्रों के बनाने वाले जनता की रुचि का ही ध्यान रखते हैं। बहुत पहिले धार्मिक फिल्में बनीं, फिर कुछ सामाजिक चित्र आए। जब कांग्रेसी-मंत्रि मंडल था कुछ राजनीति की ओर भी बढ़े थे; किन्तु इस युद्ध ने फिर महान अतीत वाले चित्रों का निर्माण आरम्भ करवा दिया है। आज फिर धार्मिक, पौराणिक चित्रों का बनना हमारी एक बड़ी राजनैतिक असफलता है। हम कई कदम पीछे हट रहे हैं। इस सस्ते मनोरंजन से जागरूक जनता को अपनी असफलता का सबक पढ़ा रहे हैं।

अब वह आश्रम में शकुन्तला ! कामी पति ने त्याग दिया। चतुर कवि कालीदास ने पति, राजा का मान दुर्वासा के श्राप से रख लिया। भरत का जन्म ! वह शकुन्तला का शिक्षा देना……। लेकिन अरविन्द का हाथ रजनी की टोढ़ी पर था। उसके ओंठों तक उङ्गलियाँ पहुंच गई। अब उसके दातों के बीच वह उंगली थी। रजनी सन्न रह गई। वह चुपचाप परदे पर देख रही थी। वह हाथ हट गया। रजनी ने जीजी के समीप अपना सिर कर लिया। लेकिन अरविन्द ने उसकी झोंटी का रेशमी फीता पकड़

लिया था। रजनी लालता से बोली, "पानी मिलेगा।"

लालता एक गिलास बरफ का पानी बाहर से ले आया। अरविन्द सिगार पी रहा था।

फिल्म समाप्त होने पर रजनी ने अपनी उंगली पर दृष्टि फेरी, नीलम की अंगूठी थी। उसने चुपके उसे उतारा और अरविन्द को दे दिया। देखा अरविन्द ने कि रजनी का चेहरा सफेद पड़ गया था। वह चुपचाप कार की अगली सीट पर बैठ गया।

वे सब घर पहुँचे, खाना खाते-खाते भारतीय संस्कृति, राजनीति, कला और न जाने किन-किन विषयों पर अरविन्द बातें करता रहा। रजनी को वह सब पसन्द नहीं आया। उसकी समझ में वह वातावरण, वह नीलम की अंगूठी ·····, वह सब-सब······! कोई बात समझ में नहीं आई। वह बहुत थक गई थी। थोड़ा खाना खाकर उठी। अपने कमरे में गई। चुपचाप पलंग पर लेट गई। बड़ी देर तक उसने उस कमरे में उन लोगों की आवाज सुनी। धीरे-धीरे उसे नींद आ गई। वह गहरी नींद में सो गई थी।

आधी रात एकाएक उसकी नींद उचट गई। किसी के मुँह की गरम सांस उसके मुँह को छू गई थी। घबरा कर उसने जोर से पुकारा "जीजी! जीजी!!"

कौसल्या की नीद उचट गई। पूछा, "क्या बात है रजनी?"

रजनी उठी! उसने स्विच दबाया। कमरे में रोशनी जगमगाई। वह जीजी के पास पहुँची। बचपन में कौसल्या उसे परियों की कहानी सुनाती थी। रजनी बोली, "जीजी एक बात पूछूँ। सच-सच कहना।"

"क्या रजनी?"

"जीजाजी शराब पीते हैं।"

"किसने कहा तुझसे।"

"सिनेमा में उनके मुँह से···और जीजी कल रात उनके साथ 'कार' में एक औरत आई थी।"

"रजनी······।"

"जीजी मुझे जीजाजी से बड़ा डर लगता है, मुझे मेरे घर छोड़ आ। यहाँ तो...।" रजनी की आँखें बरस पड़ी।

"रजनी, ओ' मेरी प्यारी रजनी! यह इन्द्रजाल है। तूने नहीं देखा दुष्यन्त सचरित्र राजा सदा कहलाया है। इन सब मर्दों का चरित्र उससे भला नहीं है। मैं कुछ नहीं कहती हूँ। मैं उनकी दासी हूँ, वे मुझे खाना कपड़ा देते हैं। मेरे आराम के सब साधन मुझे प्राप्त है, उनका कहना है कि इसके बाद पुरुष की जिम्मेवारी समाप्त हो जाती है; मैं तो अब इस जीवन की आदी हो गई हूँ।"

"लेकिन मैं तो समझती थी जीजी कि तू बड़े सुख में होगी। वह सारा सुख देखा तो दंग रह गई मैं!"

और दरवाजे का परदा हटा कर अरविन्द आया, बोला, "क्या कौसल्या की तबीयत फिर खराब हो गई है?"

कौसल्या कुछ नहीं बोली। कहा रजनी ने, "जीजाजी क्या आप कल सुबह सच ही कलकत्ते जा रहे हैं?"

"हाँ।"

"और जीजी?"

"क्यों क्या कौसल्या यहाँ रहना चाहती है? नहीं मैं इसका पक्षपाती नहीं हूँ। सफर में एक साथी होना ही चाहिए।"

कौसल्या फिर चुप रही, चुटकी ली रजनी ने, "मेरे लिए क्या लाओगे वहाँ से...?"

"क्या लावूँगा?"

"नीलम की एक अंगूठी जरूर लेते आना। कल रात शकुन्तला की अंगूठी देखकर मुझे भी अंगूठी पहनने की रुचि हुई है।"

"नीलम की अंगूठी!" कौशल्या गुनगुनाई, "तू मेरी वाली ले लेना रजनी। मैं वहाँ खरीद लूँगी।"

अरविन्द इस परिस्थिति से दंग रह गया। रजनी से उसने हार खाई है। उस रजनी से जिसका पति केवल साठ रुपया मासिक वेतन पाता है। लालता

और रजनी, जो कि इस युद्ध के दौरान में किसी भाँति जीवित हैं। वह चुप-चाप लौट गया। भारी झटके से दरवाजा बन्द किया। कौसल्या कुछ नहीं समझ पाई। रजनी चुप रही। कौशल्या को नींद आ रही थी। रजनी बोली, "रोशनी बुझाऊँ जीजी।"

"हूँ" किया कौसल्या ने।

सुबह कौसल्या और अरविन्द चले गए। रजनी उस सुख पर सोचती रही। सोचा फिर उसकी गृहस्थी जंजाल है, जीजी की गृहस्थी भी तो......।

तभी कहा लालता ने, "अब तो चल रजनी। दो दिन सुख देख लिया, फिर मिस्टर लालता की गृहस्थी संभालने चल।"

"क्या कहा तुमने ?"

"यह सरकारी डाक बंगला है, जिसे अमीर मुसाफिर चार दिन रौनक करके चला जाता है। अपना तो पन्दरह रुपल्ली का मकान है। इस पर मकान मालिक किराया बढ़ा कर सतरह रूपए करने के चक्कर में है।"

जीजी चली गई थी, रजनी की सारी शक्ति ले गई थी। निर्जीव रजनी अभी तक उलझन में थी। सोचती, जीजाजी का स्वभाव कितना भला है, कैसे मसखरे हैं, और चुटकियाँ लेते हैं तो! फिर वह जीजाजी......?"

बोला लालता, "बड़ी देर हो गई है, दो मील अभी जाना है।" उसने साइकिल बढ़ा दी।

रजनी अपनी चहर दीवारी वाली गृहस्थी में वापस जा रही थी। उसी उसी पींजरे में! जिसका निर्माण उसी ने किया था। वह सोच रही थी कि वह इस पींजरे को तोड़ देगी, वह चहरदीवारी बहुत मजबूत नहीं है। उसके बन्धन ढीले हैं। जीजी वाली नागफांस में वह नहीं पड़ी हुई है। उसका लालता तो......?

बया का घोसला

शीला बोली, "मैंने भाग्य को जीवन घटनाओं से ऊपर उठा, अपने को कोसना नहीं सीखा है।"

रवीन्द्र ने बात सुनी। उसकी आँखें शीला के कान पर झूलते हुए तिकोने नीले काँच के इयररिंग पर टिक गईं। वह गाढ़ा नीला रंग उसके हृदय में भावों की व्याकुलता बढ़ा रहा था। आज अनायास ही लटकनों को छूती हुई बालों की लटें उसे उलझाने तुल गईं। कई साल बीत चुके वह शीला को अपना जीवन आधार बना चुका है। उन दिनों इस नारी के चारों ओर उसकी तृष्णा बार-बार फैल जाती थी। वह ज्वारभाटा एक अरसा हुआ कि दब चुका है। आज अब वह अपने को उतना सजग नहीं पाता है। शीला की बात की अवज्ञा न कर पूछा, "बात क्या है शीला?"

"मैं भाग्य की बात कह रही थी·····" कहकर चुप हो गई। आगे कुछ नहीं बोली।

भाग्य! रवीन्द्र उस पर कोई तर्क नहीं किया करता है। वह भाग्य को एक साधारण घटना कहता है। वह इस बात को स्वीकार नहीं करता है कि भाग्य पर जीवन का भविष्य अवलम्बित है। कुछ घटनाओं की ढेरी को जीवन कहते हैं, कुछ जीवन के पक्ष में पड़ती हैं, तो कुछ विरोध में।

उसने शीला की ओर देखा। शीला उसे ताक रही थी। शीला सुन्दर है, स्वस्थ है और उसमें आज भी वही मनमोहक पुराना आकर्षण है। शीला को बार-बार देखकर मन नहीं भरता है। वह बहुत सरल है। शीला कत्थई रंग की मुरशिदाबादी साड़ी पहने हुए थी। जिस पर कि बीच-बीच में टेढ़ी-मेढ़ी हरी धारियाँ पड़ी हुई हैं। ब्लाउज मूंगिया रंग का है। नए फैशन के अनुसार दाहिने हाथ पर एक लाल मोटी काँच की चूड़ी पहने हुए है। रवीन्द्र विपक्षी-आलम्बन का सवाल सुलझाने नहीं तुला। वह जानता है कि नारी के बाहरी व्यक्तित्व के भीतर, एक कोमल हृदय है, जिसे कि वह पहचानता है और उसे जरा छू भर देने से वह नारी छुई-मुई

बन जाती है। रवीन्द्र के लिए आज शीला कोई-भेद नहीं है। वह उसे भली भाँति पहचानता है।

'उफ' कर शीला ने गहरी साँस ली। रवीन्द्र ने सावधानी से पूछा, "बात क्या है शीला ?"

"कुछ नहीं।"

"और वह तेरी भाग्यवाली दलील ?"

"मैं वही सोच रही हूं, किसने यह समाज बनाया और कौन इसका सृष्टा था ? इसकी जानकारी तुमको पूरी-पूरी है। वह कई लम्बी मंजिलें लाँघ कर आज के नए रूप में आया है। आज से हजारों साल पहिले, एक दिन नारी को दासता की बेड़ियाँ पहनाई गई थीं। बौद्धों का कथन है—जैसे नदी, महामार्ग, शराबखाने, धर्मशालाएँ तथा प्याऊ सबके लिए आम होते हैं, वैसे ही स्त्रियाँ सबके लिए साधारण होती हैं।—मुझे इस धारणा के पक्ष में कोई ठीक सी दलील नहीं मिलती है। मेरे मन में सदा से समाज की पिछली रूपरेखा के प्रति अविश्वास रहा है। मैंने उसकी आज्ञा कभी मान्य नहीं मानी है। सदा से ही उसकी अवज्ञा की। इस सबके लिए मैंने किसी से सहारा नहीं माँगा। कारण कि मैं अबला नहीं थी। मैं नारी के उस प्रारंभिक रूप को जानती हूँ, जब कि वह परिवार की स्वामिनी होती थी।"

रवीन्द्र बात नहीं पकड़ पाया। यह शीला अब बहुत सयानी लगती है। वह तो उसे शक्तिशालिनी मानता आया है। उसने अधिक उधेड़बुन न कर पूछा, "आखिर बात क्या है शीला ? इतनी भूमिका जरूरी नहीं है। न मुझे अधिक सुन लेने का धैर्य ही है। दो शब्दों में पूरी बात कह दे न !"

"बस, तुम इतने से ही ऊब गए हो ?" शीला हँस पड़ी। चंचल युवती की भाँति उठी, कहा, "सिगार ले आऊँ। मेहमान बनकर आए हो न।"

"मैं और तेरा मेहमान !"

"मैं तो यही सोचती हूँ।"

"तो क्या मैं सिर्फ एक मेहमान ही हूँ ? यह तू क्या कह रही है ?',

"क्या मेहमान होना बुरी बात है ?" कहकर शीला गंभीर हो गई। उसका चेहरा मुरझा गया। वह सुस्त पड़ गई। कुछ देर खड़ी रह, अब चुपके बोली, "यह मेरे मन का भय नहीं है। तुम मेरे मेहमान ही हो।" मन्थर गति से भीतर चली गई।

रवीन्द्र ने घड़ी की ओर देखा। छै बज गए थे। वह आज साँझ की लारी से पहुँचा है। उसे शीला का तार मिला था और वह उस निमंत्रण को स्वीकार करके आया है। मन में बात उठी कि वह मेहमान ही है। इस घर में अपने को अपरिचित पाता है। उसके पहुँचते ही शीला ने पूछा था, 'रास्ते में तकलीफ तो नहीं हुई। थक बहुत गए होगे। कुशल से रहे न ? यहाँ तो परसों से मेह की झड़ी लगी है। कल रात बरफ गिरी।'

शीला ने नौकरानी से उसका सब सामान कमरे में ठीक तौर से सजवा दिया था। फिर खाना बनाने की व्यवस्था में जुट गई। अब छुट्टी पाई थी कि सिगार की याद आ गई।

रवीन्द्र को तार मिला था, तो उसने अधिक सोच-विचार न करके जल्दी-जल्दी सब सामान ठीक किया और सफर के लिए रवाना हो गया। कल रात भर वह सोचता रहा कि यह नारी देवी है, माँ है, पत्नी है, सहेली है, प्रेमिका है, अभिसारिका है और कई शब्द उसके लिए हैं। लेकिन कभी-कभी वह अनाचारिणी और पिशाचिनी कहलाती है। एक पक्ष जितना मोहक है, दूसरा उतना ही भद्दा !

वह रात को गाड़ी में बैठा हुआ शीला और अपनी, कुछ चुनी हुई यादगारों की महीन डोरियों के बीच झूलता रहा। फिर चुपके नींद आ गई। सुबह को नींद टूटी, तो गाड़ी पेड़ों और झाड़ियों से भरे जंगलों तथा छोटी-पहाड़ियों को पार कर रही थी। आगे उसे कार से रास्ता तय करना पड़ा। आकाश पर काली-काली घटाएँ छाई हुई थीं। अब वे बरबस-बरस पड़ीं बार-बार पानी की बौछारें कार से टकराती थीं। राह भर वह अपनी बरसाती में सिमटा रहा। अब कार चढ़ाई पार करती हुई पहाड़ी कस्बे की ओर बढ़ने लगी। चुपके-चुपके चारों ओर घना कुहरा छा गया। कार, चीड़ के

जंगलों को पार करके, घने देवदारू के गिरोहों को चीरती हुई आगे बढ़ी। सड़क के किनारे पानी के झरनों का शोर हो रहा था।

"सो गए ?"

"नहीं तो।"

"आँखें मूँदे क्या सोच रहे थे ?"

"कुछ नहीं।"

"लो ?"

रवीन्द्र ने सिगार लेकर सुलगा लिया। एक अरसे तक वह इस शीला की चिट्ठियों के भीतर रहा है। उन दिनों उत्तर देने की तीव्र लालसा नहीं बुझती थी। इन कुछ सालों से चिट्ठियों का सिलसिला टूट गया है। दोनों ने लापरवाही बरती। दोनों ही अपराधी हैं।"

"तुम तो चुप हो गए ?"

"क्या !" रवीन्द्र सावधान हो गया।

"किस सोच में पड़े हो ?"

"मैं न ?"

"मैं जानती हूँ। यही न कि यहाँ व्यर्थ क्यों चला आया। तुमने मेरे मन की बात रखली, क्या यही कम है ! अब तुम उदास रहने लगे हो। पहिले यह बात नहीं थी।"

"मेरी उदासी ! वाह, मजे में रहता हूँ।"

"कभी मेरी याद आई ?"

"तेरी याद शीला !"

"आज पाँच साल के बाद भेंट हो रही है।"

"यही तो तू चाहती थी।"

"मैं, हाँ ठीक बात है। मैं चाहती थी कि तुमसे अलग रह कर, तुम्हारी सब यादों को भुला दूँ, लेकिन यह पागल मन नहीं माना। क्या नारी का हृदय ऐसा ही होता है ? इन बीते पाँच साल की बात भी सुन लो। मुझे पहिले तुमको इस प्रकार छोड़ देने पर बहुत दुःख हुआ। मन वेकल हो

उठता था। मैं भावुकता के ज्वार-भाटे के बीच निर्जीव सी डुबकियाँ लगाती थी। तुम्हारा फोटो मेरे लिए एकमात्र सहारा बना रहा। मैं समझ गई थी कि अब अकेले न रह सकूंगी। अक्सर संध्या को अपने बंगले के फाटक पर खड़ी होकर, किसी अतिथि के आने की बाट जोहती थी। रात पड़ जाती। मेरा अतिथि कभी लौट कर नहीं आया। आखिर तुम उस तरह क्यों चले गए थे ?"

"मैं न शीला, क्या इसका उत्तर मुझे ही देना होगा ?"

"नहीं, मैं स्वयं जानती हूँ कि मेरा उत्तरदाइत्व निभाने के लिए तुम चले गए थे। माना कि वह मेरा अनुरोध ही था, तुम तो पुरुष थे। कुछ पूछा क्यों नहीं ?"

"मैं बार-बार यही कहता रहा शीला कि तुम भ्रम में हो। यह सब बालकों वाली बात है। तुम फूट-फूट कर रोने लगी थी। तुम्हारे उन आँसुओं से मैं अचरज में पड़ गया। तुम्हारी वे सिसकियाँ! वह अनुरोध!! पहले तो मैं समझा था कि तुम अस्वस्थ हो। भला उस भाँति बावला बनना कब ठीक होता है। मैं तुमको क्या समझाता ?"

"उफ, यदि तुम रुक जाते, तो मुझे इतना मानसिक कष्ट न सहना पड़ता। मैं पहले स्वयं नहीं जानती थी कि नारी इतनी निर्बल होती है। तुम तो कुछ कहते—समझाते !"

"मैं क्या कहता ? तुझे समझदार मानता आया हूँ शीला। तू आज यह सब क्या कह रही है ? मैंने तेरी भावुकता को प्राकृतिक दान सा स्वीकार किया है। आज की तेरी बात फिर भी नहीं समझ पाया हूँ।"

"सच ही न समझ पाओगे। आज मैं अपना अपनत्व भूल गई हूँ। मैं शीला हूँ,—तुम्हारी शीला। यह 'तुम्हारी शीला' कह कर मन को ढाढ़स देती हूँ; अन्यथा मैं अपने को पूर्ण नहीं पाती। मेरा अपना अस्तित्व ही क्या है ? उत्तर देती हूँ—शीला छलना है। वह आज तुमको छल रही है। फिर उस समय तुमने तो मुझे समझाया होता। यह संभव था कि मैं अपनी भावुकता विसार देती। यदि तुम मुझे अपेक्षित सहारा देते, तो मुझे बल मिल

जाता। आज मैं अपने को बूढ़ी पाती हूं। बूढ़ी, तुम हँसी करोगे। सच ही यह हँसी की बात है। आज मेरा योवन चूक गया है। मन बूढ़ा लगता है।"

"शीला इस पागलपन को विसार दो। मैं यह व्यथा न सह सकूँगा। मेरे अपने हृदय में जो तुम्हारी तसवीर है, महक है; आज मैं वही सब फिर पा लेना चाहता हूँ। आज तुम किसी से अपने योवन की बाजी लगा सकती हो।"

"शर्त बद कर हार गई तो·········।"

"हार!"

"ओ' भूचाल आया था एक दिन। तुमने उसका वैज्ञानिक आधार स्वीकार किया था। पाँच साल पुरानी बात हो गई है। वह कल-परसों की नहीं है। एकाएक मन में वह भूचाल उठा था। एक ज्वालामुखी फूटा था। उसकी गति तीव्र थी। जब तक मैं संभलूं, मैंने पाया कि जीवन को चारों ओर से 'लावा' ने ढक लिया है। किसी अरक्षण्य प्रकाश ने मेरी आँखे धुँधली कर दीं। जब कुछ होश में आई तो देखा कि तुम सुस्त खड़े हो। उस समय मेरे नारी दर्प पर भारी चोट लगी। तुम एक स्तूप की तरह खड़े थे, जिसके चारों ओर खुली धरती थी। मैं अपनी आकांक्षाओं को भूल गई। सारा भविष्य उजड़ा हुआ सा देख पड़ा। मुझसे उस स्तूप की पूजा नहीं हो सकी। मैंने उस थोथी पूजा को कब माना है। तुम मेरे देवता नहीं थे। तुम पुरुष थे और मैं नारी। बस मैंने तुमको विदा देने की ठान ली।। तुमने सोचा होगा कि वह मेरा अभिमान था। यह झूठ है। वह मेरी लाचारी भी नहीं थी। तुम्हारा चला जाना ठीक ही हुआ। मैं जान सकी कि नारी अबला क्यों कहलाती है। तुम चले गए। मन में एक लहर आई कि तुमको रोक लूं। हाथ जोड़ कर तुम्हारे पावों में गिर पड़ूं। नारी का बल, आँसू अर्पित कर तुमको द्रवित कर दूँ। मैंने वह सब नाटक नहीं रचा। मैं तुमको रोक कर ही क्या पाती? मेरी वह भूख बुझ चुकी थी। तुम उदास खड़े थे। तुममें बेबशी नहीं थी। देखा था मैंने कि तुम एक सम्बल वृक्ष की तरह खड़े हो। उस तूफान के बाद भी तुम खड़े ही थे। मैं चाहती तो उसकी छांह में बसेरा ले लेती। क्या तुम यही नहीं चाहते थे?"

"मैं क्या चाहता था वह कथा अब कहनी व्यर्थ बात होगी। तुमने कहा—अब जाओ। जिस सरलता से विदा किया था, आज मन में वह याद ताजी है। तुम्हारी आँखें आँसुओं से भरी हुई थीं। तुम बरबस उनको रोके थीं। तुम्हारी बालों की लटें चेहरे पर फैली हुई थीं। तुम्हारे उस रूप में एक भारी धीरज था। इस सब से मुझे सान्त्वना नहीं मिली। तुम फिर चुपके बोली—जाओ अब। वह शब्द भारी मील के पत्थर की भाँति मेरी जीवन मंजिल पर खड़ा हो गया। मैंने पीछे मुड़कर देखा था। लेकिन तुम अपनी बात पर तुली थीं। मैं चला आया। मन थक गया। मैं हार स्वीकार कर चुका था। मैं तुम्हारी उस जीत पर गर्व नहीं कर सका। तुमको घटनाओं से तोलना अनुचित लगा।"

"मैंने तुम्हारे चले जाने पर एक बार सारी परिस्थितियों को बटोर कर उन पर विचार किया। सोचा कि वह मेरा कैसा अपनत्व था। उस लोभ पर झाँक कर देखा। एक बड़ी घटना याद आयी : पम्पाई के अन्तिम दिन थे। ज्वालामुखी फूट चुका था। सारा शहर मूकता के साथ मौत की प्रतीक्षा कर रहा था, फिर भी नाट्यशालाओं में मदिरा और नृत्य चालू था। वहाँ के वातावरण को मौत का भय छू नहीं सका। लेकिन ठीक उसी समय दो भूखे युवक पाव रोटी की चोरी करने के लिए, पिछवाड़े के दरवाजे से दूकान के भीतर घुस रहे थे। मौत से ऊपर उनका रोटियों की चोरी करने वाला लक्ष्य था। भूखे पेट जब पूजा नहीं हो सकती हैं, तो शायद वे पेट भर कर ही उस सारे ताण्डवनृत्य को देखना चाहते थे। यह हमारा अपनी भावनाओं के प्रति कैसा अन्याय है!"

"लेकिन शीला अब आज तुम सब भूल जाओ न। अपना मन हल्का कर लो।"

"अब मन भारी नहीं है। आज मैं स्वस्थ हूँ। लेकिन लगता है कि बूढ़ी हो गई हूं। सोचती हूँ कि मेरी अवस्था छोटे बच्चों की नानी-दादीवाली हो आई है। अपने इस बुढ़ापे पर हँस देती हूं।"

"आज तुझे क्या हो गया है शीला!" बार-बार कहोगी कि बूढ़ी

गई हूँ। तुम्हारा यह बूढ़ा हो जाना अचरज में डाल देता है। आँखें द कर उन दादी-नानियों का खाका खींचता हूं। सुफेद बाल, झूरियाँ पड़ा आ पोपला मुँह और……।"

"तुम शरीर का बूढ़ा हो जाना सोच रहे हो। मैं मन में बूढ़ी हो ई हूँ। मैं परसों सुबह को घूमने निकली। देखा कि बेंच पर नारी-पुरुष का क बूढ़ा जोड़ा बैठा हुआ है। पुरुष बार-बार अपनी आँखों पर से दूरबीन टा कर अपनी नारी को देता था। फिर उसे कुछ समझाता था। मैं उस य को देखकर रोमाञ्चित हो उठी। मेरे मन में बात उठी कि मैं भी तुमसे क दूरबीन मँगवा कर नीचे घाटियों की ओर देखूँगी। जल्दी घर लौट आई; चिट्ठी नहीं लिखी। मनमें भ्रम उठ चुका था कि……।"

शीला कुछ देर चुप रहकर बोली, "तुम चले गए। तब मैं एकाकिनी गई। फिर सारी परिस्थिति पर एक नजर डाली। चारों ओर कुछ कमी गी। अपनी 'कॉटेज' पर दृष्टि फेरी, वह बहुत पुरानी और मैली लगी। बाग आड़ू पक गए थे। उनकी महक ने मुझे मतवाला बना डाला। नाशपाती पेड़ों की ओर देखकर एक अभाव अखरा। तुम्हारा वह खेल याद आया न पेड़ पर चढ़कर पकी हुई नाशपातियाँ तोड़-तोड़कर मेरे आँचल पर का करते थे। तब हम बच्चे थे। तुम इक्कीस और मैं सोलह साल की ।"

"हाँ शीला, मैं इक्कीस साल का था। चीड़ की पयाल बिछाकर हम ब आड़ू और खुमानी खाते थे। और वह नीचे…… ।"

"चुप रहो अब।" शीला ने बात काटी। कहा फिर, "तब मैं राजहंसों । रानी थी और तुम राजकुमार। तुम मोतियों की माला लेने आए थे। किन मोतियों की माला के लालच के ऊपर तुम रानी से फँस गए। वे दिन तने भले और सुन्दर थे।"

"मैं मानता हूँ शीला कि वे दिन सुन्दर थे। आज तुम क्यों अतीत । याद में उलझ कर, वर्तमान को धोखा देने तुली हो। क्या आज तुम छ……।"

"मैं आज बहुत दुःखी हूँ रवीन्द्र। यदि तुम मेरे मन की पीड़ा जान सकते......।"

"तुम्हारा दुःख और प्राणों की पीड़ा! तुम तो बीमार लगती हो?"

"नहीं-नहीं रवीन्द्र भली हूँ। मैं तो बावली जरूर हो गई हूँ। तुमको वह गीत याद है?"

"कौन सा?"

"वह पहाड़ी गीत, जिसे हमने घास काटने वाली औरतों से सुना था। उस गीत में कितनी पीड़ा और निराशा थी।"

"राजकुँअर का!"

"नहीं।"

"तब कौन सा?"

"वह, भादों की अँधेरी रात। भारी बरसात। घना अँधियारा। प्रेमिका अपने प्रेमी के आने की बाट जोह रही है। रोज आधी रात को दिया जला कर वह उसे बुलाती है। चारों ओर मक्का, ज्वार, बाजरे की फसल खड़ी है। बीच-बीच में जङ्गली सुअर इधर-उधर भागते हैं। प्रेमी रोज की भाँति अपने गाँव से नीचे उतर नदी के पास पहुँचा। आज नदी में भारी बाढ़ थी। वह उस रोशनी की प्रतीक्षा ही कर रहा था। अब नदी में पहुँचा। एकाएक भँवरों के बीच चट्टानों में फंस गया। प्रेमिका रात भर खिड़की के पास खड़ी रही। वह नहीं आया। आज भी वह प्रतिदिन दिया बाल कर उसकी प्रतीक्षा करती रहती है कि न जाने वह बिछुड़ा हुआ किस दिन चला आवे...।"

"शीला! शीला!! अब चुप रह, कुछ और बातें कह न। तेरी उन नारंगियों की क्यारियों का क्या हाल है? वे तो अब फलने लगे होंगे। और वे शहद के छत्ते! कालू दोस्त का क्या हाल है?"

"कालू यहीं है। उसे कभी-कभी जाड़ों में गंठिया हो जाता है। वह आज भी मेरी हिफाजत छोटी गुड़िया की भाँति करता है। उसे कितना ही समझाती हूँ कि मैं सयानी हो गई हूँ, फिर भी 'बेबी' ही कहेगा। नाराज होती हूँ तो मेरे बचपन के नटखटी किस्से शुरू कर देता है।"

"वह इस वक्त कहाँ गया है ?"

"कैलाश को घूमाने ले गया होगा।"

"और कैलाश ?"

"भूल गई मैं ! वह सामने उसी का फोटो लगा हुआ है। चेहरा तुम्हारा है और आँखें मेरी।"

रवीन्द्र उठा और दीवार पर टंगे हुए फोटो को देखने लग गया। वह कैलाश था। पहले शीला कैलाश की कई बातें लिखा करती थी। सब और सारी चिट्ठियों में कैलाश ! कैलाश !! आज उसने कैलाश की उन बातों को कैसे भुला दिया है।

बोली शीला, "कैलाश बहुत सैलानी है। एक मिनट घर पर नहीं बैठेगा। उसे कालू सा दोस्त पाकर और क्या चाहिए।"

"कालू की दोस्ती ! साठ साल का कालू और पाँच का कैलाश, दोनों के बीच पचपन वर्ष का जमाना है। कालू तीन पुश्तों का प्रतिनिधि है। फिर भी दोनों की बुद्धि का मेल हो जाता है। तुम तो कहती हो कि दोनों साथी हैं।"

"यह न कह कर और क्या कहूँ ? कैलाश शरारत करता है तो मैं डाँटती हूँ। कालू चटपट कह देता है—बेबी तू बचपन में कम नटखट नहीं थी और कैलाश को लेकर चला जाता है। लेकिन एक बात पूछूँ तुम क्या अपने बचपन का हाल जानते हो ?"

"भला मैं क्या जानूँ। मुझे जरा भी याद नहीं है। कभी फुरसत पाकर शायद अपने जन्म स्थान जावूँ तो वहाँ की बूढ़ियों से छान-बीन की जा सकती है। लेकिन उतना समय कहाँ है ?"

"कालू तो मेरी कैलाश से तुलना करता है। बस मेरे सारे बचपन की छानबीन करने लग जाता है। कुछ ऐसी बातें सुना देगा कि मैं शरमा जाती हूँ। वह कैलाश और मेरे बीच के गुजरे जमाने की नीव खड़ी करके, उस पर घटनाओं की कीलें खट, खट, खट ठोकता चला जाता है। उसे साधारण और महत्वपूर्ण घटना का विचार नहीं रहता है।"

"कौन सी बातें साधारण लगती हैं ?"

"यही कि मुझे 'स्ट्राबेरी' नहीं भाते थे, और सात साल की उम्र तक मैं फ्राक ठीक-ठीक पहचानना नहीं जानती थी। कैलाश कपड़े पहनने में होशियार है।"

"संभवतः उस अवस्था में लड़कियाँ लड़कों से कम समझदार रहती हों। यह साधारण प्रकृति का नियम हो सकता है।"

"प्राकृतिक अंतर की संभावना ! क्या कहा तुमने ?"

"यही न कि लाज की भावना बचपन में लड़की में आनी चाहिये न कि लड़कों में। लेकिन तुम्हारे स्वभाव में वह बात नहीं थी। तुम उस लाज के अनुकूल नहीं थी। यह कोई भय की बात नहीं थी।"

"कालू का कहना है कि जिस तरह से एक बच्चे को बहकाया जा सकता है, उसी भाँति सबको। वह दावा करता है कि आज वह कैलाश और मुझे उसी भाँति बहका सकता है। उसकी आँखों में हम दोनों एक से बच्चे हैं।"

"वह उसकी अपनी दृष्टि और उम्र है।"

"कुछ भी हो, वह आज कैलाश और मुझसे कहता है—आँखें मूँद लो ! हम आँखें मूँद लेते हैं। वह सोफा के पीछे छुप कर कहेगा—मुझे ढूँढ़ो। वह यह आशा रखता है कि मैं उसे कुरसी-कुरसी के पीछे ढूँढ़ती फिरूँ।"

"यह सब देखकर तुझे झुंझलाहट उठती होगी। लेकिन यह कालू जो पचास साल से इस परिवार की दासता करता आया, आज इस परिवार के वातावरण के बाहर का ज्ञान नहीं रखता है। इन पचास साल के जीवन में उसके विचारों में कोई अंतर नहीं पड़ा। एक दास की बुद्धि कच्ची होती है। उसकी सारी जानकारी परिवार के स्वामी की कुछ सुनी बातें होती हैं। क्या वह तुम्हारे पिता की सावधानी और माँ की हिफाजत का सारा व्यवहार भूल सकता है ! उसका वही स्वभाव बन गया है। यही आदत है। तुम्हारे मन में पुरुष की दासता का भय सदा ही रहा है। इसीलिए

इन सब बातों से सतर्क रहा करती हो।"

"पुरुष की दासता!"

"क्या तुम चिट्ठियों के अंत में 'दासी' नहीं लिखा करती थी। वह क्षणिक आवेश ही सही, बात तो सच है। तुम एकाएक एक दिन चौकन्नी हुई। स्वभाव बदल डाला और अंत में बिना किसी खास सम्बोधन के पत्र शुरू कर अंतिम पंक्ति में केवल नाम भर लिख देती थीं। तुम्हारे मन में अज्ञात भय पैठ रहा था कि मैं तुमको 'दासी' ही समझता हूँ। कालू का दास-हृदय मैं समझ लेता हूँ। तुमको सुलझा लेने, मैंने चिट्ठी लिखनी बन्द कर दी कि तुम उस दासता वाली भावना को विसार दो। मैं सफल हो गया। वह तुम्हारी दासता की भावना कालू के 'बेबी' कहने तक सीमित रह गई है। लेकिन तुम आज समझती हो कि यौवन बीत गया है, बुढ़ापा हो आया। यह सही बात नहीं है। वह तुम्हारा बुढ़ापा तो तुम्हारे 'बेबी' की प्रारंभिक रूपरेखा है। तुम माँ होकर, एक झूठे भय के कारण कैलाश के साथ खेलना पसन्द नहीं करती हो। अपने हृदय को इस भाँति कठोर साबित कर लेना चाहती हो। यह तुम्हारा ठीक बर्ताव नहीं है। इसी के कारण तुमने घबराहट में मुझे तार भेज दिया। यह मन में भय था कि शायद मैं न आ सकूंगा।"

"ममी, ममी!" कैलाश दौड़ कर कमरे के भीतर चला आया। शीला से लिपट गया। अब उसका ध्यान रवीन्द्र की ओर गया और अवाक चुप खड़ा रहा। फिर दौड़ कर कालू की ओर बढ़ गया।

कमरे के भीतर अँधियारा हो आया। चीजें साफ-साफ नजर नहीं पड़ती थीं। कालू की आकृति और चेहरा रवीन्द्र ठीक तौर पर नहीं देख सका। अब शीला ने जाना की सच ही अँधेरा हो आया है। वह चुपके उठी और स्विच दबाया, रोशनी में लगा कि कमरे में न जाने कब से एक चमगादड़ का जोड़ा चक्कर काट रहा था। कैलाश उनको देखकर ताली पीटता हुआ हँसने लगा। कालू एक बड़ा जाला झाड़ने वाला बांस उठाकर ले आया। उनको भगाने की चेष्टा करने लगा। कैलाश की उस हँसी और कालू की तरकीबों

के बीच रवीन्द्र ने शीला की ओर देखा। शीला की दृष्टि उस उड़ते हुए जोड़े पर लगी हुई थी। वे कमरे की सीमा के भीतर बार-बार बल्ब का चक्कर लगा रहे थे। उसे वह दिन याद हो आया, जब कि इस शीला से पहिला परिचय हुआ था। तब से कई बार उन दोनों ने इस 'हॉल' में इसी प्रकार कभी-कभी चमगादड़ के जोड़े उड़ते देखे हैं। अक्सर दोनों ने मिलकर उड़ाने की चेष्टा की थी। आज शीला का स्वयं बनाया हुआ बूढ़ा मन, इनको भगाने के लिए उत्सुक नहीं है। वह एक दर्शक की भाँति खेल देख रही है, स्वयं खेल में शामिल होने का कोई उत्साह नहीं है।

लेकिन शीला बोली, "कालू उनको रहने दे। बाहर अँधेरा है। भला वे वहाँ उड़कर कैसे जावेंगे। रोशनदान भी बंद हैं। कैलाश के कपड़े बदल दे। बाहर की बत्ती जला देना। यहाँ मैं बुझा लूँगी।"

कालू बात स्वीकार कर बोला, "चलो कैलाश; अब ऊँट को चारा देना है। नहीं तो वह भूख से मर जायगा।"

"अम्मी ऊँट!" कैलाश शीला के पास आकर बोला।

बोली शीला, "अपने भालू का नाच कब दिखलाएगा रे?"

कैलाश ने रवीन्द्र को देखा। क्या उसके भालू का नाच सबके लिए है? अम्मी और कालू चाहें देखलें। लेकिन यह अम्मी ने एक नए व्यक्ति के सामने क्यों उसकी गोपनीय बात कह दी है। कैलाश ने माँ की ओर देखा कि वह अपना प्रस्ताव वापिस लेले, लेकिन वह तो स्करा रही थी।

इसी बीच कालू ने कैलाश की उँगली प कर कहा, "चलो, नहीं तो ऊंट सो जायगा।"

कैलाश कालू के साथ बाहर चला गया। चमगादड़ का जोड़ा उसी भाँति चक्कर काटता हुआ उड़ रहा था। बाहर की रोशनी चमक उठी। शीला ने उठकर भीतर का बल्ब बुझा दिया। भीतर घना अँधेरा छा गया। बाहर का प्रकाश दरवाजे से भीतर झाँक रहा था, फिर वही फट-फट-फट कानों में पड़ती रही। शीला रवीन्द्र के पास सरक गई। दोनों चुप हो रहे। बीच-बीच में भारी शब्द सुनाई पड़ता था, फिर गहरी चुपी। रवीन्द्र ने

एक बार शीला की ओर देखा। वह काले 'संगमूसा' पत्थर की 'स्टैचू' की तरह सर झुकाए बैठी हुई थी। उसी-उसी भाँति बैठी रही!

लेकिन एकाएक वह शब्द खो गया। बोली शीला, "चले गए। तुमको यह खेल कैसा लगा रवीन्द्र।"

"कौन सा खेल?"

"इन चमगादड़ों का। अब बाहर दोनों इसी तरह चारे के लिए खेतों का चक्कर लगाएँगे। जो कुछ मिल जाय सन्तोष कर लेते हैं। इनका कहीं डेरा नहीं है। ये स्वतंत्र हैं—बिल्कुल मुक्त।"

"वे मुक्त ही हैं।"

"मैं उसी भाँति मुक्त होना चाहती हूँ।"

"डैने कहाँ से मिलेंगे शीला?"

"तुम ला दोगे।"

"मैं!"

"हाँ तुम! इसी लिए तो तुमको बुलाया है। क्यों क्या यह संभव नहीं है। लेकिन मेरी माँग सदा से ऐसी ही रही हैं। तुमने सदा मुझे बल दिया। मैं सोचती थी कि तुमसे कहूंगी कि मेरे लिए डैने ला दो। तुम लाकर दे दोगे। बस मैं उड़ जाऊँगी।"

"तुम्हारी यह प्रवृति तो मुझे शैशव की अतृप्त भावनाओं का सा खेल लग रहा है। शीला तुममें चूहों को पकड़ लेने की भावना कब से आ गई है?"

"यह तुमने क्या कहा है?"

"मैंने न! देख रहा हूँ, तु ः ङ्गार की सारी इच्छाएँ मिट गई हैं। जिस कथई रंग से तुम सदा घृणा करती थी, उसी रंग की साड़ी अन्यथा आज न पहनती। यह रुचि परिवर्त्तन क्या है? तुम्हारे जिन काले-काले लम्बे बालों का मुझे घमंड था, वे अब सूखे लगते हैं।"

"ओ' ठीक! मैं आज लुभावनी नहीं लगती हूँ न। तुम से सच ही तो कहा था कि बूढ़ी हो गई हूं।"

"फिर वही बात !"

"जब तुम चले गए तो मैं उदास रहने लगी। कुछ पहनने के लिए मन नहीं करता था। मन को बहलाने के लिए लाचारी शृंगार कर, सुन्दर कपड़े पहन आइने के आगे खड़ी होती थी। अपनी डबडबाई आँखों से पूछती थी—वे कब आवेंगे ? कभी-कभी अपने अंगों से मोह बढ़ जाता था। एक दिन वह मोह टूट गया। इसका कारण था कैलाश का जन्म।"

"तूने मुझे सूचना तक नहीं दी। तार भेजा होता। कम से कम चार लाइनों की चिट्ठी लिख देती।"

"तुमको कैसे मालूम हुआ ?"

"अस्पताल की डाक्टरनी ने चिट्ठी भेजी थी।"

"उसने ?"

"हाँ, लिखा था कि बहुत 'सीरियस' आपरेशन हुआ। ग्यारह पाउन्ड का बच्चा हुआ था।"

"मैं मौत से बच गई। सब यही कहते थे। लेकिन स्वयं मुझे मौत की कोई संभावना नहीं थी। यदि विश्वास होता तो तुमको अवश्य सूचना दे देती। मैंने जिस कर्त्तव्य को उठाकर तुमको बिदा किया था, उसे निभा लेने के लिए ही चुप रही। कैलाश के जन्म से दो सप्ताह पहले मुझे बहुत ही सूना लगा। कोई अज्ञात भय बार-बार दबाता था। फिर मुझे आन्तरिक और शारीरिक दोनों पीड़ाओं का शिकार होना पड़ा। मैंने कैलाश की पहली किलकारी नहीं सुनी। मैं बेहोश थी। जब होश आया, तो नर्स मेरी नौकरानी से कह रही थी—ऐसा 'ऑपरेशन' पहले-पहल हुआ है।"

"मुझे फिर भी गैर सा दूर रखा।"

"हाँ, बाद को मेरे प्राणों की पीड़ा मिट गई। डॉक्टरनी ने सुझाव दिया कि एक दाई रख ली जाय। मुझे वह बात नहीं जँची। मैं स्वयं उसकी देखभाल करने लगी। वक्त कट जाता था।"

कमरे में अँधियारा था। रविन्द्र कुछ न बोल कर, बातें सुनता ही रहा। अब शीला चुप हो गई थी। शीला का हृदय उमड़ रहा था।

शीला की बातें रवीन्द्र के मन में उतराती रहीं। शीला तो सारी पिछली घटनाओं को कह देना चाहती थी। सब—सबको, जिनको कि वह आज तक सँवारे रही। रवीन्द्र समझ गया कि शीला आदान-प्रदान चाहती है। उसे यह आशा लगी है कि वह अपनी चर्चा भी करेगा। भले ही वह मामूली हो। शीला सब सुन लेगी। लेकिन वह क्या कहे। बहुत सोच कर बोला, "आखिर तुम्हारी चिट्ठी एक दिन मुझे मिल गई। वह बहुत आश्चर्य जनक घटना नहीं थी। मुझे ऐसी आशा थी।"

"सात महीने बाद वह चिट्ठी डाली थी। मैंने वह सब क्यों लिखा, जानते हो न ! कैलाश ने मेरे मन का समस्त भार उतार डाला। एक दिन मैं स्वस्थ हो गई। लेकिन मन में कुछ अबूझी लालसाएँ जागने लगीं। किन्तु एक दिन अचरज के साथ मैंने देखा कि कैलाश घुटनों के बल फर्स पर चल फिर लेता है। उस दिन मुझे बड़ी खुशी हुई। मैंने त्योहार की तरह घर भर में सजावट करवाई। कई सहेलियों को चाय पर बुलाया। लेकिन मैं रात भर नहीं सो सकी। सोचा कि तुमको इस भाँति दूर रखना मेरा अकर्त्तव्य है, और सुबह उठकर मैंने चिट्ठी लिखी थी।"

"लेकिन मैंने उसका उत्तर नहीं दिया। जान कर कि मैं स्वयं तुमको नहीं बाँधूँगा। तुमको मुक्त रहने देना चाहता था।"

"तुम जानते हो न मैं बचपन से झक्की हूँ।"

"यह नई बात नहीं है।"

"मैंने स्वप्न देखा कि तुम्हारी चिट्ठी आई है, बहुत आशीर्वाद लिखे हैं। मैं सुबह भर फूली नहीं समाई। बार-बार मेज पर चिट्ठी लिखने बैठी। कई चिट्ठियाँ आधी-आधी लिखकर फाड़ डालीं। मैं तुमको कई बातें लिखना चाहती थी। मैंने एक चिट्ठी किसी तरह लिखी और लिफाफे पर बन्द करके तुम्हारा पता लिख रही थी कि देखा कैलाश कमरे में आ रहा है। मैं उसके चेहरे पर तुम्हारी छाप पाकर भयभीत हो उठी।"

"अपने बच्चे का भय !"

"हाँ, कैलाश ने मेरी ओर देखा, फिर वह दौड़कर मेरे समीप

आया। मैंने गोदी में उठाया। मेरे सारे शरीर पर एक तेज लहर सी दौड़ी। मैं खूब हंसना चाहती थी। लेकिन हँसी नहीं। डर लगा कि कैलाश क्या समझेगा। अपनी उस उमंग को पी गई। अनुमान लगाया कि मैं अब तुम्हारे लिए व्यर्थ हूँ। तुमको उलझाना ठीक नहीं जँचा। तुमको मुक्ति दे देने के लिए ही चिट्ठी फाड़ दी, यह निश्चय किया कि भविष्य में पत्र नहीं लिखूँगी।"

एक भारी थकान के साथ शीला ने अपना हाथ सोफा पर फैलाया और अँगड़ाई लेकर रवीन्द्र की ओर देखने लगी। फिर एकाएक चैतन्य हुई। खड़े होकर स्विच दबाया, और पास आकर बोली, "सात बज गए हैं। तुम को ठंड लग रही होगी। काफी बना लावँ। किस चीज के आदी हो। चाय के या...। मुझे माफ करना। अपनी झूठी बातों में भूल गई। तुमने सावधान क्यों नहीं किया?"

"नहीं-नहीं, कुछ नहीं चाहिए।"

"तब तो बड़े संकोची जीव बन गए हो", शीला हँसी। कहा, "काफी के लिए कह दूँ। तुम्हारा न सही, मेरा मन कर रहा है।" उठ कर बाहर चली गई।

अब रवीन्द्र अकेला रह गया। शीला का इस प्रकार चला जाना अखरा। वह आज शीला की बातों को बहुत दिनों के बाद सुन रहा है। तब और आज की बातों में अंतर है। अब शीला का स्वभाव बदल गया है। बातों पर अधिकार पूर्ण सम्मति देती है। कहीं उलझन नहीं बरतती। कमरा सूना लगने लगा। वह उठ कर बाहर आया। बराण्डे पर पड़ी हुई कुरसी पर बैठ गया। कैलाश की हँसी कमरे को छेदकर कान पर पड़ रही थी। वह कई सवाल कालू से पूछ रहा था। कालू उसकी सब बातें ठीक-ठीक समझाना जान गया है। यह शीला की कैसी गृहस्थी है। कैलाश, कालू और नौकरानी के साथ रहती है। बहुत बूढ़ी माँ हैं, और वह अकेली बेटी, सीमित दुनिया है। पिता सिविल इंजीनियर थे। बेटी पिता के सारे गुणों को लाई। सदा निर्माण की बलवती भाव-लहरों पर सोचती है। उसकी विज्ञान के प्रति भारी आस्था है। नारी ने युग-युग से जिस ढाँचे के भीतर रहना सीखा है. उस ढाँचे से

लगी बेड़ियों को तोड़ कर एक नए समाज का निर्माण करना चाहती है। अक्सर उसने पिता के पास बैठकर नीले कागजों पर बने हुए नक्से देखे हैं। उन पर सुफेद लाइनों में पुल, इमारत, आदि का ढाँचा रहता था। बचपन से ही वह सारी बातें उसके मन में जम गईं, उसकी दृष्टि में पुरानी चीजों का नया आकार आया। पिता धार्मिक विचार के थे। कई घंटे पूजा करते थे। शीला देवताओं की कोठड़ी को देखती थी। वहाँ माँ के अतिरिक्त और किसी की पहुँच नहीं थी। माँ बड़ी सुबह उठकर कमरे को पोतती थी, फिर पिता पत्थर और धातुओं के बने हुए कई देवताओं को नहलाते थे। शीला सब कुछ देखती रहती थी। माँ बार-बार उसके मन पर भगवान की महिमा की तसवीरों की छाप लगाना चाहती थी। लेकिन भगवान के अस्तित्व से ऊपर उसकी रुचि नैवेद्य की ओर रही। भगवान की कोई परवा नहीं थी।

शीला काफी का प्याला ले आई। रवीन्द्र प्याला लेकर हँसा, बोला, "शीला, मैं सोच रहा था कि तुम अपनी माँ का वह धार्मिक व्यक्तित्व कैसे भूल गई हो। माँ जी तो आज भी पूजा-पाठ में लवलीन रहती होंगी।"

"वह तो रोज साधुओं के आतिथ्य में रहती है। अपनी पिछली यात्राओं के संस्मरण सुनाती है। मैं तो स्वतंत्र हूँ। नास्तिक ठहरी।"

"माँ जी कुछ नहीं कहती हैं?"

"पहले-पहल कहती थी। तब मेरी शादी नहीं हुई थी, फिर जिस दिन मैं विधवा हुई, माँ अपने भगवान के पास फरियाद लेकर गई थी कि यह अनर्थ क्यों हुआ है? आस-पड़ोस की औरतों ने मेरे सारे आभूषण उतार कर काँच की चूड़ियाँ फोड़ डाली थीं।"

"तूने झगड़ा मचाया होगा।"

"हाँ, मैं उनसे लड़ पड़ी थी। मैंने वे चूड़ियाँ बड़े शौक से पहनी थीं। उनका वह व्यवहार मुझे अनुचित लगा। मुझे अपने उस वेश पर पहले बड़ी हँसी आई। उनका व्यवहार अनुचित लगा। पहले तो अपने उस वेश पर बड़ी हँसी आई, फिर उन सबका साथ देकर रोने लगी थी। रात को सारा घर निराहार रहा। मुझे बड़ी भूख लगी थी। बस मैं रात भर

काजू और पिश्ते चबाकर पेट को समझाती रही कि कल सुबह बढ़िया खाना मिलेगा। पिताजी एक सप्ताह तक मेरे पास नहीं आए। आगे एक दिन मुझे बाग में बुलवाया। वे बहुत सुस्त और चिन्तित लगे। मुझसे बोले—तू ठीक समझती थी शीला। अब मेरी आस्था भगवान और धर्म पर नहीं रह गई है। मैंने तेरे साथ धोखा किया। उनकी जायदाद पर पिता की ममता पिघल गई कि तू चैन से रहेगी।"

"तूने क्या उत्तर दिया था?"

"मैंने! मैंने!! हैं, तुम्हारी काफी का प्याला तो ठंडा हो रहा है। मैं बहुत बातूनी हो गई हूँ। पीलो न!"

रवीन्द्र काफी पीने लगा। वह सब बातें सुन चुका है। आज अपनी स्मृति को ताजी कर लेने के लिए फिर उन बातों को सुन रहा है; ताकि सब पुरानी घटनाओं की एक नई रूपरेखा हृदपट पर खिंच जाय। शीला उसी कुतूहल के साथ सारी बातें सुना रही थी। वह अपने उस फूटे भाग्य की उपेक्षा सदा के करती आई और आज भी कर रही है। जिस अवसर पर नारी युग-युग से रोती आई, शीला ने उस वैधव्य के कानून को स्वीकार नहीं किया है। पिता का आदेश पाकर उसका नारित्व फिर खिल उठा, उसमें प्राण आए। अपने सबअधिकारों को पा गई। अपना यह आचार उसे अपेक्षित लगा।

"आज कल मैं काफी पीनी सीख गई हूँ।

"तब विज्ञापन करा दिया जाय?"

"तुमसे और आशा ही क्या करूँ।"

"क्या कहा तुने?"

"तुम भी पुरुष ही हो न! लोगों से कहते होगे कि मैंने एक असहाय लड़की के लिए त्याग किया है। वह लड़की मुझे बहुत प्यार करती है। वह मेरी मजबूरी बन गई।"

"यह व्याकरण मन के किसी पाप की विश्लेषण लगती है।"

"मेरे मन का पाप?"

"तो यह और क्या है? अपनी माँ के संस्कार तूने पाए हैं। तुम एक

विधवा के आचार को भी जानती ही हो। इस सब के बाद तुम्हारे मन को वैधव्य का आँचल ढक चुका है। तुम उस सब को भले ही भूल जाना चाहो। वह केन्द्रीभूत पीड़ा यदा-कदा उबल सकती है। कभी-कभी हृदय की तह में छुपा हुआ नारी का यह विद्रोह अनायास चमक उठता है।"

"तो क्या यह मेरे मन का पाप है?"

"तूने ही न कहा था कि अब बूढ़ी हो गई हूं। वह बुढ़ापा उस वैधव्य की चमक के अलावा और क्या है?"

"मेरा वैधव्य! तुम क्या कह रहे हो? मेरे पति के साथ सात भाँवरें हुए थे। सिर्फ दो दिन ससुराल में रही हूँ। बस, अपने कथित पति से मेरा इतना ही सम्बन्ध रहा है। उनकी कोई मूर्ति अथवा मुद्रा मेरी स्मृति में नहीं हैं। उनको देवता नहीं मानती हूं। वे साधारण पुरुष थे। एक दिन देह मर गई। केवल नाम के सहारे ही रहना मेरे वश की बात नहीं थी। कहा था पिता जी ने—बेटी, आज फिर समाज की पुरानी धारणाओं का नया मूल्यांकन करना पड़ेगा। जानते हो, तब मेरी उम्र क्या थी? सोलह साल की। तुम मुझे सान्त्वना देने आए थे।"

"हाँ शीला, मैं चोर की तरह आया था। तुम शादी के बाद एक अमूल्य निधि बन गई थी। मैं उस खजाने को देखने चला आया। तुम रसोई बना रही थी। मैं दरवाजे पर खड़ा था। बोला था कालू—रवीन्द्र बाबू आए हैं। तुम झिझक कर, आँचल से मुँह छुपा कर बाहर आई थी।"

"मैं तुम्हारे उस भाँति एकाएक चले आने पर घबरा उठी थी। तुम उदास खड़े थे। मैं वह न सह सकी। चुपचाप रसोई में काम करने चली आई। तुम असमंजस में बैठक में बैठने चले गए थे। मैंने परदे की आड़ से तुमको पिता जी के साथ बातें करते हुए देखा था। उसी दिन संध्या को पिता जी बोले थे—शीला रवीन्द्र बहुत अच्छा लड़का है। आज मुझे वेदान्त की बहुत बातें सुनाता रहा।"

"यदि बातों में दुःख का भाव-तोल करना वेदान्त है, तो मैं समझ लूँगा कि जीवन का समस्त व्यापार ठट्ठे पर अवलम्बित है।"

"लेकिन तुमने मुझे कभी वेदान्त की बातें नहीं बतलाई। मैंने तो अपने अनुभव से ही सब सबक सीखे हैं। तुमको अपना पहला पढ़ा हुआ पाठ बतला दूँ।"

"वेदान्त का न!"

"हाँ, इसमें आश्चर्य की कौन सी बात है। मेरी ससुरालवालों ने मेरे ऊपर वैधव्य की समस्त नजीरें लागू करनी आरंभ कर दीं। वे समझते थे कि मैं टट्टू हूँ और वे नमक के व्यापारी। मेरी सास यहाँ आकर आचार-विचार की कई बातें सिखला जाती थी। यही नहीं, एक भारी पेटी भी लाद दी गई। उसने अपने लाड़ले बेटा का एक रंगीग सुन्दर बड़ा बस्ट बनवाकर अपने नौकर के हाथ भेजा। मैं उस दिन घर पर नहीं थी। कालू ने उसे मेरे सोने के कमरे में टाँग दिया। कई दिनों तक मेरी उस पर नजर नहीं पड़ी। जब पिताजी ने उसे देखा तो पूछा—यह कब मंगवाया है शीला? मैं अचरज में पड़ गई। अपनी अज्ञानता जाहिर की। कालू ने आकर सारी बात सुनाई, तो सास जी के इस सबक पर मुझे बड़ी हँसी आई। वह मोह की एक सुन्दर नागफांस थी।"

"शीला! शीला!!" रवीन्द्र बोला। शीला के हाथ से तो काफी की प्याली छूट कर जमीन पर गिर, चकनाचूर हो गई थी। रवीन्द्र ने उन टुकड़ों की ओर देखा, कहा फिर, "यह क्या कर डाला शीला?"

"तुम काफी की प्याली के टूट जाने पर इतने घबरा गए रवीन्द्र। यह तो एक साधारण प्रयोग था। मैंने एक दिन इससे भी बड़ा प्रयोग किया था। उस बस्ट को चूर-चूर कर डाला। पिताजी बहुत हँसे थे। कालू भयभीत हो गया था। माँ जी ने समझा कि मैं पागल हो गयी हूँ। अच्छा उस घटना को भी बतला दूँ। जिस तरह कमरों में मामूली सामान पड़ा रहता है या दीवारों पर पुराने कैलेन्डर टँगे रहते हैं, उसी भाँति वह बस्ट भी टँगा रहा। इस बीच एक दिन संध्या को मैं घूमकर लौट रही थी कि मेंह आ गया। मैं भीज गई। मुझे इन्फल्यूँजा हो गया। मुझे एक सौ पाँच डिगरी बुखार चढ़ गया था। रात को एकाएक मैं अचैतन्य सी उठी और मेज पर चढ़ कर फोटो

उतार रही थी कि वह मेरे हाथ से छूट गया। उसके चकनाचूर हो जाने की आवाज सुनकर सब लोग कमरे में आए। मैं उसी तरह मेज पर खड़ी थी और मेरे चारों ओर शीशे के टुकड़े बिखरे पड़े हुए थे।"

"वह तेरा कैसा खेल था शीला?"

"खेल! मैं स्वयं नहीं जानती कि मुझमें वह बल कैसे आ गया। मैं उस परिस्थिति को आज तक नहीं समझ पाई हूँ। वह टूट गया, जाने दो। तुम बैठो मैं आई।"

फिर शीला चली गई। रवीन्द्र चुपचाप बैठ रहा। नीचे फर्श पर टूटे प्याले के टुकड़े बिखरे पड़े हुए थे। उसकी समझ में शीला की यह उदार भावना नहीं आई। क्या यह कोई हिंसा थी? इस मखौल को अविश्वास नहीं माना जा सकता है। जिस पति के लिए नारी, गंगा किनारे तथा तीर्थ स्थानों पर पिण्ड देती है, सिर के बाल कटवा कर नदी में बहा देती है; उसने वैधव्य की उस तपस्या की उदारता कभी नहीं बरती। और युग-युग से नारी के चारों ओर समाज ने जो रेखाएँ खींची हैं, वह उनको मिटा चुकी है। हठात् उसे वे ही रेखाएँ याद आईं। लक्ष्मण असहाय सीता के चारों ओर रेखाएँ खींच गया था कि वह सुरक्षित रहे। सीता ने वह बन्धन मायावश तोड़ डाला। इसी लिए अंत में उसे अपने चरित्र की कसौटी के लिए अग्नि-परीक्षा का भार स्वीकार करना पड़ा। नारी का चरित्र सदा से कच्चा माना गया है। राम एक दिन अपनी सहृदयता भूल गए। सीता को त्याग दिया। सीता ने तो धरती-माता की गोदी में शरण पाई। मिट्टी से बना हुआ शरीर मिट्टी में मिल गया। वह सीता ऐसे ही जमीन से पैदा हुई थी। लेकिन देवता इन्सान तो थे नहीं, उनका समाज ऊँचा था। अहिल्या पाषाण बन गई। उसका पाप था, ठीक ही श्राप मिला। इन्द्र सबल सामाजिक-पुरुष था। नारी-शरीर के सम्पूर्ण ज्ञान से देवता जानकार थे। इसीलिए समाज का निर्माण करने वालों ने नारी का सही-सही दरजा बनाया। ब्रह्मा सबके पिता थे। नारी पर उनको भी रहम नहीं आया। मनु महात्मा थे। अपनी पुरुष वाली नजीरें उनकी हैं। भले ही बार-बार नारी के प्रति सहृदयता बरतने वाली उदारता वे

रखते हैं।

शीला के चारों ओर खींची हुई रेखाएँ क्या कम कड़ी थीं? उनमें समाज के स्रष्टा का सम्पूर्ण विधान लागू था कि वह विधवा है। उसकी हँसी और खुशी जीवन से अलग थी। फिर भी उसको अहिल्या वाली सीमा के भीतर स्वतंत्रता समाज दे सकता था। विधाता, भाग्य और पति के बोझे के साथ-साथ एक और विशेषण था कि वह पापी और अभागिनी है। पिछले जन्म के पाप, उसके कर्म का फल, इस जन्म में भुगतना ही पड़ेगा।

हवा का एक भारी झोंका आया। ऊपर से घास के कुछ तिनके उड़ कर नीचे पड़ गए थे। रवीन्द्र ने उधर देखा। एक बड़ा घोसला था। बहुत फैला हुआ। अब मेंह बरसने लग गया। उसे ठण्ड लगने लगी। उसके शरीर पर कंपकंपी फैली, फिर भी वह बराण्डे में उसी भाँति बैठा रहा। वहीं पर जहाँ कि उसे शीला छोड़ गई थी। सोचा फिर कि उस शीला के लिए आज भी उसके मन में भारी लोभ है। वह भले ही दूर रहे, उसका आमंत्रण कभी नहीं ठुकरा सकता है। उसमें वह शक्ति नहीं है। वह उसकी सरल बातों पर विश्वास कर लिया करता है। वह अहिल्या और सीता की भाँति एक साधारण नारी ही है। जिसे पुराने 'देवी' कहते थे।

"बाबूजी।" कालू आकर बोला।

"क्या है कालू?"

"आप बहुत दिन में आए हैं। कहाँ रहते हो? क्या करते हो?"

"नौकरी करता हूँ कालू।"

"क्या तनखा मिलती है?"

"यही दो सौ।"

"तब बाबूजी अब शीला बीबी को साथ ले जाओ। यहाँ उसका मन नहीं लगता है। मैं देखता हूँ कि वह बहुत उदास रहती है। एक दिन नाशपाती के पेड़ के नीचे खड़ी होकर चुपचाप रो रही थी। आप साथ ले जावें। कब जावेंगे आप? कितनी छुट्टी है?"

"अगले हफ्ते।"

"मैं कल बीबी से छुट्टी माँग कर घर चला जाऊँगा। तीन साल से नहीं गया हूँ। चार दिन में लौटूँगा, फिर आपके साथ जा सकता हूँ। सारी उम्र इस घर में कट गई। अब जो बाकी है वह आप लोगों के खिदमत में कट जावेगी।"

रवीन्द्र इस प्रस्ताव पर सहम गया। क्या यह संभव है? शीला बात को स्वीकार करेगी! लेकिन वह स्वयं शीला से कुछ नहीं कह सकता है। उसे पुरुष वाले अधिकार से दबाना नहीं चाहता है। अपने स्वार्थ के लिए शीला की हत्या नहीं करेगा। वह शीला को स्वयं खड़ा होने देगा। चाहता है कि वह एक विशाल नारी-रूप का सही स्वरूप ले ले। वह वेड़ियाँ नहीं डालेगा। रुकावट नहीं लावेगा। कालू तो खड़ा ही था। उससे पूछा, "कैलाश कहाँ है?"

"सो गया बाबू जी।"

'हूँ' कर वह चुप हो गया। वह कालू की बात! क्या यह संभव है? शीला तो बार-बार कहती रही कि वह निर्बल है। ऐसे प्रस्ताव न किया करो! आज भी यही कहेगी।

"कालू!" शीला आकर बोली, "गपशप शुरू कर दी। तुझे तो खाने को बुलाने के लिए भेजा था।"

रवीन्द्र उठा। दोनों डाइनिंग रूप में पहुँचे। अब वह चुपचाप खाना खा रहा था। शीला खड़ी थी। रवीन्द्र ने पूछा, "और तुम शीला?"

"मुझे भूख नहीं है।"

"थोड़ा खाले।"

"तबीयत ठीक नहीं है।"

"क्या हो गया है?"

"सिर दर्द लगा रहता है, फिर कभी कुछ, कभी कुछ।"

"किसका इलाज हो रहा है?"

"पापा के दोस्त एक रिटायर्ड 'सिविल सर्जन' हैं। उनके नुस्खे इस्तमाल कर रही हूँ। फायदा नहीं होता है। वक्त पर बिल चुका दिया करती

हूँ इसी लिए वे मुझपर बहुत मेहरवान हैं।"

अब रवीन्द्र शीला को सही पहचान सका। वह दंग रह गया। सब परिस्थिति साफ दीख पड़ी। वह बीमार रहती है। सिर दर्द और साथ में कुछ न कुछ और रोग। अब वह उस मरीज को अपने हाथ में लेकर सुचारु रूप से इलाज करावेगा। यह व्यवस्था आवश्यक लगी। वह तो सच ही बड़ी दुबली पड़ गई हैं। मुख पर चमक नहीं है, पीलापन है। वह उसे अपने साथ ले जावेगा।

"तरकारी और ले लो ?"

"नहीं-नहीं।"

"वहाँ का क्या हाल है ?"

"मेरा न !"

"कैसे रहते हो। कौन-कौन दोस्त हैं ?"

"कोई नहीं शीला। मैंने दुनिया भर से दोस्ती करनी कब सीखी है। वह आदत नहीं है और तुम !"

"मैं !" शीला हँस पड़ी। कहा फिर, "यहाँ सदा से अकेली रही हूँ, बहिन-भाई नहीं थे। स्कूल में भी किसी को अपनी संगनी नहीं बना सकी। बचपन में मोहल्ले के बच्चों के साथ किसी गिरोह में नहीं खेल सकी। उधर ध्यान नहीं गया। अब इस बंगले में रहती हूँ, आसपास दूर तक कोई बंगला नहीं है। निर्जन स्थान है।"

"लेकिन शीला इस प्रकार दुनिया से दूर भाग कर रहना हितकर नहीं होता है। हर एक व्यक्ति अपनी डफड़ी और अपने राग में मस्त रहे तो समाज के लिए यह कल्याणकारी भावना नहीं होगी।"

"तुमने ठीक कहा है। मुझे याद है। एक आन्दोलन उठा था। पिछला महायुद्ध समाप्त हो गया था। उसके अवशेष की चर्चा मात्र रह गई थी। तभी क्रान्ति की एक लहर आई थी। मैं तब बहुत छोटी थी। आठ साल की। मुझे इतना याद है कि पिताजी शहर की अमन-सभा के सिक्रेटरी थे। उन दिनों हमारे घर पर बहुत लोग आया करते थे। अमन-सभा का

काम आन्दोलन को दबाने की चेष्टा करना था। मैं उन दिनों कई पैम्फलेट पढ़ा करती थी। आज उस सब की याद करके बड़ी हँसी आती है।"

"वह आन्दोलन असफल हो गया था शीला। उसके पीछे जनता की पूरी-पूरी शक्ति नहीं थी। इसके बाद फिर दूसरा आन्दोलन चला था। तुझे तो याद होगा। उन दिनों शहरों में रहने वाले पढ़े लिखे नौजवानों ने क्रान्तिकारी-दल बनाने की ठहरा कर भारतमाता को स्वतंत्रता का हार पहनाना चाहा था।"

"हाँ, हाँ, वह सब याद है। लेकिन मैं उन दिनों जीवन को अपने मन के भीतर समेट रही थी और एक दिन देखा था कि तुमने अपने पुराने विदेशी कपड़ों को साँप की केंचुला की भाँति उतार कर फेंक दिया था। तुम खादी के सूट में आए थे। मुझे तुम्हारी खादी का टोपी को देखकर बड़ी हँसी आई थी। यह जानना चाहती थी कि तुम्हारे 'फेल्ट हैट' का क्या हुआ। तभी तुमने सुनाया कि उनकी होली जलाई गई है। तुम्हारे उस व्यवहार का सुनकर पिता जी बहुत अप्रसन्न हुए। वे उन दिनों शहर में 'शान्ति-सभा' स्थापित करने के चक्कर में थे। सब लोगों को पूर्ण विश्वास था कि वे 'नाइट' बन जावेंगे।"

"शीला उस सब को इतिहास ने अपने में समा लिया है। उन घटनाओं के आधार पर क्या नहीं हुआ है? तुम्हारा जीवन पिता के 'नाइट' होने की आकांक्षा के ऊपर उठ गया। समाज की एक भारी आँधी ने तुम्हारे पिता के विचार बदल दिए। पुराने संस्कार के बन्धन ढीले पड़ गए। नया युग अपना प्रभाव लाने में नहीं चूका, और तुम्हारे पिता उसमें बहे। तू इसके लिए जिम्मेवार थी।"

"मैं! आप क्या कह रहे हैं? मैं कुछ नहीं जानती हूँ। मुझे तो उन दिनों बहुत सूना-सूना लगता था। रोज समाचार-पत्रों में किसी न किसी षड़यंत्र की चर्चा रहती थी। कभी देखती थी कि शहर में लोगों का जलूस जय-जय के नारे लगाता हुआ आगे बढ़ रहा है। गोलियाँ चलने की बातें भी सुनी। उन दिनों कुछ क्रान्तिकारियों को फाँसी हुई थी। मेरे मन पर

इसका भारी असर हुआ। मैं रोज पिता जी के पास बैठ कर लोगों की गपशप सुना करती थी। मैं अक्सर उनके साथ कमिश्नर साहब के बँगले पर जाती थी। उनकी मेम मुझे बहुत प्यार करती थी। मेरा मन व्याकुल रहता था। उस अज्ञात पति पर दया आती थी कि वह क्यों मर गया। मैं उससे कई बातें पूछ लेना चाहती थी।"

शीला एकाएक चुप हो गई। रवीन्द्र उठ गया था। वह जल्दी से बोली, "कुछ और खालो। नाशपाती का मुरब्बा कल ही बनाया है। तुमको ठीक तरह नहीं खिला पाई हूं। वही बातें ! बातें !! क्या करूँ इतने दिनों तक किसी से बातें नहीं की हैं। वह सब मन में जमा थीं। तुमसे न कहूँगी तो किससे कहूँगी।"

रवीन्द्र चुपचाप बैठ गया। उसने मुरब्बे का एक टुकड़ा ले लिया। कुछ देर तक उसी भाँति बैठा रहा। शीला हर एक बात में अनुरोध किया करती है। अपनत्व को ऊपर उठाती है। कोई अहसान नहीं बरतती है। शीला खड़ी ही रही। रवीन्द्र ने चाहा कि कह दे, तुम बैठ क्यों नहीं जाती हो शीला। कब से तो खड़ी हो। लेकिन वह चुप रहा। शीला ने तो स्वयं पूछा, "दूध तो पीते होगे ?"

"नहीं।"

"तो कालू से कह आवूँ।" कह कर शीला चली गई।

रवीन्द्र ने हाथ धो लिए। अपने कमरे में पहुँच गया। आरामकुर्सी पर लधरा, कमरे में चारों ओर सुन्दर-सुन्दर तैल चित्र टंगे हुए थे। उसका ध्यान एक चित्र पर पड़ा। एक युवती गितार से खेल रही थी, आतसखाने में दो-तीन स्टैचू थीं। एक कोने में आलमारी पर सुन्दर जिल्द लगी पुस्तकें संवार कर धरी हुई थीं। वह आँखें मूँद कर कुछ सोचने लगा। अब शीला की आहट पाकर आँखें खोलीं। वह पान लाई थी। वह चुपचाप पान चबाने लगा। शीला खड़ी ही थी। वह बोली, "बैठ जा शीला।"

शीला बैठ गई। पूछा रवीन्द्र ने, "तूने कुछ नहीं खाया।"

"दूध पी लूँगी।"

"तेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं है शीला। तुझे परवा के साथ रहना चाहिए।"

शीला हँस पड़ी। कहा, "दवा खाती हूँ और क्या इलाज करूँ। अपनी देखभाल तो खुद नहीं होती है।"

"यह मैं जानता हूँ शीला। मुझे अब मालूम हुआ कि तुम अपने शरीर को इस भाँति घुला कर मिटा रही हो।"

"यह तो तुम्हारा भ्रम है। मैं अच्छी रहती हूँ। हाँ, क्या कह रही थी मैं?"

"शीला पहिले दूध पीले। बातें तो लगी रहती है।"

"कालू ले आवेगा।"

"हमारी बातें कभी समाप्त नहीं हो पाएँगी। मैं कई सवाल सोच कर आया था। लेकिन याद नहीं पड़ते हैं। तू क्या कह रही थी?"

"मैं न! यही कि एक दिन स्कूली जलसे में गई थी। उस दिन कमिश्नर साहब की लेडी नहीं आ सकी थी। मैंने ही इनाम बाँटे थे। वहाँ मुझे निरुपमा मिली थी। वह मुझे देखते ही अचरज में पड़ गई। मुझसे बोली, वह जो प्रेम-पत्रों वाला खेल था समाप्त हो गया। मैंने भावुकता में आकर एक गलत व्यक्ति से शादी करली थी। मैं निरूपमा को अपने घर ले आई। वह यूनीवर्सिटी में मेरे साथ पढ़ती थी। उसका एक लड़के से प्रेम हो गया था। वह रोज उसे प्रेम-पत्र लिखती थी। उसने उन पत्रों की दुनिया में दो साल काटे थे। शादी के बाद झगड़ा ही रहा। अब दोनों अलग-अलग रहते हैं। एक का दूसरे से कोई सम्बन्ध नहीं है। निरुपमा बार-बार कहती थी कि पुरुष का विश्वास न करना, वह बहुत स्वार्थी होता है।"

"शीला, निरूपमा ठीक कहती थी!" कहकर रवीन्द्र खिलखिलाया। बोला फिर, "इसीलिए तुमने मुझे प्रेम-पत्र नहीं लिखे न! लेकिन इस जीवन में तूने अधिक पत्र ही कब लिखे। जो लिखे थे, वे बचपन वाली बात भर रह गये हैं। आगे तू बहुत समझदार हो गई थी।"

"तुम बुरा मान गए। मैं कोई नजीर थोड़े ही पेश कर रही हूँ। मैंने

निरुपमा को समझाया था कि पुरुष में कुछ स्वाभाविक कमजोरियाँ होती हैं। उसका तर्क सब पर लागू नहीं होता है। वह सत्य नहीं है। लेकिन वह नहीं मानी। उसने मुझे अठारह पत्र दिखलाए। वे अलग-अलग व्यक्तियों के लिखे हुए थे। सब में ही प्रेम की दुहाई थी। हर एक ने साधारण पहचान के बाद वह अस्त्र फेंका था। सब को इस बात की जानकारी थी कि वह पति से अलग रहती है।

"मुझे तो निरुपमा पर ईर्षा होती है कि उसके चारों ओर अठारह पागल प्रेमी मंडराते रहे हैं।"

"चुप रहो तुम। मैं उस दिन रात भर परेशान रही। सुबह तुम आए थे। तुमसे कुछ पूछना चाहकर भी नहीं पूछ सकी। कहना चाहती थी कि तुम मुझे प्रेम-पत्र लिखा करो। मैं उनका उत्तर जरूर दूँगी। तुम लिखा करो बस। लिखा करो कि मैं तुम्हारी कविता हूँ।" शीला गदगद हो उठी। उसकी आखें डबडबाईं।

"शीला! शीला!!" अब रवीन्द्र संभल गया। उसने शीला का आँचल उठाकर, उसकी आखें पोंछ डालीं।

शीला चौंकी, अब बोला रवीन्द्र, "यह तुम्हारा कैसा दुःख है?"

"दुःख! नहीं-नहीं, मैं आजकल पागल हो गई हूँ। तुमको वह कहानी याद है।"

"कौन सी?"

"लाल फूल की! उस पागल युवक का गुलाब के फूल के लिए प्रेम। वह अपनी तृष्णा बुझाने के लिए पागल-खाने की इमारत की दूसरी मंजिल से कूद पड़ा था। फूल को तोड़ कर, छाती से लगा, मर गया।"

"शीला, तुम समाज को एक व्यक्ति से क्यों तोल लेती हो। तुम, निरुपमा अथवा मैं तो समाज की भारी भीड़ के एक, दो, तीन व्यक्ति ही हैं। यदि सामाजिक-व्यवस्था सुधर जाय तो निरुपमा का प्रश्न हल हो जायगा।

"लेकिन कभी-कभी मुझे बहुत दुःख होता है। उन दिनों मन अनमना रहता था। तीन क्रान्तिकारियों को फांसी की सजा हुई थी। उसका भारी असर

मेरे मन पर पड़ा। मैंने पिताजी को धमकी दी कि वे नौकरी छोड़ दें। वे मेरी बातों पर हँस पड़े थे। तुम न आ जाते, तो अनर्थ हो जाता।"

"शीला, मैं तो अचानक पहुँच गया था। तुम्हारे दुःख भरे आँचल का आसरा नहीं लेना चाहता था। तेरी भावुकता की बात समझ कर दूर रहना चाहता था। यदि तेरे पिताजी ने तार नहीं भेजा होता, तो संभवतः नहीं आता। वह तेरी धमकी व्यर्थ नहीं गई। जिस समाज ने अपने कठोर हथियार से तुझे विधवा घोषित किया, उसकी भारी चोट उनके दिल पर लग चुकी थी। उनका ख्याल था कि मैं आकर वातावरण को संभाल लूँगा। इसीके लिये मुझे आमंत्रित किया था। क्या तू उसके बाद का पूरा हाल नहीं जानती है?"

"पिता जी ने इस्तीफा दे दिया। इस बात से सब को आश्चर्य हुआ। जिस 'नाइटहुड' के लिए वे रात-दिन बेचैन रहा करते थे, उसे बिल्कुल विसार दिया। मैं उस दिन रात-भर हँसती रही। न जाने मुझे क्यों बहुत खुशी हुई थी। और उस पागलपन में तुमने चुपके आकर नव-निर्माण की भावना मेरे हृदय में भर दी। तुमने मेरे हृदय के उजड़े हुए घोसले के तिनकों को बटोर कर, नया घोसला बनाया। रात भर मेंह बरसता रहा। हवा के झोंकों के बीच में अजीब किलकारियाँ सुनती रही। उस दिन पिताजी एक अजीब नक्शा बना रहे थे। मैंने पिता जी से पूछा था—यह क्या है? वे चुपके बोले, 'आज तक मैंने मिट्टी-पत्थर की इमारतें बनाकर लोगों को आश्रय दिया; अब आज समाज की अस्वस्थ धारणाओं को लेकर एक नए स्वस्थ समाज की नींव डाल रहा हूँ।'

"मैंने देखा था कि पिता जी के बाल सुफेद पड़ गए हैं। वे मुझे बहुत बूढ़े और बीमार लगे। मैंने कहा, 'पिताजी आपकी तबियत ठीक नहीं लगती है। अब आप सो जाँय।'

'नहीं शीला, बेटी तू जा अब। मैं आशीर्वाद देता हूँ, मेरा आस्तिक मन आज भी भगवान पर विश्वास करता है। आज दिन भर रवीन्द्र ने अपनी नास्तिक बातें मुझे सुनाई। भाग्य की दीवीरों पर जीवन की इमारत न बनाने

के लिए आगाह किया। लेकिन मेरे तो वही पुराने संस्कार हैं, मैं उनको भूठा नहीं मानूँगा। रवीन्द्र कहाँ है, जा बेटी, जा जा! तू खड़ी क्यों है।

"पिताजी आप सो जांय, आपका स्वास्थ......। बड़ी ठंड पड़ रही है, काफी का प्याला बना लावूं।"

'कालू से कह दे। वह ले आवेगा।'

"मैं काफी का प्याला बनाकर ले आई थी, पिताजी मत्स्य-पुराण पढ़ रहे थे। मेज पर गीता की जिल्दें पड़ी हुई थीं। उनके माथे पर रोली की रेखा चमक रही थी। पिताजी चुपचाप काफी पीते रहे। जब पी चुके तो बोले, 'तू अब जा।'

'तुम सो जाओ पापा।'

"वे उठे और पलङ्ग पर लेट गए। मैंने ऊनी चादर उढ़ा दी। रोशनी गुल करने को थी कि वे एकाएक उठ खड़े हुए। बोले, 'पिता हूँ, चल बेटी तुझे छोड़ आऊँ। कन्या दान वाले संस्कार आज भी नही भुला सका हूँ।'

"मैं अवाक पिताजी को देखती रह गई, बोली—'पिताजी आप लेट जाँय, आपकी तबीयत ठीक नहीं है।"

"उनको सुलाकर चुपचाप चली आई थी। मैं न जानती थी कि पिताजी में ऐसा परिवर्तन हो सकता है। लौटकर चुपचाप बाहर दालान में खड़ी हुई। बरफ गिरनी शुरू हो गई थी। मैं बड़ी देर तक उस खेल को देखती रही। ऊपर छत से लगे हुए बड़े घोसले की ओर देखा। वहाँ चिड़िया के बच्चों की चूं-चूं चूं हो रही थी; पर आज वहाँ सूना है। वे आज चली गई हैं। तब उन बच्चों की चूँ चूँ-चूँ ने मेरे मन के सूने कोने को भर लिया था। मैं अवाक खड़ी ही थी कि तुमने आकर पुकारा,—शीला! और मुझे संभाल लिया था।"

शीला यह सब कह कर चुप हो गई। कुछ देर के बाद बोली, "मैंने इस बया के घोसले को बचपन से देखा है। संध्या को प्रति दिन वे उड़ती हुईं, दूर क्षीत्रिज में ओझल हो जाती थीं। उनका खेल मुझे बहुत भाता था।"

"अब तेरी सेहत भली नहीं है शीला। तुझे साथ ले चलूँगा। कालू ने यही सलाह दी है।"

"मुझे!"

"हाँ तुझे ही शीला! अब मैं तुझे अकेले नहीं छोड़ सकता हूँ;"

"तब ले चलना मुझे; लेकिन नहीं-नहीं! मैं यहीं रहना चाहती हूँ। कैलाश है ही। साथ हो जाता है।"

"यह झूठ बात है।"

"झूठ ही सही, पर सच मान लेती हूँ। मालूम है कि मैंने तुमको क्यों बुलाया है?"

"अपने को धोखा देने के लिए।"

"नहीं, नहीं, तुमको पिछले कई सालों से बुलाना चाहती थी। वह दीवार के कोने पर छत से लगा हुआ जो बया का घोसला है न, उसमें से सब चिड़ियाँ एक-एक कर भाग गईं। अब वह खाली है। जब मैंने यह देखा तो पिछले छै साल पर विचार किया। पाया कि मेरे मन का घोसला भी सूना हो गया है। समाज में जिस निर्माण की भावना को लेकर हम उठे थे, उसके ऊपर मेरा अपना अनुचित लोभ बढ़ गया था। मुझे अपना, इस प्रकार एकान्त में रहना बुरा लगा। और निरूपमा की चिट्ठी आई थी। अपने एक प्रेमी से उसका बच्चा हुआ था। वह स्कूल की नौकरी से निकाल दी गई। समाज ने उसे क्षमा नहीं किया। उसे आज अनाचारिणी कहता है। उनकी दृष्टि में यह एक भारी अपराध था।"

"निरूपमा अब कहाँ है?"

"अपने प्रेमी के पास, जो कि एक सही पुरुष है। वह कुरूप है। उसके चेहरे पर चेचक के दाग हैं। काला रंग भी है। मैंने उसे देखा है।"

"कहाँ रहते हैं वे?"

"निरूपमा एक दिन उसके साथ हमारे यहाँ आई थी। बोली—उसने अपने जीवन के बिखरे तिनकों को बटोर कर नया घोसला बनाया है। यह भी कहा कि वह मेरे दिखलाए हुए रास्ते पर चल रही है। मुझे समझाने लगी

कि मैं अपनी भावुकता के कारण सही राह से हटती जा रही हूँ। इसीलिए मैं अपने में ही रहना चाहती हूँ। मेरे इस एकाकीपन पर उसने मेरी मखौल उड़ाई। कहा कि यह तुम्हारे प्रति अनुचित व्यवहार है। चेतावनी दी कि पुरुष स्वभावत: उच्छृङ्खल आदि काल से रहा है। वह आसानी से खोया जा सकता है।"

"ठीक बात कही थी निरूपमा ने! अक्सर मैं सोचता था कि मेरा एक छोटा सा परिवार होता। तुझे नहीं लिखा। अकारण तुझ पर 'दावी' नहीं होना चाहता था।"

"सुनो तुम! कहती थी निरूपमा कि अपनी टूटी भावनाओं, समाज की सड़ी-गली शृंखलाओं और इन्सान की कमजोरी—इनकी ढेरी में से उसने स्वस्थ तिनके बीन लिए। उसी से नया जीवन चलाने लगी। उसने समाज के क्रोध की परवा नहीं की। कुछ प्रथाएँ सदियों से चल पड़ी हैं। आज उनको फिर भी लागू किया जाता है। शकुंतला को श्राप का आश्रय मिला। लेकिन पुरुष ने दुष्यन्त को अनाचारी कहना अपना अपमान समझा।"

शीला चुप हो गई। रवीन्द्र ने बात का समाधान किया, "शीला तू एक दिन अपनी भारतीय-संस्कृति पर गर्व करती थी। हमारे उस महान अतीत से दुनिया ने बहुत कुछ सीखा है। उस अतीत की प्रगति रुक गई। हमारी संस्कृति का बल कमजोर पड़ गया। चार बौद्धिक आचार्यों के बुद्धिवाद से सबका कल्याण नहीं होता है। जाति को हर एक पहलू से शक्तिशाली बनना चाहिए। धर्म की वे पुरानी धारणाएँ युग-युग से चली आईं। लेकिन समाज का ढाँचा बदल गया, और वे धारणाएँ तो किसी विशाल पुरानी इमारत की भाँति खण्डहरों में खड़ी रहीं। निरूपमा हो चाहे तुम अथवा कोई अन्य नारी, उनकी शक्ति का सही उपयोग समाज में होना ही चाहिए। मानव की शक्ति का उपयोग समाज के लिए कल्याणकारी होता है।"

"चुप रहो रवीन्द्र! तुम यह सब बार-बार दुहरा चुके हो। लेकिन मेरे मन में जो एक भय संस्कारों के साथ आ गया, उसे आसानी से नहीं भूल पाती हूँ। मैंने अक्सर उनके कारण कड़ी-कड़ी चोटें खाई हैं। मन को

कितना ही विश्वास दिलाऊँ। तुमसे झगड़ने की शक्ति तक बाकी नहीं बची हुई है।"

"लेकिन शीला, तूने बौद्धमत की नजीर आगे की थी। वह मेरे लिए नया सबक है। मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि उस सबके लिए तेरे मन में भारी विद्रोह है। बुद्ध ने 'निर्वाण' प्राप्त करने के लिए समाज और जनता का आश्रय नहीं लिया। वह भी पुराने तपस्वी की पुरानी पिटी लकीर पर चले और एक दिन एकान्त में उनको एकाएक नई रोशनी का ज्ञान हुआ। सदा से ही बुद्धिवादियों को अपने मस्तिष्क का अधिक भरोसा रहा है। समाज के भीतर न रह कर, उनको समाज से दूर रहकर उसकी बातों पर विचार करना हितकर लगा। यह गलत कसौटी थी।"

"जाने दो वह बात। लेकिन यह सामाजिक आचार, जिस पर कि मैं रोज तीखे व्यंग सुनती हूँ। सब कुछ चुपके सहती हूँ।"

"यह मध्यवर्गीय-समाज की अपनी कमजोरियों की विकृत अवस्था की बोलियाँ हैं। पूँजीवाद ने भी नारी को 'अप्सरा' माना। युग-युग से यह पद उसे मिला था। वह एक वर्ग के क्रय-विक्रय की वस्तु आसानी से बन गई। प्रगति के लिए यह भारी रुकावट थी। अपने उस व्यभिचार को भला वे अनाचार क्यों मानते! नारी अपनी बुद्धि से धर्म के हौव्वे को बाहर नहीं फेंक सकी, और पटरानियों वाला दर्जा है। हरम की रौनक उनको बढ़ानी पड़ी। नारी-एक वर्ग को व्यभिचार का साधन मान लिया गया। वह पुरुष का लोभ था। किसी कुमारी को स्वस्थ प्रेम की आज्ञा नहीं दी गई, उसका मातृत्व स्वीकार नहीं किया गया, विधवा के छुपे व्यभिचार में समाज के मुखिए भाग लेते हैं; नारी के चरित्र की आलोचना के लिए, आचार आर्थिक, नैतिक-व्यापार आदि बरतना आरंभ हो गया।"

टन, टन, टन, न न न; ग्यारह बज गए शीला उठी और बोली, "बड़ी रात हो आई, सो जाओ अब।"

शीला चली गई। रवीन्द्र बड़ी देर तक चुपचाप इस सारे व्यापार पर सोचता रहा। शीला है, कैलाश है और वह भी है। शीला आज साधारण

उत्तर पाकर बात मान लिया करती है।

रवीन्द्र उसी भाँति आराम कुर्सी पर लेटा हुआ रहा। अब उसने आँखें मूँद लीं। नींद आ गई थी।

कुछ देर के बाद शीला आई। रवीन्द्र को सोया देख कर मुस्कराई। हल्के पुकारा, "रवीन्द्र !"

रवीन्द्र नहीं उठा। उसे हिलाते हुए कहा "रवीन्द्र !"

रवीन्द्र ने आखें मल कर खोलीं और अपनी बाँहें शीला के गले पर डाल दीं। शीला उसी भाँति स्थिर खड़ी रही, कुछ देर के बाद चैतन्य होकर बोली, "तुम सो गए थे।"

"हाँ शीला। एक बात कह दूं। अब तुझे साथ चलना पड़ेगा। यहाँ इस भाँति...।"

"मैं नहीं जा सकूँगी। यहाँ छोड़ने को मन नहीं करता है।"

"चलना पड़ेगा शीला ! मै कहता हूँ कि तुम चलोगी।"

"तुम कहते हो ?"

"हाँ।"

शीला स्तब्ध रह गई। रवीन्द्र कहता रहा, "आज दिन भर तुम्हारी दलीलें सुनता रहा हूँ। उन सब को समझ-बूझ कर ही यह निर्णय किया है। तू इसे स्वीकार करले।"

शीला तो बोली, "सो जाओ अब"; अपने को छुड़ा लिया चुपचाप दरवाजा ढक कर बाहर जाने को थी कि बोला रवीन्द्र, "शीला ?"

"क्या है ?" वह खड़ी हो गई।

"क्या कहा था। निरूपमा ने ?"

"निरूपमा ने।"

"हाँ उसी ने ! लौट जा। मैं आज तुझे फिर खो देना नहीं चाहता हूँ। इन पाँच सालों में जितना खो चुका हूँ, वह बहुत है। आज न आता तो संभवतः......। अब तुझे अलग नहीं रहने दूँगा।"

और शीला चुपचाप लौट आई। उसकी पलकें भीगी हुई थीं। वह

रवीन्द्र की बात की अवज्ञा नहीं कर सकी।

बड़ी सुबह शीला की नींद टूटी। उसकी आखें सूज गई थीं। आकाश साफ था। दूर पहाड़ों की बर्फीली चोटियों पर लाली फैली हुई थी। वह खिड़की से बाहर देखती रह गई। नीचे ढलुआ पहाड़ी खेतों पर गेहूं की हरियाली थी। उसकी दृष्टि घने देवदारु के पेड़ों को नहीं बेध सकी। सम्पूर्ण वातावरण प्राणहीन लगा। नागिन सी मुड़ी पी० डब्लू० डी० की सड़क नीचे घाटी की ओर बढ़ गई थी। बस्ती के फैलाव में कुछ सरकारी अर्द्ध-सरकारी इमारतों की लाल टिन वाली छतों पर प्रोटीन के धब्बे चमक उठते थे।

शीला ने रवीन्द्र की ओर देखा। वह चुपचाप सोया हुआ था। वह बाहर निकली। देखा कि रात के भारी तूफान से 'बया के घोसले' के तिनके इधर-उधर बिखरे पड़े हुए हैं। उसने कुछ तिनके उठा लिए। उनको हाथ में लिए चुपचाप खड़ी रही। उसकी दृष्टि सामने पड़ी। एक चिड़िया का जोड़ा तिनके चोंच से उठाने में लगा हुआ था।

तभी किसी ने पुकारा "शीला, शीला !"

वह रवीन्द्र था।

शीला के चेहरे पर मुस्कराहट फैल गई।

वर्तमान भीषण महायुद्ध ने सारे संसार को त्रस्त कर दिया है। सम्प्रति कोई भी ऐसा चेतन प्राणी न होगा, जिसके हृदय में इस विनाशकारी युद्ध का आतङ्क व्याप्त न हो। भारतभूमि किसी न किसी रूप में उसकी लपटों से यद्यपि अभी तक बची रही है, फिर भी विगत अगस्त आन्दोलन, बंगाल और आसाम पर जापानी विमानों के आक्रमण और बंगाल की भीषण भुखमरी में सामान्य जनता के हृदय के शान्ति और धैर्य का निर्मूलन कर दिया है। प्रतिदिन नये-नये विचार एवं विकल्प उसके मन, मस्तिष्क एवं कार्यों को प्रभावित करते रहते हैं। प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने कुछ ऐसे ही चित्रों के यथार्थ अंकन किये हैं। टूटते हुए मध्यवर्ग का ऐसा सुन्दर चित्रण कम देखने को मिलेगा।

श्री पहाड़ी का जन्म सन् १६१२ में जिला गढ़वाल, संयुक्त प्रान्त में हुआ था।

सन् १६३०-३३ में आप मेरठ में Times of India तथा Statesman के विशेष प्रतिनिधि रहे। तत्पश्चात् कर्मयोगी (साप्ताहिक) के सहायक-सम्पादक रहे तथा अन्य सरकारी-संस्थाओं में नौकरी की। 'आल इंडिया रेडियो' लखनऊ में हिन्दी विभाग में नियुक्त हुए थे; किन्तु राजनीतिक कारणों से वहाँ से हट गए। आज-कल हिन्दी साहित्य सम्मेलन में सहायक-मंत्री तथा रजिस्ट्रार हैं।

शीघ्र ही प्रकाशित होंगे

उपन्यास

प्रवास पथ

निर्देशक

कहानी-संग्रह

नया रास्ता

ओवरकोट

केवल कवर इलाहाबाद ब्लाक वर्क्स लि०, इलाहाबाद में छपा।